राधाकृष्ण पेपरबैक्स

चौदह फेरे

शिवानी



चौदह फेरे

शिवानी

गौरा पंत 'शिवानी' का जन्म 17 अक्टूबर 1923 को विजयादशमी के दिन राजकोट (गुजरात) में हुआ । आधुनिक अग्रगामी विचारों के समर्थक पिता श्री अश्विनीकुमार पाण्डे राजकोट स्थित राजकुमार कॉलेज के प्रिंसिपल थे, जो कालांतर में माणबदर और रामपुर की रियासतों में दीवान भी रहे । माता और पिता दोनों ही विद्वान् संगीतप्रेमी और कई भाषाओं के ज्ञाता थे । साहित्य और संगीत के प्रति एक गहरी रुझान 'शिवानी' को उनसे ही मिली । शिवानी जी के पितामह संस्कृत के प्रकांड विद्वान-पं. हरिराम पाण्डे, जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में धर्मोपदेशक थे, परम्परानिष्ठ और कट्टर सनातनी थे । महामना मदनमोहन मालवीय से उनकी गहन मैत्री थी । वे प्रायः अल्मोड़ा तथा बनारस में रहते थे, अतः अपनी बड़ी बहन तथा भाई के साथ शिवानी जी का बचपन भी दादाजी की छत्रछाया में उक्त स्थानों पर बीता। उनकी किशोरावस्था शान्तिनिकेतन में, और युवावस्था अपने शिक्षाविद् पति के साथ उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों में । पति के असामयिक निधन के बाद वे लम्बे समय तक लखनऊ में रहीं और अन्तिम समय में दिल्ली में अपनी बेटियों तथा अमरीका में बसे पुत्र के परिवार के बीच अधिक समय बिताया । उनके लेखन तथा व्यक्तित्व में उदारवादिता और परम्परानिष्ठता का जो अद्भुत मेल है, उसकी जड़ें इसी विविधमयतापूर्ण जीवन में थीं ।

शिवानी की पहली रचना अल्मोड़ा से निकलनेवाली 'नटखट' नामक एक बाल पत्रिका में छपी थी । तब वे मात्र बारह वर्ष की थीं । इसके बाद वे मालवीय जी की सलाह पर पढ़ने के लिए अपनी बड़ी बहन जयंती तथा भाई त्रिभुवन के साथ शान्तिनिकेतन भेजी गई, जहाँ स्कूल तथा कॉलेज की पत्रिकाओं में बांग्ला में उनकी रचनाएँ नियमित रूप से छपती रहीं । गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर उन्हें 'गोरा' पुकारते थे । उनकी ही सलाह पर, कि हर लेखक को मातृभाषा में ही लेखन करना चाहिए, शिरोधार्य कर उन्होंने हिन्दी में लिखना प्रारम्भ किया । 'शिवानी' की पहली लघु रचना 'मैं मुर्गा हूँ' 1951 में धर्मयुग में छपी थी । इसके बाद आई उनकी कहानी 'लाल हवेली' और तब से जो लेखन-क्रम शुरू हुआ, उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक अनवरत चलता रहा । उनकी अन्तिम दो रचनाएँ 'सुनहुँ तात यह अकथ कहानी' तथा 'सोने दे' उनके विलक्षण जीवन पर आधारित आत्मवृतात्मक आख्यान हैं ।

1979 में शिवानी जी को पद्मश्री से अलंकृत किया गया । उपन्यास, कहानी, व्यक्तिचित्र, बाल उपन्यास और संस्मरणों के अतिरिक्त, लखनऊ से निकलनेवाले पत्र 'स्वतन्त्र भारत'

के लिए 'शिवानी' ने वर्षों तक एक चर्चित स्तम्भ ''वातायन'' भी लिखा। उनके लखनऊ स्थित आवास-66, गुलिस्तां कालोनी के द्वार लेखकों, कलाकारों, साहित्य प्रेमियों के साथ समाज के हर वर्ग से जुड़े उनके पाठकों के लिए सदैव खुले रहे । 21 मार्च 2003 को दिल्ली में 79 वर्ष की आयु में उनका निधन हुआ ।

आवरण : आदित्य पाण्डे
ग्राफिक्स डिज़ाइनर । नेशनल इंस्टि्टयूट ऑफ डिज़ाइनिंग (NID) से शिक्षा प्राप्त । दिल्ली में अपना डिज़ाइनिंग स्टूडियो है ।

शिवानी

चौदह फेरे

राधाकृष्ण पेपरबैक्स

राधाकृष्ण पेपरबैक्स में
पहला संस्करण: 2006
आठवाँ संस्करण: 2016

© शिवानी साहित्य प्रकाशन प्रा. लि.

राधाकृष्ण पेपरबैक्स: उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

शाखाएँ: अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006
पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-21 1 001
36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : www.radhakrihnaprakahan.com
ई-मेल : info@radhakrishnaprakashan.com

आवरण: आदित्य पाण्डे

CHAUDAH PHERE
Novel by Shivani

ISBN : 978-81-8361-033-9

अंतर्वस्तु

एक
दो
तीन
चार
पांच
छह
सात
आठ
नौ
दस
ग्यारह
बारह
तेरह
चौदह
पन्द्रह
सोलह
सत्तरह
अठारह
उन्नीस
बीस
इक्कीस
बाईस
तेईस
चौबीस

पच्चीस
छब्बीस
सत्ताईस
अट्ठाईस
उन्तीस
तीस
इकतीस
बत्तीस

वो भूली दास्तां, चौदह फेरे की

शिवानीजी का पहला उपन्यास 'चौदह फेरे' जब साठ के दशक के शुरुआती वर्षों में 'धर्मयुग' में किस्तवार छपना शुरू हुआ, तो मेरी बड़ी बहन वीणा और मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, और मां (शिवानीजी जिन्हें हम 'दिद्दी' कहते थे) और बाबू हमारे दो छोटे स्कूली भाई-बहनों के साथ नैनीताल में थे। 'प्रायरी लॉज' नाम का हमारा वह बड़ा-सा मकान हमारे बचपन के स्वच्छन्द-शान्त दिनों का ही नहीं, शिवानीजी की उद्भट रचनात्मकता के लम्बे प्रवाह का भी गवाह बना । कुछ वर्ष पूर्व जब भाई नैनीताल गया, तो किन्हीं अज्ञात कारणों से जलकर खंडहर बन चुके हमारे उस घर के भग्नावशेषों की तस्वीरें ले आया । दिद्दी कुछ देर उन्हें देखती रहीं, फिर उसने चित्रों को परे रख दिया, और उस पर बात नहीं की ।

कालक्रम में जो अप्रिय, कुदर्शन और विखंडित हो गया हो, उसको परे कर, शेष जीवन का सूत्र जहां, जैसा मिले पकड़कर चलते जाना ही दिद्दी का आजीवन तरीका रहा । रचनाधर्मिता में भी, निजी जीवन में भी । अन्तिम वर्षों में वह कई बार अपनी मां की प्रिय उक्ति दुहराती थीं–'जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए ।' कष्ट और अपघात अपने सुदीर्घ जीवन में दिद्दी ने भी कम नहीं झेले, किन्तु उसे लगता रहा कि उसके राम ने उसे कुल मिलाकर सुख से ही रखा था, विशेषकर तब, जब 'चौदह फेरे' लिखा गया । गौर वर्ण, तन्वंगी दिद्दी अपने उज्ज्वल चौड़े ललाट और घनी भंवोंवाले आकर्षक चेहरे के साथ अपनी समवयसा गिरस्थिनों के बीच अलग पहचानी जाती थी। वह बतरस की धनी थी, और सामान्य गृहिणियों की तुलना में बेहद दबंग और मुंहफट भी ! उसके यह गुण उसके उपन्यासों की कई महिला-पात्रों में भी चमकते हैं । भारतीजी ('धर्मयुग' के सम्पादक धर्मवीर भारती) ने शिवानीजी की कलम की ताकत को पहचाना था, और शायद उनका सक्रिय प्रोत्साहन और उत्साह भी इस उपन्यास के लिखे जाने में एक भारी कारक तत्त्व रहा आया। भारतीजी पर दिद्दी का ताउम्र बहुत सहज और निश्छल स्नेह रहा, और उनकी मृत्यु ने उन्हें उतना ही विह्वल कर दिया था, जितना उनके प्रिय बड़े भाई त्रिभुवन की अकालमृत्यु ने । एक सहृदय सम्पादक और उसके लिए लिखनेवाले रचनाकार के बीच कैसे घनिष्ठ तादात्म्य और समझ का सेतु बनता जाता है, इसका एक उदाहरण भारतीजी और दिद्दी का वह नाता था, जिसके प्रताप से शिवानीजी की कलम को चार दशकों तक लगातार चलने

की सामर्थ्य और आत्मविश्वास मिला। बावजूद इसके, कि पारिवारिक परिवेश से लेकर हिन्दी साहित्य के तत्कालीन मठों-जागीरदारियों में, सामान्य मध्यवर्ग की एक अनाम और साहित्यकार की रूमानी छवि से कतई फिरंट, 'शिवानी' ऐसी स्त्रियों के लिए, प्रोत्साहन नगण्य, और उपालम्भ, उपहास और अवमानना प्रचुर मात्रा में मौजूद थे।

'चौदह फेरे' जब दिद्दी ने लिखना शुरू किया था, तो उस वक्त हम सब घर पर ही थे, पर उसके छपते-छपते इलाहाबाद आ चुके थे । आज बहुत खोजने पर भी मैं दिद्दी के लिखने की कोई स्थायी छवि मन में नहीं देख पाती। सभी बच्चों की तरह हम भी तब यथासम्भव अपनी मां का मातृरूप ही देखते और याद रखते थे। मातृत्व के परे, उसका एक व्यक्ति और (कुछ दुर्लभ स्थितियों में) रचनाकार के रूप में कैसा जीवन/व्यक्तित्व है, यह हम शायद देखकर भी नहीं देखते थे । बस इतना ही याद है कि बेहद मामूली फुलस्केप कागज का एक बड़ा फोलियो वह स्थानीय 'मॉडर्न बुक डिपो' से खरीदती रहती थी। छिटपुट 'रफ-ड्राफ्ट' लिखे जाते थे, हमारी पुरानी स्कूली कापियों के पन्नों में ! दो-चार किस्तें हो जातीं, तो घर का पुराना नौकर जाकर इस हस्तलिखित आंशिक पांडुलिपि को डाकखाने में रजिस्ट्री पोस्ट से 'धर्मयुग' के मुम्बई स्थित दफ्तर को रवाना कर आता । उसके बाद किस्तें लगाकर लिखी जातीं, और यथासमय मुम्बई जा पहुंचतीं । भारतीजी, और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सह-सम्पादक हिमांशु जोशी, दोनों ने बाद में बताया था कि शिवानीजी के उपन्यासों की शुरुआती किस्तों का आ पहुंचना, प्रसार विभाग में परम उत्साह का संचार कर देता था। प्रसार संख्या आर्डर धड़ाधड़ बढ़ने लगते, और सम्पादकीय विभाग को नेक सलाहें दे दी जातीं, कि प्रकाशन को जितने सप्ताह खींचा जा सके, खींच दिया जाए। इस सबके बावजूद दिद्दी के फक्कड़ भोलेपन का आलम यह था, कि 'वामा' तथा 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में मेरे सम्पादकत्व में जब उसके उपन्यास 'अतिथि' और 'कालिन्दी' छपे, तो उसने पूरी संजीदगी से मुझे आगाह किया था, "देख अगर घटिया लगें तो फेंक देना । वर्ना सब कहेंगे अपनी ही मां के उपन्यास छापती चलती है ।"

आज याद नहीं, कि 'चौदह फेरे' से प्राप्त रॉयल्टी का कितना अंश हम बहनों के हॉस्टल-प्रवास की तैयारियों में खर्च हुआ होगा, लेकिन निश्चित रूप से उस कमाई का बड़ा भाग औघड़दानी दिद्दी ने हम सब पर ही खर्च किया होगा। खुद उसकी अपनी वॉर्डरोब उसके उपन्यासों की स्वाभिमानी, हठीली और गरीब घर की नायिकाओं की ही तरह सुघड़, किन्तु बड़ी सीमित रही आई । इसका कोई असर न उसके आत्मविश्वास पर पड़ा, न जीवनशैली पर। कपट, स्पृहा और कंजूसी दिद्दी से कोसों दूर रहे। इसका उसने मोल भी चुकाया। हिन्दी पाठकों-समालोचकों की एक खास और बेहद मूर्ख वृत्ति रही है, कि हर लेखिका की रचनाओं में से उसके अपने जीवन से खींचकर पिरोए गए सूत्रों, पात्रों की निहायत फुर्सती धर-पकड़ और ठिलठिलाती विवेचना की जाए । 'शिवानी' ही अपवाद क्यों बनतीं । ज्यों-ज्यों किस्तें छपती जातीं, और स्वयं हमारे पहाड़ी समाज के टीकाकारों की खुसफुसाहटें भी प्रबल होती जातीं । 'शिवानी' जी ने स्वयं इसका जिक्र किया है : "परिचित, अपरिचित सब विचित्र प्रश्न पूछते हैं । 'क्या अहल्या फलां है ?' 'कर्नल पांडे वह

थे न ?' मेरे पात्र कल्पना की ही उपज थे । उन्हें अलां-फलां समझा गया तो मेरा दुर्भाग्य था ।''

बहरहाल, इस उपन्यास की लोकप्रियता की बाढ़ नातदारों और स्वयंभू समालोचक तो क्या रोक पाते, इसके जहूरे से हॉस्टल में हमको हाथोंहाथ लिया जाने लगा । मेरा तो यह हॉस्टल में पहला ही वर्ष था, और मुझे बताया गया था कि यह साल बड़ा ही कांटेदार होता है । लेकिन मेरे 'चौदह फेरे' रचयिता की बेटी होने से रैगिंग करनेवाली 'दादा' सीनियरों का रुख भी मेरी ओर जहां तक संभव था, नर्मदिल और प्रेमालु ही रहा आया । अक्सर वे कमरे में ले जातीं, और प्रेमपूर्वक बिठाकर पूछतीं, कि अगली किस्त में कथा में क्या मोड़ आने जा रहा है ? जहां तक मैं पांडुलिपि पढ़ चुकी थी, वहां तक तो काकभुशुण्डि की तरह कथावाचन आसान था । उसके बाद ? 'ट्रंक कॉल करो न !' हुक्म हुआ–'और शिवानीजी से कहो, कि अहल्या पूरे हॉस्टल का क्रेज़ बन गई है। उसकी कहानी को प्लीज़ वे ट्रैजिडी की तरफ न ले जाएं ।' हुक्म का पालन किया (वर्ना मरना था क्या ?) पर दिद्दी तो दिद्दी । हत्थे से उखड़ गई। बोली, ''उन छोकरियों के कहने से मैं अपने उपन्यास का ढांचा क्यों बदलूं भई ! हद है !'' हम दिद्दी को जानते थे, उसका हठ ठना सो ठना। अब क्या हो ? आखिरकार इस जटिलतापूर्ण क्षण में हमें उबारा दिद्दी की परमप्रिय भतीजी और घनघोर पाठिका हमारी ममेरी बहन (शिवानीजी के परमप्रिय बड़े भाई की छोटी बेटी) रागिनी (उर्फ रानी) ने ! उसने अपनी बुआ को एक लम्बी चिट्ठी लिखकर स्पष्ट ताकीद कर दी, कि अहल्या जैसी नायिका को उसने अन्त में जाकर कुछ 'ऐसा-वैसा' किया तो हां, अच्छा न होगा ! घर और बाहर लगातार हल्ला मचाती एक पूरी किशोरी ब्रिगेड की लामबन्दी अन्ततः रंग लाई, और उपन्यास का अन्त (जो सम्भवतः त्रासदी में विसर्जित होने की कगार पर था) एक नाटकीय ट्विस्ट के साथ सुखान्त में तब्दील कर दिया गया । हॉस्टल के दिनों तक हमारी जैजैकार होती रही, एक अन्त बदलवाने का असल कारक तत्व थी रानी !

आज इतने सालों बाद वही उपन्यास दोबारा पढ़ते हुए, अपने जीवन का वह सरल, निष्कपट दौर, अपना प्रिय परिवार, दिद्दी, पारिवारिक मित्रों और हॉस्टल की ढेरों प्रतिवेशिनियों की शक्लें फिर आंखों के आगे आ गई हैं ।

तेहि नो दिवसाः गताः ।

दिद्दी नहीं रही, भारतीजी भी चले गए, प्रायरी लॉज जलकर राख हो गया। लेकिन 'चौदह फेरे' बच रहा है। और हमेशा बचा रहेगा। दुर्लभ फीनिक्स पक्षी की तरह, पाठकों की हर पीढ़ी के लिए पूर्व संस्करणों की राख से पुनः जन्म लेता हुआ । अन्तिम दिनों में दिद्दी ने 'कबीर' का दोहा शायद इसी आशय से कई बार मेरे आगे दोहराया भी था :

कहसि कबीर सुनो रे लोई ।
हम तुम बिनसि रहेगा सोई ॥

और एक लेखक का 'सोई' उसका कृतित्व ही तो है !

–मृणाल पाण्डे

ऊंघे नारियल और ताड़ के वृक्षों से घिरा 'नन्दी' अपने असंख्य लगता था।उत्तंग सौध,बंगाल के। की जगमगाती बत्तियों से किसी जंगी जहाज़-सा लगता था । दूर से किसी भड़कीले होटल-सा दिखता वह अनुपम उत्तंग सौध, बंगाल के कुशल शिल्पियों की चतुर कला का उत्कृष्ट नमूना था । कलकते में एक से एक भड़कीले प्रासाद हैं, दमकीली अट्टालिकाएं हैं, किन्तु 'नन्दी' का सौन्दर्य वास्तव में मौलिक था । सुना है किसी फ्रेंच इंजीनियर को मोटी रकम देकर, कर्नल ने 'नन्दी' का नक्शा बनवाया था । वह एक आलीशान अट्टालिका नहीं, हिन्दूकला के इतिहास के किसी सुवर्णयुग की जीवन्त झांकी थी। कहीं पर दक्षिण के महाबलिपुरम् के गुहाद्वार पर अंकित चित्रों की अनुकृतियां अंकित थीं, कहीं पल्लवशैली के ऊंचे शिखरों को जावा और अन्नाम के मन्दिरों का रूप देकर, गगनचुम्बी, मोहक मरोड़ों में मोड़ दिया गया था । दक्षिण की प्राचीन तक्षण-शिल्पकला बंगाल के कुशल आधुनिक शिल्पियों की चतुर अंगुलियों में पुनः प्राणवान हो उठी थी । कलामर्मज्ञ पाण्डे ने, रंगीन पत्थरों को जोड़-जोड़कर ऐसे अनूठे मेहराब और कंगूरे बनवा दिए थे कि सोलहवीं शताब्दी की भवन-निर्माण-कला भी फीकी पड़ जाती थी। एक खुले प्रकोष्ठ में एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें चारों ओर जाली की झिलमिल खिड़कियां थीं और पूरा फर्श मोज़ेइक था । उसी फर्श और दीवारों की खिल्ली-सी उड़ाती एक कोने में काठ की एक छोटी-सी चौकी पड़ी थी, उस पर लाल कपड़े से ढकी एक रामायण, गृहस्वामिनी की स्मृति-चिन्ह बनी रह गई थी । कमरा उस राजप्रासाद की गृहस्वामिनी का था, जो अपने राजसी वैभव को स्वेच्छा से ठुकराकर, बदरीनाथ की कि सी गहन कन्दरा में जाकर वैराग्य-साधना में खो गई थी। विलास के जिस कक्ष में वैराग्य का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध था, वहां कहां से आकर वैराग्य ने उसे गिद्ध की तरह झपटकर दबोच लिया, यह एक आश्चर्यजनक व्यापार ही था। एक दिन वह स्वयं ही अपने वैभव से ऊबकर चली गई थी। एक पत्र वह पति के लिए छोड़ गई थी : "गुरुदेव अब अस्सी साल के हो चुके हैं, आपकी सेवा यथेष्ट कर ली, फिर आपकी सेवा करनेवाले बहुत हैं । गुरु के चरणों में रहकर ही दिन काट लूंगी ।"

"ऐसी-तैसी साले गुरु की," कर्नल ने क्रोध से दांत पीसकर कहा था, और चिट्ठी फाड़कर फेंक दी थी। उसकी सेवा करनेवाले कौन थे और किस पर नन्दी ने चोट की थी, वह समझ गया, पर उसे किसी का भय नहीं था ।

न फिर कर्नल ने पत्नी को बुलाने का कोई प्रयत्न किया, न वह स्वयं ही लौटकर आई । बात धीरे-धीरे आई-गई हो गई । केवल उस अट्टालिका के नाम के साथ ही गृहस्वामिनी की स्मृति अवशिष्ट रह गई । 'नन्दी' के विराट बावर्चीखाने में दिन-रात दावतों का आयोजन

पूर्ववत् होने लगा, संयम की शिला किसी सैलाब में डूबकर रह गई थी, विवेकस्तम्भ ढह गया था । अब गृह का प्रत्येक सदस्य, पूर्णरूप से स्वतन्त्र था। उड़िया महाराज अपने दाल के कटोरे में जी भरकर घी उड़ेल अपने सूखे शरीर की स्वास्थ्य-वृद्धि कर सकता था। मुसलमान बावर्ची अहमद, पूरा मुर्ग अपने घर भिजवा सकता था। धोबी जितनी चाहे उतनी कमीज़ें धुलाई में पार कर सकता था । आए दिन मेहमानों की बाढ़ आने लगी । दरिद्र आत्मीय स्वजन दामन फैलाकर हाता घेरने लगे। कर्नल कुमाऊं का आगा खान था, दरिद्र विधवाओं का कल्पतरु ।

कर्नल के नाम के पीछे किसी फौजी ओहदे का वैभव नहीं था । जूट के व्यवसायी कर्नल का नाम केवल उसकी छह फुटी विराट देह के बूते पर ही पड़ गया था। कोई ऐसा व्यवसाय नहीं था, जिसकी डोर कर्नल के हाथ में नहीं थी । उसके पिता जज थे और माता थी संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान शास्त्री रामेश्वरजी की पुत्री । उन्हें स्वयं ज्योतिष का ऐसा विलक्षण ज्ञान था कि दूर-दूर से लोग उनसे अपना वर्षफल बनवाने आया करते थे । पुत्र की प्राप्ति उन्हें शिव की आराधना से हुई थी, इसी से पुत्र का नाम धरा गया शिवदत्त । जज साहब के एक ही सन्तान हुई, इसी से बड़े लाड़-प्यार से लालन-पालन होने लगा। जज साहब स्वयं, पहाड़ के कमेटी स्कूलों में ही वर्णपाठ के साथ-साथ मां-बाप की गालियों का पाठ पढ़कर बड़े हुए थे । पहाड़ी मास्टरों के लिए उन्होंने गांजे की गोलियां और सुरती का मसाला जुटाया था । सातवीं कक्षा में पहुंचते ही सिगरेट की अमृतस्वरूपी फूंक का रसास्वादन किया था, इसी से चाहते थे कि पुत्र नैनीताल के साहबी स्कूल में शिक्षा प्राप्त करे, जहां काले झब्बेदार लबादे पहने, आयरिश ब्रदर, समृद्ध पिताओं के भाग्यवान पुत्रों को चाबुक से चमड़ी उधेड़कर अंग्रेज़ी अदब-कायदे सिखाते थे । फीस बड़ी तगड़ी थी, पर जाड़ों की छुट्टियों में शिवदत्त स्कूल के ब्लेज़र में चमकता घर आता, तो जज साहब का सीना गर्व से तन जाता । किसी तरह लड़का सीनियर केम्ब्रिज पास कर ले, फिर विलायत भेज दूंगा, जज साहब अपने मित्र से कहते, पर पुत्र को विलायत भेजने का स्वप्न साकार नहीं हो पाया ।

कुमाऊं तब सनातनी संस्कारों की जटिल बेड़ियों में जकड़ा था । एक साहसी कुमाऊंनी तरुण जापान भाग गया था और उसकी विदेश-यात्रा से क्षुब्ध होकर, कुमाऊं के महापण्डितों ने उसके पूरे परिवार को जाति-च्युत कर दिया था । जज साहब के वृद्ध पिता जीवित थे । पौत्र के अंग्रेज़ी स्कूल से लौटने पर, उस पर विधिवत् गोमूत्र का छिड़काव कर उसे पितामह की चरण-धूलि मिलती। शिवदत्त को इण्टर कराने के पश्चात् इलाहाबाद भेज दिया गया, साथ में एक ब्राह्मण रसोइया भी गया। सन्ध्या-पूजन के नियमों को निभाता शिवदत्त एम.ए. कर, वकालत पढ़ने लगा। इसी बीच शिवदत्त के भाग्य ने पलटा खाया । कुमाऊं के कमिश्नरों से जज साहब के पूर्वपुरुषों की मैत्री का क्रम चला आ रहा था, ट्रेल से लेकर रामजे तक उनके परिवार के परम हितैषी मित्र रह चुके थे । एक दिन कमिश्नर साहब ने तरुण शिवदत्त को देखा और जज साहब से कहा : 'पाण्डे, क्यों वकालत पढ़ाकर बेटे का

जीवन बिगाड़ रहे हो? देखते नहीं, लड़का व्यवसाय में लगाने से चमक उठेगा। कलकत्ते का विल्सन मेरा मित्र है, एक चिट्ठी लिख देता हूं, तुम्हारे लड़के को बना देगा।' उन दिनों किसी उच्चपदस्थ अंग्रेज़ अफसर की चिट्ठी सोने की चिड़िया होती थी । विल्सन ने कर्नल को देखा, परखा और पहचान लिया । पटसन का व्यवसायी लखपती विल्सन, मानव-हृदय का अद्भुत जौहरी था । यदि कर्नल अयोग्य होता तो उसे ठोकर मारकर दूर फेंकने में उसे तनिक भी संकोच न होता, चाहे वह उसके अन्तरंग मित्र का तोहफा ही क्यों न हो, पर वह तो सचमुच ही बहुत प्यारा पहाड़ी तोहफा निकला । युवा शिवदत्त के बुद्धि-दीप्त चेहरे की तीखी दृष्टि ने ही विल्सन को सबसे अधिक प्रभावित किया । दृष्टि क्या थी, अच्छी-खासी सर्जन की तेज़ छुरी थी, जो सम्पर्क में आनेवाले व्यक्ति के हृदय में धंसकर मन का सच्चा हाल जान लेती थी । विल्सन को ऐसी ही तीखी दृष्टि की आवश्यकता थी । भारतीयों के जटिल हृदयों की गुत्थी सुलझाने के लिए एक ऐसे ही सजग चाणक्य की खोज थी उसे ।

विल्सन के अधिकांश मातहत बंगाली थे और प्रायः सबके सब आवश्यकता से अधिक बोलते थे । कर्नल का मितभाषण ही विल्सन की दृष्टि में उसका सबसे बड़ा गुण था। कर्नल एक रहस्यमय चुप्पी के आवरण में डूबा रहता और वह बोलता तो प्रत्येक शब्द को विवेक के तराजू में तौलकर । उसकी आवाज़ नरम थी, पर आवश्यकता पड़ने पर गरम भी हो सकती थी। ऑफिस के सारे कर्मचारी उससे थर-थर कांपते थे । वह जानता था कि दिन-रात की चिड़चिड़ और धमकियों से ऑफिस का अनुशासन नहीं साधा जाता। एक ही बार गरजकर जैसे शेर बब्बर पूरे जंगल को सहमा देता है, उसी प्रकार यदा-कदा एक-आध बार गरजकर वह सबकी मूंछें नीची कर देता । कर्नल का दम्भ भी उसके व्यक्तित्व का एक विशेष अंग था । वह ऐसे चलता जैसे वह पूरे संसार का एकच्छत्र निरंकुश सम्राट हो, उसकी छोटी आंखों में दूसरों की खिल्ली-सी उड़ाता उसका अहंभाव, उसके गर्वीले स्वभाव को और भी स्पष्ट कर देता । उसके इसी दम्भी स्वभाव ने उसके मित्रों की संख्या बहुत कम कर दी थी। शत्रु ही अधिक थे, किन्तु कड़े से कड़े शत्रु का सिर भी वह बड़ी निर्ममता से कुचलकर फेंक सकता था। 'तुम्हारे अदब-कायदे और बुद्धि देखकर मुझे अनायास ही लॉर्ड चेस्टरफील्ड का स्मरण हो आता है पाण्डे,' विल्सन साहब उसके चौड़े कन्धे थपथपाकर कहते, तो वह किसी कुशल फौजी अफसर की भांति शरीर को काठ का-सा बनाकर खड़ा रहता । 'थैंक्यू सर !' वह अनोखी अदा से साहब की प्रशंसा ग्रहण करता, पर उसके गम्भीर चेहरे पर आत्मश्लाघा की एक रेखा भी नहीं उभरती। धीरे-धीरे विल्सन की अनुपम शिक्षा ने उसे कुशल व्यवसायी बना दिया । बड़ी-बड़ी फर्म से उसके लिए बुलावे आते, पर अब वह अपनी जड़ के सहारे अभिमान से खड़े होने योग्य पुष्ट तमाल तरु था, किसी का आश्रय लेकर पनपनेवाली वन्य लता नहीं । विल्सन साहब उसे अपने पुत्र से भी बढ़कर मानते थे। व्यापार-सम्बन्धी कोई भी जटिल समस्या होती, पाण्डे उसे मिनटों में सुलझा देता । कर्मचारियों की हड़ताल होती, तो बागियों को बेरहमी से उखाड़कर फेंक देता ।

इधर विल्सन साहब को स्वदेश की याद भी सताने लगी थी। विल्सन एक कुशाग्र बुद्धि के दूरदर्शी पुरुष थे । वे जान गए थे कि एक न एक दिन अंग्रेज़ों को सोने की चिड़िया की

ममता की डोर को काटकर जाना ही पड़ेगा । विल्सन साहब अब यथेष्ट गरिमा बटोर चुके थे । अपना कारोबार समेटकर इंग्लैण्ड जाने लगे, तो बड़े आग्रह से पाण्डे को भी साथ ले लिया । जज साहब ने चुपके से अनुमति दे दी । समाज का घोर विरोध उन्होंने स्वयं झेल लिया, किन्तु पुत्र की उन्नति का द्वार अवरुद्ध नहीं होने दिया । पाण्डे कितना घूमा था–ज्यूरिक, वियना, फ्रांस, इटली, जावा, सिंगापुर, बर्मा, कुछ भी बाकी नहीं रहा । इसी बीच विल्सन साहब का देहान्त हो गया । यह पाण्डे के लिए बड़ी कड़ी चोट थी। शोक से विह्वल होकर वह घर लौटने को व्याकुल हो उठा। विल्सन ने ही आज तक हाथ पकड़-पकड़कर उसे सफलता की दुर्गम चढ़ाई पार करवाई थी। अब उसकी बांह कौन गहेगा? स्वदेश लौटकर उसने अपने मृत स्वामी का करोबार फिर चला लिया । विदेश से लौटने पर उसकी व्यवसायी बुद्धि और भी प्रखर हो गई थी। कुछ ही दिनों में वह कलकत्ते के प्रमुख व्यवसायियों में से एक था । पुत्र की महिमा से जज साहब और भी महिमामय हो उठे थे ।

एक से एक लड़कियों की कुण्डलियां आने लगी थीं, पर उन्होंने अपने विलायती पुत्र के लिए एकदम ही देशी कन्या ढूंढ़कर वाग्दान कर दिया । तब कुमाऊं में कन्या का रूपरंग नहीं, कुल और गोत्र देखा जाता था । विवाह 'का दिन नियत कर कर्नल को तार कर दिया गया था । कर्नल की मां का मायका नहान में था । नहान की प्रवासिनी कुमाऊंनी रमणियां अपने सौन्दर्य के लिए सदा से प्रसिद्ध रही हैं, इसी से कर्नल को भी विशेष आपत्ति नहीं हुई थी । विवाह हुआ और वह विवाह बहुत दिनों के लिए कुमाऊं के परिवारों में चर्चा का विषय बन गया। बारात के आगे झूमते हाथी, जलती मशालें और आकाश को रंगीन बनाती आतिशबाज़ियां सबकुछ कुमाऊं के भोले सरल बारातियों के लिए एकदम नया अनुभव था । बताशा-सी खस्ती कचौड़ियों, फेनीदार बालूशाहियों और उनसे भी मीठी नहान की सुन्दरियों की बंकिम चितवनों ने बारातियों को मोह लिया। ऐसी-ऐसी मीठी गालियां गाई गई कि समधी रस-विभोर हो उठे । दहेज में मीना के गागर, चांदी का पानदान, मामा के यहां का भात आदि सब पहाड़ी बिरादरी के लिए एक नई टीमटाम थी।

पहाड़ में केवल सवा रुपया जामाता को थमाकर, कुश और हल्दी के बूते पर ही कन्यादान किया जाता था । आज पहली बार विवाह की परम्परा ने नई करवट बदली थी। गठरी-सी सिमटी अपनी नई पत्नी को देखकर कर्नल को एक और चेहरे की स्मृति विह्वल किए दे रही थी। घोड़ा भगाती पेट्रिशिया विल्सन, जिसकी किशोर पिण्डलियां तंग जोधपुरी में उभर आती थीं; स्पोर्ट ब्लाउज़ से झांकता उन्मुक्त यौवन, नीले समुद्र-सी उदार आंखें और कन्धे पर झूलता काशगुच्छ-सा बालों का गुच्छा । विल्सन साहब ने जान-बूझकर ही, कितनी बार दोनों को अवसर दिया था । इटली के नीलाकाश के नीचे, मिस्र के पिरामिड के साये में पेट्रिशिया का सौन्दर्य उसे क्लियोपेट्रा की ही भांति चुनौती दे उठा था । क्षण-भर को पागल बना दिया उसे उस मादक दृष्टि ने, पर कुल की मर्यादा और समाज का अंकुश उसे सर्वदा जागरूक रखता । जब कभी चित्त का विद्रोही घोड़ा इधर-उधर मुंह मारता, वह विवेक की लगाम खींचकर राह पर ले आता । अपनी दोगली सन्तान को मां की गोदी में डालकर क्या वह उसे सुखी बना सकेगा? पेट्रिशिया विल्सन का सौन्दर्य घोड़े की पीठ, ब्रिज

की मेज़, नाचघर या अपने पिता के साहबी बंगले ही में खिल सकता था, उसके चिलम फूंकते बूढ़े पितामह, जिनकी टल्ले लगी धोती को उनके जज पुत्र की महिमा भी नहीं बदल सकी, पेट्रिशिया क्या बदल सकती? उसके क्रोधी दुर्वासा-से पितामह चिलम ठंडी हो जाने पर अपनी बहुओं को कैसी कदर्य गालियां दे डालते थे : 'ओरी पातरो, क्या तुम्हारी मांएं भी तुम्हारे खसमों की कचहरी में चली गई, जो आज ससुर की चिलम का भी ध्यान नहीं रहा ?' मुंह में आंचल ठूंसकर, हंसी रोकती घर की बहुएं हंस-खेलकर ही क्रोधी पितामह के अग्निबाण सह लेती थीं, पर पेट्रिशिया क्या ऐसा कर सकती थी? पेट्रिशिया विल्सन अपने सुनहले यौवन को कर्नल के कुल के घूंघट की परिधि में कभी नहीं बांध पाती । हृदय पर पत्थर रखकर कर्नल उसे भूल गया था ।

विवाह कर, कर्नल अकेले ही कलकत्ता लौट आया । बहू को साथ ले जाने की धृष्टता तब कुमाऊं का तरुण नहीं कर सकता था । पुत्र बहू को सास और ससुर की सेवा के लिए ब्याह कर लाता था, प्रणय-निवेदन की सार्थकता के लिए नहीं।

दो

नन्दी गोरी थी, शरीर की गठन भी सुन्दर थी, पर फिर भी चेहरे पर लावण्य नहीं था, एक रूखा-सा भाव पूरे चेहरे पर फैला रहता था । कर्नल चला गया और नन्दी परिवार के विशाल जहाज़ में खलासी की तरह जोत दी गई । जाड़े आते और झर-झरकर आकाश से बर्फ रुई-सी धुनकर, पत्थरों की ढालू छतों पर बिखर जाती । सेब, अखरोट और दाड़िम की हरी-हरी पत्तियां सूख-सूखकर झड़ जातीं, कोई उनके सूखे ढूंठ देखकर नहीं कह सकता था कि वे ही सूखे ढूंठ कभी फलों के भार से दुहरे होकर लद जाएंगे । ऐसी ही बर्फ नन्दी के यौवन पर भी गिर-गिरकर जमने लगी। नित्य का बंधा काम वह निभाती जाती, कई जोड़ी चचिया, ददिया सासों की सेवा का उसे अभ्यास हो गया था, जिस दिन पितामह की सधी गालियों की बौछार नहीं होती, उसे वह दिन अधूरा-सा ही लगता । मंझली सास को चाय में अदरक डालकर भरा गिलास कमरे में ही पहुंचाना होता । बूढ़े पितामह की चिलम के इंजन में निरन्तर कोयला झोंकने का काम भी उसी के ज़िम्मे था । स्वयं जज साहब को नहान की बहू के गुदगुदे हाथों की डली रोटी में स्वाद आता था । नहान की बहू, ऐसा दीया थी जिसकी जगमगाती जोत से घर-भर में उजाला था, अगर अंधेरा था, तो केवल उसी दीये तले । वर्ष में एक बार कर्नल घर आता, पर नन्दी को अपने नाना कार्य निबटाते अबेर हो जाती। जब वह पति के कमरे में पहुंचती, तो कर्नल उसे झिड़कियों से चीरकर रख देता : 'हद है, लगता है तुम्हें घर के खूसट बूढ़े और बूढ़ियों से ही मुहब्बत है, रात भी वहीं बिता आतीं ।'

सहमकर नन्दी सिसक उठती। वर्ष-भर के उपालम्भ रोबीले पति की एक ही धमकी में उड़ जाते । अरसिक कर्नल का प्रणय-निवेदन भी उसकी शुष्क धमकी-सा ही रहता । दीये की बत्ती को फूंकने में यक्ष पत्नी की जिस अनुपम सौन्दर्यमयी भाव-भंगिमा का कालिदास ने वर्णन क़िया है, वह शायद नन्दी में भी रहा होगा, किन्तु कर्नल की आंखें उसके उस सौन्दर्यपक्ष को नहीं देख पातीं, वह तो यही जानता था कि लकड़ी और कण्डे के बदबूदार धुएं में लिपटी, उसकी पत्नी एक सुगृहिणी थी, किन्तु कुशल प्रेमिका नहीं । उधर पति के निर्लज्ज प्रणयालाप से ऊबकर नन्दी कभी-कभी कानों में अंगुली धर लेती। हाय राम, कैसी छिछोरी बातें बकता रहता था रात-भर! दिन में जिसके गम्भीर चेहरे के आवरण को चीरकर, हंसी की विद्युत्-छटा-सी भी नहीं दीखती थी, रात को वही संयमी पति अत्यन्त असंयमित आचरण कर बैठता था। कर्नल अपनी बर्फ की शिल-सी ठण्डी पत्नी पर कभी-कभी ऐसा उबल जाता कि छुट्टी शेष होने से पूर्व ही स्वयं छुट्टी की छुट्टी कर देता और कलकत्ते भाग जाता ।

इसी तरह कर्नल के वैवाहिक जीवन में धीरे-धीरे' विष घुलता गया और उसने घर आना भी बहुत कम कर दिया। तार से उसे पुत्री के जन्म का समाचार मिला तब भी घर नहीं

गया। । नन्दी ने चचेरे देवर के पार्श्व में बैठकर ही षष्ठी-पूजन किया, तो उसकी आंखें घूंघट के भीतर ही छलक उठीं । पण्डित के मन्त्रों के बीच ही उग्र पितामह की गालियों का क्रम चालू था : 'शिबिया के पल्ले नहान की परदेशिन पड़ी, अपने कुमाऊं की छोरी होती तो पहलौठी ही में दन्न से बेटा जनती, हरदत्त की बहू का पहलौठी लड़का, देवदत्त के भी छोकरा ही हुआ, मेरे भी शिबिया का बाप, और उसकी बहू के भी लड़का, इस साली ने खानदान की रीत बिगाड़ दी-पहले ही पहल चेहड़ी, देखता हूं हरवंश का पाठ कराना होगा। पर हरवंश का पाठ बेचारे नहीं करा सके, बीच ही में एक दिन नहान की बहू को मां की एक भद्दी गाली देकर उठे कि चकराकर गिर पड़े और फिर नहीं उठे। 'पुन्यातमा लोग राम का नाम लेकर चोला छोड़ते हैं, बूढ़ा मरा भी तो मां की गाली देकर,' घर की पुरानी मुंहफट नौकरानी ने कहा । गोबर से ज़मीन लीप-लापकर लिटा दिया गया और फिर सधे स्वर में घर की बहुओं के समवेत क्रन्दन ने दिक्-दिगन्त गुंजा दिए। मन ही मन प्रसन्नता के विमानों पर उड़ती, घर की बहुएं बड़ी देर तक रोती-चीखती रहीं । एक भयंकर युग का अन्त हो गया था । वह गृह के स्वामी की नहीं, किसी विराट दानव की देह पड़ी थी, जिसके आतंक से नहान की बहू ने अपने पति की भी अवहेलना कर दी थी, वही मृत्यु में कितना भोला और असहाय लग रहा था। लोगों में कानाफूसियां हो रही थीं । 'बूढ़ा पंचकों में मरा है, न जाने किस-किसको ले जाएगा ।' हुआ भी ऐसा ही, तेरहवीं करके जज साहब लौटे तो बोले : 'छाती में बड़ा दर्द है।' डॉक्टर बुलाने के बदले ये पति की कुण्डली लेकर बैठ गई । ब्रह्मा की गोद में भी जज साहब बैठे हों, तो भी काल खींचकर ले जाए, ऐसा विचित्र योग था। उन्होंने सिर से पैर तक श्रृंगार किया, पान खाकर बड़ी-सी बिन्दी-टिकुली लगाई और पिछवाड़े के कमरे में जाकर द्वार बन्द कर लिए। थोड़ी देर बाद पूरे घर में कोहराम मच गया । डॉक्टर ने आते ही सबके कलेजे में तीर-सा मार दिया । हृदय-गति बन्द हो गई थी । एक सूतक की छूत दूर भी नहीं हुई थी कि यह वज्रपात हो गया । कन्धा लगाने को बेटा भी उतनी दूर से नहीं आ सकता था । जज साहब की बहू की ढूंढ़ मची, बड़ी देर तक द्वार खटखटाने पर जब नहीं खुला, तो कुल्हाड़ी से द्वार तोड़ दिया गया । सोलह शृंगार किए सती-लक्ष्मी की निर्जीव देह, पति के विवाह के रेशमी पीताम्बर से बंधी झूल रही थी । दोनों को एक ही अर्थी पर सजाकर रामनाम सत्य की महत्ता को भूल, लोग सती मैया की जै करते श्मशान ले गए ।

तीसरे दिन कर्नल पहुंचा । क्रिया करके वह घुटनों तक धोती पहन, सिर मुंडाकर सफेद कपड़े का छोपा बांधकर घर लौटा, तो नन्दी को पहली बार पति को देखकर किसी प्रकार का भय नहीं हुआ । घनी 'मूंछों की यवनिका ने झूठमूठ ही पति के चेहरे को भयावना बना दिया था। तेरहवीं कर जब कर्नल कलकत्ता जाने के लिए सामान बांधने लगा, तो नन्दी भी अपना सामान तैयार करने लगी ।

'क्यों, यह क्या, तुम कहां चल रही हो?' उसने आश्चर्य से पूछा ।

'आपके साथ,' पत्नी के दृढ़ कण्ठस्वर से वह चौंक गया : 'अब मैं यहां किसके पास रहूंगी? चचिया, तइया सासों की मैंने यथेष्ट सेवा कर ली, अब आपकी करूंगी,' उसने हंसने का उपक्रम भी किया था।

'वाह, बड़ी देर में मेरी सेवा का ध्यान आया, पर तुम्हें मैं कहां ले जाता फिरूंगा, मुझे दिन-रात दौरे पर रहना पड़ता है, न हो तो थोड़े दिन मायके रह आओ, सुविधा होने पर तुम्हें बुला लूंगा ।'

फिर नन्दी ने कुछ नहीं कहा । भाई आकर उसे लिवा ले गए।

मायके में भी मां नहीं थी। पिता का पहले ही देहान्त हो गया था । भाई रेवतीरमण की कविराजी की दुकान थी । घर के रईस थे । इसी से बहन को अपने पास रखने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। पहले-पहल मायके में नन्दी का भव्य स्वागत हुआ। भाभी ने ऊपर का कमरा खोल दिया । बच्ची को मालिश करने के लिए नाइन लगवा दी, पर जब वर्ष में एक बार भी कर्नल ने पत्नी-पुत्री की कोई खोज-खबर नहीं ली, तो भाभी ने पैंतरा बदल लिया । प्राय: ही ननद-भाभी में चखचख चलने लगी। रेवतीरमण सरल स्वभाव के धर्मभीरु व्यक्ति थे । बहन के मन की व्यथा से वे भी व्यथित थे, किन्तु पत्नी से दबरा-दबते एकदम ही दब्बू बन गए थे । नन्दी को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसका वे विशेष ध्यान रखते, किन्तु ननद-भाभी के व्यवहार में कटुता विषम होती गई । नन्दी भाभी के कटु व्यवहार को देखकर अवाक् थी । जिस मायके के आंगन और देहरी की परिधि में, उसने ही पहले-पहल एक अपरिचित किशोरी को अपना बनाकर हृदय से लगा लिया था, वही आज गृह की स्वामिनी बनकर उस पर शासन करना चाहती थी। पन्द्रह वर्ष तक जिस कमरे में नन्दी का एकच्छत्र राज्य था, वहां अब भाभी की बहन दुल्लो रहती थी। उसकी बुलबुल बाटी, पट्ट पांयचे की तंग सलवार, कसी-कसी कमीज़ और नॉयलौन का दुपट्टा, सबकुछ देखकर नन्दी सिर से पैर तक जल-भुन जाती थी। कॉलेज ही में पढ़ती है, तो क्या हो गया । ठसक तो ऐसे दिखाती थी, जैसे वह नन्दी के बाप का नहीं, उसी के बाप का घर हो। भाभी के साथ नन्दी का चौथा वर्ष चल रहा था, अहल्या मामा की आंख की पुतली थी, पर मामी की आंख का कांटा, इसका एक कारण और भी था । रेवतीरमण के दो पुत्र और एक पुत्री थी, किन्तु विधाता ने तीनों को ही सौन्दर्य-दान में कृपणता दिखलाई थी । दोनों लड़के हकलाते थे और एक साथ ही दोनों को माता निकली थीं, भयानक यन्त्रणा देकर माता शान्त हुई थीं, किन्तु दोनों के चेहरे की बलि लेकर । लगता था निशान बनाकर ही रोग ने निरीह चेहरों पर चानमारी-सी कर छेद दिया था । लड़की गोरी थी, पर जन्म से ही गूंगी और बहरी होने से चेहरा वज्रमूर्खा का ही था । नन्दी की अहल्या, गुलाब की कली थी, गोरा नहानी रंग, काले भंवरे-सी पुतलियां और आठ अंगुल का चमकता माथा । ऊन की नाना रंग के फुन्दे लगी टोपी और गुलाबी-हरे फूहड़ से रंगों की मिलावट से बुना स्वेटर भी उसके सौन्दर्य को नहीं ढांप सकता । नन्दी की भाभी अपने कुत्सित बच्चों के चेहरों से उस सलोने चेहरे का मिलान करती और सारी भड़ास नन्दी के मत्थे निकालती।

'सांड़ जैसा खबीस अपने बीबी-बच्चों की भी सुध न ले, तो थुड़ी है साले पर,' सुना-सुनाकर वह कहती, 'यहां कौन-सी आमदनी है, मालती बसन्तकुसुमाकर, हिंगाष्टक यही

सब बेच-बाचकर धेला-पाई मिला, तो बनिये के पैसे चुकाए-ऐसे दलिद्दरों के पल्ले बांध दिया, मेरे मायके में मरी बीस-बीस भैंसें बंधी थीं ।'

नन्दी भी नहले पर दहला थी : 'किसे सुना रही हो भाभी, वह दिन भूल गई जब तुम्हारे भैया को बाबूजी ने गरम कोट सिलवा दिया था । ठंड के मारे थर-थर कांपते इसी दरवाजे पर तुम्हें लिवाने लुरबुरिया से खड़े हो गए थे । ऐसी बीस-बीस भैंसें बांधनेवाले हमने बहुत देखे हैं ।'

कर्कशा सावित्री की क्रोधाग्नि में घी की धारा पड़ जाती । एक ही धोती पहनकर वह चौके से बाहर निकल आती : 'कोई न कोई बात तो हुई ही होगी, जो खसम ने दूध की मक्खी-सा फेंक दिया। ऐसी ही शरम थी, तो भाई की छाती पर मूंग दलने क्यों आ गई! खाने को तो ढाई सेर खाती हो, सवा सेर दूध तो तुम्हारी बिटिया पीवे है । उस पर नखरे देखो मुई के, हाय भैया, मुझे लवंगादिचूर्ण ला दो, च्यवनप्राश ला दो, बड़ी कमज़ोरी हो गई है। हमें लूटकर मुटा रही हो बीबी, क्यों भाई-भाभी का धुआं देखती हो ।'–इसी बीच दोनों बेटे और गूंगी बेटी खाना मांगने लगे। ले धमाधम सावित्री ने उन्हें ही कूट दिया । चीं-चीं पें-पें से सारा मुहल्ला गूंज उठा, आसपास के पड़ोसियों को बहुत दिन से ऐसी बढ़िया नौटंकी देखने को नहीं मिली थी, वे क्यों चूकते । रेवतीरमण दुकान से लौटे, तो चूल्हे में पानी पड़ा था, बहुत सारे पानी ने बहकर मिट्टी-पुते चौके में कीचड़ ही कीचड़ कर दिया था । खुली दाल पर सहस्रों मक्खियां जुटी थीं । आटा गूंथकर परात दूर पटक दी गई थी । चिमटा एक ओर पड़ा था, संडसी दूसरी ओर । चौका नहीं, जैसे पानीपत का युद्धक्षेत्र था । यह वही चौका था जहां उसकी स्नेहमयी जननी, नाना व्यंजन परसकर दोनों भाई-बहनों को एकसाथ खिलाती थीं। यह वही नन्दी थी जिसके ब्याह के दिन वह फूट-फूटकर रोया था, आज कलह ने गृह की श्री छीन ली थी । वह दबे पैरों से पत्नी के कमरे में गया, वह सांकल भिड़ाकर बन्द थी। बहन के कमरे में झांका तो उसकी आंखें भर आई। रूखी लटों को हाथ से हटाती नन्दी अहल्या को सुला रही थी, चेहरा सूखा था, होंठों पर पपड़ियां जमी थीं । साड़ी मैली थी । न बालों में तेल था, न माथे पर बिन्दी ।

'नन्दी,' रेवतीरमण ने बढ़कर उसके कन्धे पर हाथ रखा, तो वह फूट-फूटकर रोने लगी–मां के रोने से अबोध अहल्या जग गई और मामा की गोद में जाने को मचलने लगी।

'भैया, मुझे आज ही कलकत्ते पहुंचा दीजिए, अब मैं यहां नहीं रहूंगी,' नन्दी का शरीर सिसकियों से कांप रहा था। बहुत सोच-विचार के बाद रेवतीरमण ने यही स्थिर किया कि जैसे भी हो, बहन को उसके पति के पास पहुंचाना ही होगा, वह बहनोई के दोनों पांव पकड़कर समझाएगा–आखिर ऐसा क्या दोष है उसकी बहन में? वह पढ़ी-लिखी नहीं है यही न? पर क्या वे जज साहब को पहले ही नहीं लिख चुके थे कि नन्दी केवल कक्षा चार तक ही पढ़ी है । अहल्या को लेकर नन्दी स्टेशन से अकेली ही अपने पति-गृह जाने की ज़िद पर अड़ गई । जैसे भी हो, वह भाई के सम्मुख अपना अपमान नहीं देख सकेगी। पति ने यदि उसे स्वीकार नहीं किया, तो वह भागकर हुगली नदी में कूद जाएगी । भाई ने बहुत

समझाया, पर उसने एक न सुनी । बहन के ज़िद्दी स्वभाव को वे जानते थे, नन्ही भानजी को चूमकर उन्होंने सामान रिक्शा में रखवाया और नन्दी अकेली ही पुत्री को लेकर चल पड़ी ।

तीन

जब नन्दी अपने पति के द्वार पर आकर खड़ी हुई, तो पति का वैभव देखकर दंग रह गई । नेपाली दरबान ने गेट पर ही रोक दिया, 'क्या है मां जी, किससे मिलना है ?'

'साहब से,' उसने कहा था।

'साहब तो इतनी भिनसार किसी से नहीं मिलते, आप बैठिए ।' उसने एक बेंच खींच दी थी–ऐसे मिलनेवाले दिन-रात आया करते थे और कभी-कभी तो साहब बाहर ही बाहर उनकी मांगें पूरी कर उन्हें बिना भीतर बुलाए ही रफा-दफा कर देते ।

'साहब से कहो, मालकिन आई हैं, मैं बाहर नहीं बैठूंगी,' प्रभुत्त्वपूर्ण डगें भरतो वह भीतर चली गई–ऊंची-ऊंची घुमावदार सीढ़ियां थीं–एक-एक मोड़ पर पीतल के बड़े-बड़े फूलदान थे, दीवारों पर बड़ी-बड़ी पीतल और चांदी की मढ़ी तस्वीरें थीं, सबसे ऊपर की सीढ़ी पर एक विशाल आईना दीवार पर टंगा था, उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर नन्ही अहल्या ताली पीटकर चीखने लगी : 'अम्मा देखो तुम हम, अम्मा देखो तुम हम ।' और शायद उसी का कण्ठ सुनकर ड्रेसिंग गाउन डालकर कर्नल बाहर निकल आया । पति को देखकर नन्दी और नन्दी को देखकर कर्नल दोनों स्तब्ध थे । गुलाबी ऊन की कनछोपा टोपी और टखनियों तक झूलते फ्राक को एक हाथ से समेटकर, अहल्या मूंछोंवाले रोबदार अजनबी पिता को देखकर मां का आंचल पकड़ सहमकर सिमट गई ।

बहुत क्रोधित हो जाने पर पति की परिचित मुद्रा नन्दी ने पहचान ली, वह उसके दुस्साहस पर क्रोघ से थर-थर कांपता, कुछ देर तक मौन खड़ा रह गया, फिर एक अवज्ञा-मिश्रित विद्रूप से बोला : 'देखो, आ गई हो अब भुगतना भी पड़ेगा । यहां तुम्हें जैसे भी रखूंगा–रहना होगा, समझीं? क्या आने से पहले एक बार पूछ भी नहीं सकती थीं?'

कितना कुछ कहना चाहती थी नन्दी, उसने अपनी शिकायतों को दो के पहाड़े की तरह रटकर कई रातें काट दी थीं पर आज पति को सामने देखकर उसका समस्त साहस दुम दबाकर भाग गया ।

'जाओ, उधर जाकर बैठ जाओ,' कर्नल ने एक कमरे की ओर इशारा किया, बेटी को एक प्रकार से खींचकर ही, आंसुओं से अन्धी बनी आंखों से मार्ग टटोलकर वह कमरे में पहुंची। अहल्या, उसी तरह सहमी-सिमटी चुपचाप बैठी थी, मां के आंसू उसके लिए कोई नवीन वस्तु नहीं थे । रात-दिन वह मां को इसी प्रकार बिसूरते देखती आई थी । फिर मामी के कठोर स्वभाव ने, उसके नन्हे हृदय को बहुत कुछ, वय से पूर्व ही समझा दिया था । मां और मामी की चखचख के पश्चात्, प्रायः ही कामचलाऊ अलग्योझा हो जाता, मामा के बच्चों से बोलने और खेलने पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता । अहल्या मां का आंचल पकड़-पकड़, पड़ोस में डोलती और जब उसकी मां आंसू बहा-बहाकर, पास-पड़ोस की

बड़ी-बूढ़ियों से, अपनी दुर्भाग्य की कहानी का सस्वर पाठ करती, अहल्या बैठी-बैठी सुनती और घर लौटकर, निराले में गुड़िया को गोद में ले-लेकर, काल्पनिक पुरखिनों के गुट को अपने दुर्भाग्य की कहानी की, ठीक मां के ही शब्दों में, पुनरावृत्ति करती। उसके सलोने चेहरे पर हंसी से, दूधिया बचपन की मिठास मिट गई थी, दोनों ममेरे भाइयों के गालियों के संकलन से उसने अपने ज्ञान-कोश को यथेष्ट समृद्ध बनाया था, और बड़े मौके से उनका सदुपयोग भी कर डालती थी :

'अम्मा, कौन था वह उल्लू का पट्ठा जो तुम्हें ऐसे डांट रहा था, आने दे मामा को, साले को खूब पिटवा दूंगी,' मां को आश्वासन देकर उसने कहा और चट से नन्दी ने हाथ से उसका मुंह दाब दिया । कोई आ रहा था । 'नमस्ते मां जी,' कन्धे पर गमछा डाले उड़िया महाराज हाथ में ट्रे लिए उपस्थित था । एक प्लेट में कई बिस्कुट सजे थे, 'बिटिया के लिए गिलास में दूध है मां जी, आप चाय पी लीजिए, सामान यहीं उठवा दूं सरकार !'

महाराज के विनय और सौजन्य से नन्दी की आंखें भर आई, गले में रुलाई उमड़कर दम घोंटने लगी । आज तक किसी ने उसे ऐसे शिष्ट स्वर में नहीं पुकारा था । भाभी के राज्य में बर्तन मलनेवाली महरी भी छुड़ा दी गई थी, इसी से दोनों हाथों में काली दरारें उभर आई थीं। 'मैं इन चीनी के बर्तनों में चाय-शाय नहीं पीवे हूं, बिटिया दूध पी लेगी और चीज़ें, उठा लो,' मां के इस सर्वथा अनुचित, अन्यायपूर्ण आदेश को अहल्या नहीं सह सकी, 'नहीं, हम सब खाएंगे,' दोनों पैर पटक-पटककर वह सतृष्ण दृष्टि से बिस्कुट की प्लेट को देखती रोने लगी । 'हां-हां, हम बेबी के लिए बहुत सारी मिठाई भी लाएंगे,' महाराज ने कहा और प्लेट थमा दी, आग्नेय दृष्टि से अहल्या को देखती नन्दी चुप रह गई । महाराज चला गया, तो उसने अहल्या को डपटकर कहा : 'कंगली छोकरी, जैसे कभी कुछ खाया ही नहीं है, सबके सामने इज़्ज़त उतार लेवै है, छोरी, ऐ मरी, कैसी भकोस रही है, अभी-अभी तो भैया ने टेशन पर दालमोट ले दी हैगी ।'

मां को अहल्या ने ऐसी दृष्टि से देखा जैसे उसकी दृष्टि में संसार में सबसे बड़ी मूर्खा वही थी : 'हां फिर, मामा ने दालमोट ले दी थी, बिस्कुट थोड़े ही ना ले दिए थे, आहा, इनके बीच मीठा भरा हैगा । मुन्ना, चुन्ना और दीपा आएंगे तो धुता दूंगी सालों को।' अंगुलियां चाटती अहल्या, कल्पना के उस स्वर्ग के सिंहासन पर बैठी बिस्कुट खा रही थी, जहां उसकी मामी और उसके चुन्ना, मुन्ना, दीपा सतृष्ण दृष्टि से बिस्कुटों की उस भाग्यशाली राजकुमारी ही को देख रहे थे । महाराज, कलई के गिलास में नन्दी के लिए चाय लेकर आया, तो वह बिस्कुट की प्लेट साफ कर चुकी थी, चाय रखकर महाराज जाने लगा तो अहल्या के धैर्य का बांध टूट गया, उसने इसी आशा में द्रुतगामी स्पीड से बिस्कुट साफ किए थे कि वह आदमी मिठाई लाएगा। उसके हाथ में मिठाई नहीं देखी, तो उसने अपने अधीर चित्त को मन ही मन आश्वासन दिया कि अब वह जेब से पुड़िया निकालेगा, पर जब वह कोरे ही हाथों लौट गया, तो उसने पुकारा : 'ऐ, आदमी, मिठाई क्यूं नहीं लाए–बोलो, झूठ क्यों बोले, अब देखना भगवान जी तुमको गनेल (घोंघा) बना देंगे ।'

उस सर्वथा मौलिक शाप का दुरूह अर्थ न समझकर, परिहासरसिक बूढ़ा खड़ा हो गया : 'गनेल क्या बिटिया?'

'हाय राम, कैसा आदमी है रे, गनेल भी नहीं जानता, देखो, सींग निकालकर ऐसे रेंगता है,' अहल्या, ज़मीन पर, दो अंगुलियां सिर के पास उठाकर रेंग-रेंगकर बताने लगी थी कि दरवाज़ा खोलकर कर्नल आ गया । अहल्या सहमकर फिर मां के पास खिसक आई और फुसफुसाकर बोली : 'बाप रे बाप, अम्मा, फिर वही कनकट्टा आ गया, अबके ज़रूर कान काटेगा ।' दोनों हाथों से कानों की सुरक्षा का उचित प्रबन्ध कर, वह मां के आंचल के नीचे दुबक गई, महाराज भी चुपचाप खिसक गया ।

'देखता हूं, लड़की को भी अपनी ही तरह जंगली बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, एक-दो दिन ही में स्कूल भेजना होगा ।'

अहल्या सांस रोके कान पर हाथ धरे सुन रही थी।

'देखो नन्दी,' बहुत दिनों बाद पति के मुख से अपना नाम सुनकर नन्दी का हृदय आनन्द से धड़क उठा । शायद अब कर्नल अपने अनुचित दुर्व्यवहार के लिए उससे क्षमा मांगेगा । मन ही मन नन्दी पति पर पसीजकर क्षमादान देने को भी तत्पर हो गई, पर तीर की तरह कर्नल के कठोर शब्द उसकी छाती पर लगे : 'मुझे अक्सर दौरे पर बाहर रहना पड़ता है, रात आधी रात मेरे कमरे में दसियों तरह के मिलनेवाले आते रहते हैं, तुम्हें इसी कमरे में रहना होगा, मेरे किसी काम में तुम दखल नहीं दे सकोगी । अगर इस समझौते के लिए तुम तैयार हो, तो शौक से रहो, तीन-चार दिन बाद इस बिगड़ैल छोकरी को बोर्डिंग स्कूल में डालना होगा । मैं आज ही एक अंग्रेज़ी स्कूल को लिख रहा हूं। कल दरज़ी आकर इसके कपड़े तैयार कर देगा', हाथ के सिगार का जला टुकड़ा फेंककर कर्नल जाने लगा, तो अहल्या जो पहले से ही बड़े मनोयोग से थूक का बम गोला तैयार कर रही थी, तनकर खड़ी हो गई और 'थू' कर-कर कर्नल की ओर थूककर बोली : मैं नहीं जाऊंगी स्कूल, नहीं जाऊंगी,' और फिर भागकर मां की गोदी में सिर डालकर, ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी ।

सन्ध्या होने तक, नन्दी के कमरे में सामान लगाकर, बड़ा पलंग डाल दिया गया था । गद्दे पर चौखानी चीकट-सी चादर को बड़े यत्न से लपेटकर, उड़िया महाराज प्रभाकर ने, एक कोने में रख दिया, तकिये पर चढ़ा सफेद लट्ठे का तकिया-गिलाफ मैल से अपना श्वेत चोला कब का छोड़ चुका था। उस पर नीले-पीले और चटक लाल रंगों से लिखा था 'गुडनाइट' जिसे नन्दी ने रात-भर बैठकर काढ़ा था, कड़वे तेल डले सिर के निरन्तर सहवास से कढ़े फूलों का गुच्छा और अंग्रेज़ी के शब्द पीले पड़ गए थे । उस गिलाफ को उतारकर, प्रभाकर ने एक घुला चीनिया कढ़ाई का गिलाफ चढ़ा दिया । रज़ाई का मार्किनिया गिलाफ उतारने लगा तो उसका माथा दुर्गन्ध से चकरा गया, स्थान-स्थान पर पानी के धब्बे थे, जिन पर लिहाफ का कच्चा गुलाबी और हरा रंग छूटकर लग गया था । 'पानी गिर गया है लगता है मांजी, धोबी को डाले देता हूं,' बड़े विनयपूर्ण स्वर में महाराज ने कहा, तब ही अहल्या दुष्टता से मुस्कराकर बोली : 'पानी नहीं है, हम पेशाब किए हैं ।' प्रभाकर ने उस दुर्दांत बालिका की ओर देखा, न जाने कैसी ममता से उसका बूढ़ा हृदय भर आया, उसकी अपनी

बिटिया भी ऐसी ही थी, आज होती तो उसके बच्चे भी हो गए होते। गिलाफ उतारकर, उसने बिस्तरे की शिकन दूर की और नम्र स्वर में बोला : 'मांजी, रात का खाना क्या होगा?'

'आज तो मेरी एकादसी है, मैं तो फल खाऊं हूं–सो ही ले आइयो'–नन्दी ने अनिच्छा के स्वर में कहा ।

'हम तो सब खाएंगी, पूड़ी, पापड़, रायता, चटनी और क्या नाम से अचार मुरब्बा,' अहल्या उन्हीं वस्तुओं का नाम गिनाने लगी जो उसे कई दिनों से नसीब नहीं हुई थीं ।

'चुप कर मरी, बकर-बकर कर दिमाग चाटे हे,' एक टकोरा मारकर नन्दी ने उसे चुप कर दिया, पर वह मां के हाथ की मार की आदी हो गई थी, 'पूड़ी' रायता, पापड़ और क्या नाम कहे हैं कचौड़ी, इमरती, अच्छा, सबकुछ लाना, हम सब खाएंगी, तू क्या खाएगी बत्तो?' वह समय की चपेटों से बुरी तरह जर्जरित एक भयानक आकृति की गुड़िया को छाती से लगाकर पूछने लगी, 'क्या खाएगी मेरी बिट्टो, मामी ने मारा है। चुपा-चुपा,' चुमकार वह बोलती जा रही थी, 'अब हम तेरे बाबूजी के पास जाएंगे, अच्छा बत्तो?' उतारे गिलाफ का दुपट्टा ओढ़कर वह क्षण भर में मंजी पुरखिन बनकर हाथ मटका-मटकाकर बोलने लगी : 'मेरी मामी को ले जाए बाघ, हम अपनी बत्तो को मोटर ले देंगी ।' स्वगत भाषण ने, महाराज को परिस्थिति स्पष्ट कर समझा दी और कुछ ही क्षणों में नौकरों के सागरपेशे में, हवा की भांति यह समाचार फैल गया कि मायके के दुर्व्यवहार से ऊबकर, मांजी स्वामी द्वारा परित्यक्ता होने पर भी आ गई हैं, पर साहब अभी भी बहुत नाराज हैं। 'चलो, अब दिन-रात की दावतों और पीने-पिलानेवालों से तो छुट्टी मिली, नौकरों ने कहा । पर छुट्टी मिली नहीं । जिस निर्विकार भाव से नन्दी ने आप ही अपने दुर्भाग्य का वरण कर लिया, वह वास्तव में स्तुत्य था । वह दिन भर अपने कमरे में बैठी रामायण पढ़ती । सड़क की ओर ही खिड़की खुलती थी, उसी से छन-छनकर जाड़े की गुलाबी धूप पूरे कमरे में आकर बिखर जाती। सड़क के दोनों ओर हर्रे के वृक्षों की कतार की कतार थी । सड़क के पास ही एक बोर्ड पर लिखा था–'हरीत की बागान लेन' । दिन भर बग्घी-मोटर और भीड़भाड़ का तांता लगा रहता । सामने एक बृहत् छात्रावास था, हंसती खिलखिलाती रंगीन छात्राओं का दल भोर होते ही पक्षियों-सा कूजन कर उठता । एक ही महीने में नन्दी उस परिचित दृश्य को देखने की अभ्यस्त हो गई । कर्नल को अचानक एक माह के लिए बम्बई जाना पड़ा । अहल्या को स्कूल भेजने का प्रसंग भी शायद अपने कार्यरत जीवन में कर्नल भूल गया था ।

कुछ ही दिनों पहले एक नितान्त अपरिचिता प्रतिवेशिनी ने नन्दी के शुष्क जीवन में रस घोल दिया था । एक दिन वह अपने कमरे में बैठी, अहल्या की चोटी गूंथ रही थी कि पर्दा खोलकर एक छिपछिपी गढ़न की सुन्दरी-सी किशोरी आ खड़ी हो गई । निकट आने पर नन्दी ने देखा वह किशोरी नहीं, चौबीस-पच्चीस वर्ष की तरुणी थी। पान और दोखो से उसके दोनों ओंठ रंगे थे । मांग में गाढ़े सिन्दूर की रेखा थी। दोनों हाथों में शाखा और सोने की कई गाछा चूड़ियां थीं । चौड़े लाल पाड़ की धोने-खाली डोरियादार साड़ी का घूंघट-सा

खींचकर, उसने झुककर नन्दी को प्रणाम किया, तो मुखरा अहल्या ज़ोर-ज़ोर से ही पूछ उठी थी : 'मां कौन है ये, हैं अम्मा, कौन है ये ?'

'आहा की मिष्टी, हम तुम्हारा माशी गो ।'

'आपकी प्रतिवेशिनी शान्ति हूं दीदी, मल्लिक बाबू की पत्नी। कई

दिन से आपसे मिलने को तड़प रही थी, पर सुना साहब यहीं थे इसी से नहीं आई ।'

नन्दी की आंखों में शांति का हंसमुख चेहरा बस गया । कलकत्ते की चौड़ी सड़कों पर भागती ट्रामगाड़ियां, हर्रे के पेड़ और धुएं से काला कलकत्ते का मैला-सा आकाश, सबकुछ अब नन्दी को बासी लगने लगा था । शान्ति थी एकदम ताज़ी कुन्दकली । शान्ति का मायका लखनऊ में था, इसी से वह साफ हिन्दी बोलती थी । शान्ति की बिटिया, लखनऊ अपनी नानी के पास ही रहती थी, एक छोटा पुत्र था उसी को लेकर वह दिन-भर नन्दी के पास बैठी रहती ।

'दीदी, तुम अपने साहब के कमरे में क्यों नहीं सोतीं?' एक दिन शान्ति ने उससे पूछ लिया । अपनी आहत गीली दृष्टि झुकाकर नन्दी चुप रह गई थी । उसके पास इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था । बरामदा झाड़नेवाली चारुबाला, उड़िया प्रभाकर, गोरखा दरबान–क्या इन सबकी दृष्टि में वह यही मूक प्रश्न नहीं देख चुकी थी? सबको उसकी आहत दृष्टि का मौन उत्तर ही मिला था । उसे कलकत्ते आए एक माह से भी ऊपर होने को था, और वह कर्नल को केवल एक ही बार देख पाई थी । एक बड़े-से कमरे में, कहीं बाहर से आकर भटक गई फंसी गौरैया की ही भांति, वह इधर से उधर फड़फड़ाती थी, पर बाहर जाने का मार्ग नहीं था । एक दिन वह कमरे की खिड़की पर बैठकर गाड़ियों का आना-जाना देख रही थी कि नित्य की हांक लगाकर, गले में ट्रे बांधे फेरीवाला खड़ा हो गया ।

'चाई,
क्रीम चाई, पोमेड चाई,
माथार किलीप, कांटा चाई!'

और अहल्या मचल गई कि वह फेरीवाले से कुछ लेगी । फेरीवाले के जादू को भी फीका करता हुआ एक और जुलूस-सा चला आ रहा था, अहल्या अपनी ज़िद भूलकर उसे ही देखने लगी । बैण्ड-बाजे के साथ, एक बहुत बड़ी तम्बूनुमा काठ की पहियेदार गाड़ी पर आशालता बीड़ी सुन्दरी का विज्ञापन चला आ रहा था। आगे-आगे लचीले शरीर को नचाती रंग-पाउडर से पुती एक नाचनेवाली गा रही थी :

'रिमके झीमके
चिउड़ा मूड़ी खाए
जानी ना बालिका कौन पथे जाय
दादा कौन पथे जाय–
आमार नामटी आशालता ताई की जानो ना
ऐक पयशार बीड़ी खेये दैखो ना
ओ दादा खेयो दैखो ना'

नन्दी के ना कहने तक अहल्या चट से मेज़ पर रखा अधन्ना लेकर छू हो गई । दुर्भाग्य से, कर्नल उसी समय अपनी राजसी ब्यूक में, बम्बई के दौरे से लौट रहा था। उसके पार्श्व में उसका ड्राइवर बैठा था और पीछे की सीट में थे उसके सेक्रेटरी सरकार बाबू। कर्नल को बीड़ी सुन्दरी की विराट देह को पार कर, कार निकालने में असुविधा हुई। ब्रेक देकर कार रोकी तो धक् रह गया। नंगे पैर, बाल भुतनी से फैलाए, जूट की हरी सुत्तन और लाल फ्रॉक पहने उनकी राजकन्या नाड़ा लटकाए, आशालता बीड़ी खरीद रही थी । ड्राइवर, बड़ा ही सूंस व्यक्ति था। अभी-अभी कुछ देर पहले स्टेशन पर ही, कर्नल ने उसे बिना इस्त्री की वर्दी पहनकर आने के लिए बुरी तरह लताड़ा था । कर्नल को लगा कि बिटिया को पहचानकर हरामखोर मूंछों ही मूंछों में हंस रहा था। और सरकार! क्या वह घर जाते ही अपनी पत्नी मल्लिका से नहीं कहेगा। क्रोध से दांत पीसता वह अपनी बारादरी पर ही उतर गया, सरकार को वहीं से घर भेज दिया और धड़धड़ाकर सीढ़ियां चढ़ गया । नन्दी को पति के आने की सूचना मिल गई थी। वह अभ्यर्थना के लिए कर्नल के कमरे के बाहर ही खड़ी थी । कर्नल ने उसे वहीं पर चीरकर धर दिया : 'क्यों जी, तुमसे इतना भी नहीं होता कि लड़की को सड़क में जाने से रोक सको? अभी-अभी इतने कपड़े सिलवाकर दिए हैं, क्यों नहीं पहनाए?' 'पिन्हाए तो थे, लाल फिराक ही तो पहने थी लौंडिया ।' 'और उसके नीचे तुमने जो हरी सलवार पहनाकर एकदम गार्ड की झण्डी बना दिया है उसे, गंवार ही नहीं जंगली हो एकदम, बीड़ी खरीद रही है छोकरी, मेरी इज़्ज़त का तो ख्याल किया होता ।'

नन्दी रोती-सिसकती अपने कमरे में गई, बीड़ी को उल्टा-सीधा चबाकर, किसी प्रकार से भी स्वाद न पाकर, अहल्या उसे नोंच-नोंचकर कमरे में बिखेर रही थी कि नन्दी ने लपककर उसे चांटा धर दिया । पति का क्रोध सन्तान पर निकालना स्त्री जाति का स्वभाव-सिद्ध अवगुण है । 'और जाएगी छोकरी? ले-ले मर जा, और ले-ले तुझे माता निकले, तेरी ठठरी उठे ।' वह अमानुषिक रूप से उसे कूटने लगी, नन्ही अहल्या के रुदन से कोठी गूंज उठी और कर्नल कार निकालकर फिर चला गया । फूहड़ पत्नी की गालियां उसके कानों में गोलियां-सी दाग रही थीं । उस दिन वह रात-भर नहीं लौटा और दूसरे दिन दो बजे, बहुत सारे रेडीमेड कपड़ों से सूटकेस भरकर उसने अहल्या को बुलवा भेजा । नन्दी जप कर रही थी, जप के बीच वह बोलती नहीं थी, फुसलाकर प्रभाकर ने अहल्या को गोदी में उठा लिया और बाहर लेकर चला गया । जप कर नन्दी उठी तो अवाक् रह गई। अहल्या का हुलिया ही बदल गया था । यह तो कोई मेम की बिटिया थी । उत्कोच से, सयानों को ही नहीं, नन्हे-सरल बच्चों को और भी सुगमता से लपेटा जा सकता है। अहल्या ने एक बड़ा प्यारा गुलाबी फ्रॉक पहना था । हाथ में एक उसी के कद की जापानी गुड़िया थी, अपने फर लगे दामी लाल ओवरकोट के गुदगुदे कॉलर में गाल घिसकर वह बोली : 'अम्मा, देखो तो कैसा मुलायम है, हम घूमने जा रही हैंगी, मोटर कार में प्रभाकर दादा के साथ।'

'अबेर मत करियो प्रभाकर, ठण्ड हैगी,' प्रभाकर की आंखों में उसके प्रति असीम करुणा का सागर उमड़ रहा था, यह नन्दी नहीं देख पाई । बड़ी रात तक, प्रभाकर नहीं

लौटा, तो उसका माथा ठनका । बड़ी देर बाद प्रभाकर लौटा और सिर झुकाकर नन्दी के सामने खड़ा हो गया ।

'बिटिया कहां है प्रभाकर? बड़ी देर कर दी।'

'मांजी, बिटिया तो मद्रास गई साहब के साथ, वहीं स्कूल में पढ़ेगी ।' अपराधी प्रभाकर की आत्मा उसे धिक्कार रही थी, उसने पहले ही मालकिन को सूचना क्यों नहीं दे दी?

चकराकर धप से नन्दी कुर्सी पर ही दोनों हाथों से चेहरा ढांककर बैठ गई । चुपचाप जाकर प्रभाकर शान्ति को बुला लाया था, पर उस दिन वह एकान्त चाहती थी। उसकी अहल्या, जिसकी ममता का आधार लेकर, उसने अपनी दुर्दिन की घड़ियां काट ली थीं, उससे छीन ली गई थी । 'दीदी, छुट्टी में तो घर आएगी, धीरज धरिए, भगवान सबकी सुनता है,' शान्ति ने कितना समझाया ।

'मेरी कब सुनी हैगी भगवान् ने, हाय मरी बिलबिला रही होगी ।' नन्दी बिलख उठी, बेचारी क्या जानती थी कि बच्चों का सरल मन, हर मज़बूरी से बड़ी सुगमता से समझौता कर लेता है । थोड़ी देर को उसने अम्मा को याद किया था, पर दूसरे ही क्षण वह नई गुड़िया को छाती से लगाकर, ट्रेन के हिचकोलों में सो गई थी। उसके गुलाबी कपोलों पर, चाकलेट के दाग सन गए थे, भागती रेलगाड़ी से कोसों दूर, अंधेरे कमरे में उसकी अभागिनी मां पागलों की तरह कभी उसकी नन्ही तकिया को उठाकर छाती से लगा रही है, कभी उसकी परित्यक्त, निर्जीव गुड़िया को उठाकर चूम रही है, यह वह क्या जानती थी?

कर्नल अपनी सोई पुत्री को देख रहा था। आश्चर्य था कि बच्ची के चेहरे का कहीं भी मां के नैन-नक्श से मेल नहीं था। यदि होता तो शायद कर्नल उसकी ओर देख भी नहीं सकता, नन्दी के प्रति उसे ऐसी नफरत न जाने क्यों थी, न वह इसकी कोई कैफियत पाता था, न पाना चाहता ही था। काश नन्दी में कहीं भी उसके सामाजिक स्तर को ग्रहण करने की गुंजाइश होती । जब कभी कर्नल उसे अपनाने का, उसे सुधारने का संकल्प लेकर आगे बढ़ता, अपने फूहड़ पहनावे और बोलचाल के हथियार से वह उसे दूर ढकेल देती । कर्नल ने अब सोचना ही छोड़ दिया था, किन्तु पुत्री के भविष्य को वह किसी भी प्रकार नन्दी के हाथों सिरजे जाने के लिए नहीं छोड़ सकता था । इसी से उसने अविलम्ब ऊटकमण्ड के कान्वेन्ट स्कूल में उसे भर्ती कर दिया । मदर मारिया ने बड़े प्यार से उसे गोदी में लिया, तो वह दांत काटकर रोती भागने लगी। लाल-लाल गोरे से चेहरेवाली ऐसी मेम उसने कभी देखी नहीं थी, उस पर काला झब्बा और हुड देखकर वह डर गई, पर मदर ने हंसकर उसे प्यार से फिर बुलाया और वह डरती-डरती मदर के पास आ गई। मदर की नीली आंखों के स्नेह और करुणा ने कैसे-कैसे जंगली और उद्दण्ड बच्चों को जीत लिया था ।

'आप चिन्ता न करें मिस्टर पाण्डे । आपकी पुत्री यहां बड़े आराम से रहेगी।' निश्चिन्त होकर कर्नल लौटा तो उसने नन्दी को बुलवा भेजा ।

चार

सूजी आंखें, लाल नाक और विषाद की साक्षात् मूर्ति देखकर उसकी घृणा ने फिर सिर उठा लिया। 'नन्दी, रो-धोकर कोई लाभ नहीं, तुम्हें मालूम होना चाहिए कि जिस स्कूल में मैंने अहल्या को डाला है वहां का एक महीने का खर्चा ही दो सौ रुपये माहवार है। तुमसे मैंने पहले ही दिन कह दिया था कि तुम मेरे किसी भी काम में दखल नहीं दे सकोगी । एक बात और है, कल मैंने कुछ लोगों को खाने पर बुलाया है, जब तुम नहीं थीं, तो बात दूसरी थी, पर जब यहां हो, तो तुम्हें दावत में भी आना पड़ेगा । देखो, नन्दी, दावत में अगर तुमने किसी तरह का पाखण्ड दिखाया या कच्ची-पक्की रसोई का बवेला उठाया तो मुझसे बुरा कोई न होगा ।'

बगुला के पंख से बिछौने पर ही कर्नल, अधलेटा दाढ़ी बना रहा था । आज नन्दी ने पहली बार कलकत्ता आकर पति को उजाले में देखा था। आंखों के ऊपर का मांस उभरकर फूला-फूला-सा झूल रहा था । चेहरे पर, शरीर पर किए निर्मम अत्याचारों की स्याही-सी फुंक गई थी। चेहरा अभी भी भरा-भरा था, पर अब उस चेहरे पर स्वास्थ्य की लाली नहीं, नशे की तमतमाहट थी ।

'समझ गई न? ढंग से कपड़े पहनकर आठ बजे मेरे कमरे में आ जाना, कपड़े हैं या नहीं? पहली बार पति ने उसके कपड़ों की सुधि ली थी। वर्षों के उपालम्भ आंखों से बरस न पड़ें, यही सोचकर वह चुपचाप उठकर अपने कमरे में चली आई । जहां एक ओर कर्नल के राज्य में अशर्फियों की लूट थी वहां दूसरी ओर नन्दी के लिए कोयलों तक में सील मुहर लगी रहती, पति का रत्नकोष उस बेचारी के लिए बन्द ही रहता । एक ओर रुपया पानी की तरह बहाया जाता था, पर गृहस्वामिनी की कमर में चाबी का एक निरर्थक गुच्छा ही झूलता था । नन्दी के रिक्त बटुए का मुंह सदा भिखारी के हाथ की भांति ही फैला रहता स्त्री के लिए हाथ में पैसा न रहना जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है क्योंकि नारी स्वभाव से ही उदार होती है, परिस्थितियां ही उसे कृपण बनाती है; किन्तु पुरुष रहता है स्वभाव से ही कृपण, परिस्थितियां ही उसे उदार बनाती हैं। कभी-कभी मायके से ही तीज-त्यौहार के पैसे आते तो वह लुका-छिपाकर रख देती। भैया के कई पत्र आ गए थे, बहन उन्हें बार-बार अपने सुख और समृद्धि का ही समाचार देती, ससुराल में कैसा ही कठोर संघर्षमय जीवन हो, कितना ही आर्थिक अभाव हो, नन्दी किसी भी प्रकार अपने दु:ख के स्वर को कर्कशा भाभी के कानों तक नहीं पहुंचने देती थी। बक्स खोलकर उसने एक नीली काश्मीरी सिल्क की साड़ी निकाली, उसके भैया ने एक काश्मीरी फेरीवाले से ही उसे तीज पर खरीदकर दी थी, आज तक उसने कभी पहनी भी नहीं थी, बिना इस्त्री की गुड़ीमुड़ी-सी साड़ी के साथ काले साटन के जरीपट्टी ब्लाउज़ में वह कितनी फूहड़ लग रही थी, वह बेचारी क्या जानती । पर ठीक

समय पर शांति ने आकर उसे बचा लिया। 'नहीं दीदी, इन कढ़ी साड़ियों का तो अब रिवाज़ ही नहीं रहा, रुको, मैं अभी अपनी एक साड़ी ले आती हूं, तुम्हारी दावत में तो कलकत्ते की एक से एक फैशन की परियां आएंगी ।' भागकर शान्ति अपनी एक नीलांबरी साड़ी ले आई, चौड़े सुनहरे पाड़ को ढंग से माथे पर डालकर, शान्ति ने नन्दी का परिपाटी से जूड़ा बनाया, आधे ललाट को सिंदूर के रुपये के आकार के टीके से नंदी मनहूस बना डालती थी, शांति ने छोटी-सी बिन्दी लगाई, मांग भरी और अपना ही एक हल्के आसमानी रंग का जरी का ब्लाउज़ पहना दिया । कानों में अपने ही कटकी सुनार के बनाए कानपाशा लटका दिए और गले में डाल दिया गिन्नीहार । कौन कहेगा यह वही नन्दी है, जो कुमाऊं की एकवस्त्रा होकर खाना पकाने की परम्परा को न त्याग सकने के कारण, एक मैली-सी पतली धोती में, सुमेरुयुगलस्तनी बनी फूहड़-सी, चौके ही में घुसी रहती थी। 'आहा दीदी, देखो कैमोन मानियेछे ।' गर्व से शान्ति उसे देखने लगी। प्रभाकर बुलाने आया तो बूढ़ा भी कुछ क्षण को हतप्रभ-सा हो गया । नन्दी पति के कमरे में गई और कर्नल भी उसे आश्चर्य से देखने लगा, जैसे आज वह अपनी पत्नी को पहली बार ही देख रहा था । 'देखो नन्दी, सबसे नमस्ते कहना और बोलना मत, मेरा मतलब है कम बोलना, मेरे एक मित्र आएंगे मि. सिविलस्टन, अंग्रेज़ हैं, उनकी मेम भी आएंगी, उनसे हाथ मिलाना होगा, ऐसे देखो' नन्दी का हाथ पकड़कर उन्होंने हिला-हिलाकर दिखाया, पति का स्पर्श पाकर नन्दी के हृदय में बिजली का-सा झटका लगा। कैसी भूल थी उसकी! वह तो सोच रही थी कि पति की ममता उसने त्याग दी है। बहुत दिन पहले, अहली, उसकी गोद में एक गुलाब का फूल डाल गई थी, सुबह वह सुखसागर पढ़ने लगी तो उसी गुलाब की सूखी पंखुड़ी उसके हाथों में आ गिरी । उन दिन, उसने फूल लेकर सुखसागर ही के पृष्ठों के बीच दाब दिया था । उस सूखे गुलाब को देखकर, अहल्या की स्मृति सजीव हो उठी थी । उसी सूखे गुलाब की पंखुड़ियों की भांति, उसके पति और पुत्री के मोह की पंखुड़ियां भी सूख गई थीं । दिन पर दिन उसके व्रत और अनुष्ठान बढ़ते जा रहे थे । कभी वह बेलूर मठ चली जाती और कभी चली जाती स्वामी-चिन्मयानंद के आश्रम में । आश्रम क्या था, एक पुराने खंखड़ मंदिर के प्रांगण में ही अवधूत बूढ़े बाबा रहते थे । उनके पास जाकर नन्दी के दग्ध हृदय को कितनी शांति मिलती थी । चिन्मयानंद को वह अपने मायके से जानती थी, जब वह छोटी-सी बच्ची थी, बाबा रामकृष्ण आश्रम के स्वामीजी के साथ स्वामी जी उसके भैया के पास आते थे । कई-कई बार वह उनके कमंडलु का विचित्र-सा टोपा पहनकर भाग जाती थी और वे उसे लाठी लेकर मारने का उपक्रम करते, घर-भर का चक्कर लगाते थे । कलकत्ते में, अचानक एक दिन उन्हें देखकर नन्दी आनन्द से रो पड़ी थी। जब नन्दी ने अपने पति के विचित्र व्यवहार की बात बतलाकर, संन्यासदीक्षा देने का आग्रह किया तो वे गम्भीर हो गए थे : 'देखो बेटी, तुम अभी जवान हो, तुम्हारे पति हैं, संतान है । तुम्हें संन्यास और वैराग्य से कैसा लगाव? जा भाग जा, खबरदार जो अब यहां आई । घर जाकर गृहस्थी में अपना चित्त लगा।'

फिर भी नन्दी, जिद करती रहती, एक दिन वह गई तो बाबाजी की कुटिया खाली थी । 'बाबा तो बद्रीनाथ गया माई,' एक शिष्य कुटी को झाड़-बुहारकर अपने लिए साफ कर रहा

था।

सोच-विचार के उधेड़-बुन में वह एक कोने में चुपचाप बैठी थी, अतिथियों के आते ही उसे अभ्यर्थना करने द्वार पर जाना होगा, यह उसे कर्नल समझा चुका था । घर्र से कार का शब्द हुआ और वह उठ गई । कितने सारे अतिथि थे । रंगीन रेशमी वस्त्रों की सर्र-फर्र, गहनों की चमक-दमक, ओठों और गालों के रंग की लाली देखकर सरला नन्दी बौरा-सी गई । कभी वह किसी मेम से टकरा जाती, कभी किसी साहब से । सब आ-आकर, लंबे-चौड़े दीवानखाने की असंख्य गद्दीदार कुर्सियों में धंस गए। पति की कुर्सी के पास ही एक खाली सोफे पर नन्दी बैठ गई, कैसा आश्चर्य था कि इतने सारे विचित्र लोगों के बीच आकर भी उसे किसी प्रकार का भय नहीं हो रहा था । उसके चेहरे पर किसी झुंझलाहट या क्षोभ की रेखा भी नहीं उभरी थी, मन ही मन वह स्वामीजी का ध्यान कर रहो थी । पास ही बैठी रंगी-पुती छिछोरी आकृतियों में भी उसे स्वामीजी का शांत-गंभीर झुर्रीदार चेहरा ही उभरता नज़र आ रहा था । पति के रंगीले संसार में होकर भी वह जैसे वहां नहीं थी, उसकी आत्मा वासना और विकार से बहुत ऊपर उठ गई थी। इतने ही में किसी का स्पर्श पाकर वह चौंकी–'नमस्कार, मैं मल्लिका हूं, कहिए कैसा लग रहा है कलकत्ता,' नन्दी ने चेहरा घुमाया और मल्लिका सरकार को सांप-सा सूंघ गया । बाप रे ! कैसी अद्‌भुत दृष्टि है इस सात्त्विकी चेहरे की । लगता है पलक मारते ही सब जान गई है । पर छिः-छिः कैसी बेतुकी जोड़ी है। कहां अंग्रेज़ी लिबास और भाषा का धनी कर्नल, कहां यह फूहड़-सी पत्नी! रंग ही गोरा हो जाने से तो सुन्दरी नहीं कही जा सकती । मन ही मन मल्लिका सोच रही थी ।

'ठीक है, पर मुझे तो बहुत पसंद नहीं आया कलकत्ता ।' कहकर नन्दी ने एक बार उसकी ओर- फिर देखा । तो यही है मल्लिका, उसके विषय में नन्दी बहुत कुछ सुन चुकी थी, शांति से, प्रभाकर से, चारु से, पर आज अपनी आंखों से भी देख लिया । पान दोख्ते से उसके विलासी अधर टुक-टुक लाल थे, काजल से आयत कर्णचुंबी नयनों के कुटिल कटाक्ष बार-बार कर्नल को ही ढूंढ़ रहे थे । नीली साड़ी पर ज़री का चमकता पल्लू, बिजली की नीली रोशनी में झिलमिला रहा था, हाथ के बटुए को हिलाती वह उठ गई–'अच्छा मिसेज़ पांडे, थोड़ा ताश खेल आऊं । फिर आपसे बातें होंगी।' उठकर वह दूर नहीं गई, कर्नल की मेज़ पर ही उचककर बैठ गई और बड़ी आत्मीयता से उसकी ताश की गड्डी हाथ में लेकर पते देखती हुई नन्दी की ओर देखकर मुस्करा दी । एकाएक नन्दी का चित्त खिन्न हो गया । संसार में कौन ऐसी पत्नी होगी, जिसका हृदय अपने पति के पार्श्व में बैठी सौत को देखकर खिन्न नहीं हो उठता और मल्लिका सरकार उसकी सौत ही तो थी । राखाल सरकार, उसके पति के प्राइवेट सेक्रेटरी, थे बड़े ही नम्र और मिष्टभाषी । पहले-पहल उन्हें नन्दी ने बंगले पर ही देखा था । फिर एक दिन वह शांति से उनके स्वभाव की प्रशंसा कर रही थी कि शांति उबल गई 'खाक सज्जन पुरुष है–हिजड़ा है, अहमक ! पुरुष होता तो क्या अपनी पत्नी को'–कहकर वह जीभ काटकर चुप हो गई थी। पर कसमें दिलवाकर नन्दी ने उससे सब बातें उगलवा ही ली थीं, 'मल्लिका राक्षसी है दीदी, जैसे भी हो, अपने साहब को बचाना ही होगा आपको । साहब ने कितने सारे गहने गढ़वा दिए हैं, हुगली के पास बहुत बड़ी

दुमंज़िली कोठी भी बनवा दी है, बच्चे हैं नहीं, सास को मार-पीटकर काशी भगा दिया है, एक नन्द थी, उसे भी ब्याह दिया है । जब से सास ने काशीवास लिया, खूब गुलछर्रे उड़ाती है ससुरी, पता नहीं क्या देखा साहब ने, तुम्हारी जूती की नोंक के बराबर भी नहीं है।'

पर, पुरुष को क्या केवल नारी का सौन्दर्य ही बांधता है? कभी सुन्दरी पत्नी पति को वश में नहीं कर पाती और कभी काली-कलूटी चुड़ैल-सी बदशकल स्त्री भी सुन्दर पुरुष को अपने काले चरणों का दास बनाकर छोड़ देती है । इकहरे बदन की मल्लिका के चेहरे में, सिवाय दो बड़ी-बड़ी धनुष-सी खिंची आंखों के और कुछ भी नहीं था, किन्तु उन्हीं दो रसीली आंखों ने, उसके मादक यौवन की बागडोर सम्हाल ली थी । उस चंचल-मुखरा रमणी के कटाक्षों में, हंसी में, आचरण में, कहीं भी संयम का अंकुश नहीं था । बार-बार कुशलता से वह झीने आंचल को अपने उन्नत उरोजों के उभार से जानबूझकर गिरा-गिरा देती और तृषित चातकी की दृष्टि से कर्नल को ही अपनी मुग्ध चावनी में बांधकर, गर्व से नन्दी की ओर देखकर, मूक चुनौती दे डालती, नन्दी के पति ने कभी उसे ऐसी आंखों से नहीं देखा था। वह मल्लिका की ओर देखता तो आंखों में लाड़ छलक उठता, एक बार तो दोनों में ताश का बंडल लेकर छीना-झपटी हो गई और बड़ी ही आत्मीयता के अधिकार से, एक झटका देकर मल्लिका ताश लेकर, खिलखिलाती दूर भाग गई । नन्दी, स्तब्ध बनी सबकुछ देख रही थी । अपने जिस हृदय को वह शुष्क समझ बैठी थी, वह तो अभी भी रस से छलक रहा था । ईर्ष्या से वह कांप उठी, सौतिया डाह उसकी मांसमज्जा को दग्ध कर उठा । एक चपला नारी से पति की सामान्य प्रणयकेलि देखकर ही वह कांप उठी थी, दावत बड़ी जोर-शोर से रंग में आ रही थी, अभी तक पीने-पिलाने का ही दौर चल रहा था । एक-एक कर सब नशे में चूर थे, किसी को तन-बदन का भी होश नहीं था । नन्दी आतंकित होकर, एक मखमली पर्दे की आड़ में, पियानो के पीछे जाकर दुबक गई । वहीं से उसने देखा कर्नल, मल्लिका के मुंह में कबाब ठूंसता उसी पर झुका जा रहा था और वह बड़े खिलवाड़ की भंगिमा में इधर-उधर मुंह बचा-बचाकर, निर्लज्ज हंसी हंसती, कर्नल को नचा रही थी । नशे में चूर, लड़खड़ाते पैरों से मल्लिका के पीछे भागते, अपने सौन्दर्य-भोगी पति पर, नन्दी को सहसा ऐसी घृणा हो आई कि कसकर मल्लिका को और कर्नल को चांटा मारने को वह व्याकुल हो उठी । पर बड़ी चेष्टा से उसने अपने को रोक लिया, खिड़की से ही कूदकर वह अपने कमरे में चली आई और पागल की तरह अकेली ही चक्कर लगाने लगी । अब वह क्या करेगी? जानबूझकर तो मक्खी निगली नहीं जाती–क्या भाई के पास चली जाए? पर भाभी का व्यवहार क्या इतनी जल्दी भूल सकती थी? एक ही उपाय था, पति के लिए अब उसके हृदय में कोई भी भावना शेष नहीं बची थी, रह गई अहल्या, वह भी अब पिता ही की सगी होगी मां की नहीं, अब उसे स्वामीजी के चरणों की पावन धूल तार सकती थी । उनके पास एक बाल कटी बंगाली प्रौढ़ा रहती थी, सुना था वहुत बड़े किसी सिविल-सर्जन की पुत्री थी; विवाह के बाद पति उसे उसके काले रंग के लिए क्षमा नहीं कर सका था और वह पिता के पास भाग आई थी । पति ने दूसरा विवाह कर लिया था, पिता की मृत्यु हो गई थी, अब वह स्वामीजी के पीछे छाया-सी घूमती । उस तापसी के काले चेहरे पर कैसी अद्भुत

शांति और संतोष की चमक थी । एक गेरुआ साड़ी पहने वह दिन-भर कीर्तन गाती रहती थी, उसी की तरह सिर मुंडाकर गेरुआ वसन पहनकर नन्दी हृदय के दु:ख को भुला देगी । सबकुछ छोड़-छाड़कर वह उसी दिन भाग गई थी, फिर नहीं लौटी । कर्नल भी ज़िद्दी पत्नी के स्वभाव से परिचित था और नन्दी भी जानती थी कि उसका दम्भी पति कभी भी उसे लिवाने नहीं आएगा । दोनों में से एक भी झुकना जानता तो गृहदाह होने से बच जाता। धीरे-धीरे कर्नल के समाज में यह समाचार फैल गया कि मिसेज़ पांडे ने संन्यास ग्रहण कर लिया है ।

पांच

अहल्या छुट्टियों में घर आई तो उसने एक ही बार अपनी मां के लिए पूछा, पर दूसरे ही क्षण वह मल्लिका मौसी की लाई नई गुड़िया को लेकर खेल में जुट गई । अब वह बात-बात पर मचलनेवाली, रोनी अहल्या नहीं थी, उसके सुनहले बालों को मदर ने मोहक गोलाई से काट दिया था, नन्हें कटे बालों के गुच्छों ने, अंगूर के गुच्छों की ही भांति चेहरे को घेरकर प्यारा-सा बना दिया था। वह अब स्कर्ट पर तनिक भी गर्द नहीं सह सकती थी, चट से ब्रश लेकर झाड़ने बैठ जाती, जूतों में पालिश कर नौकर लाता तो वह उसमें बीसियों नुक्स निकाल देती । अपनी सुघड़ पुत्री के अदब-कायदे देखकर, कर्नल मन ही मन खिल उठता । एक ही वर्ष में, मदर ने उसे घिस-मांजकर परिष्कृत कर दिया था । पहले वह उछलती-कूदती सीढ़ियां फांद जाती थी, अब दोनों नन्हें से हाथों को पीठ की ओर झुलाती, वह मनोहर चलन से सबको मोह लेती। उसके मानस-पटल से नन्दी की मूर्ति धीरे-धीरे धुंधली पड़कर, किसी शून्य अन्तराल में विलीन होती जा रही थी और उसका स्थान ले रही थी एक और हंसती खिलखिलाती रमणी । छुट्टी में अहल्या घर आती तो मल्लिका उसे सबेरे ही आकर, कार में उठा ले जाती। कितने सारे रंगों के स्वेटर और कार्डिगन उसने बिन दिए थे, और अहल्या की छुट्टियां खतम होने को होतीं तो मल्लिका का चेहरा लटक जाता । जिस बच्ची से उसके रक्त-मांस का भी कोई रिश्ता नहीं था, उसी के लिए वह कभी रात-रात भर बैठी रहती। क्या पता बीमार ही पड़ गई हो, स्विमिंग भी तो सीखती थी, कहीं डूब-डुबा ही न जाए। एक-आध दिन भी पत्र आने में विलम्ब होता तो वह स्कूल को तार कर देती और उत्तर आने तक पागलों की तरह चक्कर लगाती रहती । अहल्या की स्कूल की प्रगति से कर्नल संतुष्ट थे । वह बड़ी प्यारी-प्यारी चिट्ठियां लिखती थी, जिन्हें लाल रिबन से बांधकर, मल्लिका अपने सेंट से सुवासित हाथीदांत के श्रृंगारदान में सहेजकर रखती थी । लड़की आश्चर्यजनक रूप से लम्बी होती जा रही थी और जब चौदह वर्ष की अहल्या सीनियर करके घर लौटी तो मल्लिका दंग रह गई। मल्लिका मौसी की गोदी में लेटकर मचलना अहल्या को अब भी अच्छा लगता था। कैसी प्यारी-सी विदेशी युडीकोलोन की खुशबू आती थी मौसी के शरीर से। उसे फिर बाहर भेजने का प्रस्ताव हुआ तो वह अड़ गई कि अब वह कलकत्ता ही में रहकर पढ़ेगी, 'बोर्डिंग का खाना खाते-खाते जी ऊब गया मौसी, आज बनाओ न चिकन बिरयानी' । वह कहती और चट से कमर में आंचल खोंसकर मल्लिका उसकी मनपसंद चीज़ बनाने में जुट जाती। कभी कर्नल मल्लिका और अहल्या को लेकर पिकनिक पर ही निकल जाते, खजूर और सुपारी के झुरमुट के साये में । मौसी की गोदी में लेटकर अहल्या अंग्रेज़ी रिकार्ड सुनती और कर्नल लेटे-लेटे एगैथा क्रिस्टी की पुस्तक पढ़ता रहता । सुरमई सांझ की प्लान छाया में कभी-कभी कर्नल मल्लिका की ओर देखकर कृतज्ञता से मुस्करा देता, जैसे आंखों ही आंखों में उसे ऐसी सुखद संध्या के लिए धन्यवाद दे रहा है । तीन-चार

वर्ष से मल्लिका उसके शरीर का ही एक अंग बन गई थी, राखाल सरकार एक मोटर ऐक्सीडेंट में बुरी तरह आहत होकर दिमाग और ज़बान दोनों ही खो बैठे थे। पंगु पति को इनवैलिड चेयर और एंग्लोइंडियन नर्स को सौंपकर, मल्लिका ने पति का आफिसी पद ग्रहण कर लिया था। अब वह कर्नल की प्राइवेट सेक्रेटरी थी। 'पांडे मोटर्स', 'पांडे जूट मिल', 'पांडे स्टील' सबके कारोबार की जड़ें, मल्लिका की ही मुट्ठी में थीं । कर्नल स्वभाव से ही रसिक प्रवृत्ति का था। उसके जीवन में नित्य नवीन नई मल्लिकाएं आती रहती थीं। मल्लिका भी उनके अस्तित्व से एकदम ही अनभिज्ञ नहीं थी, किन्तु वह जानती थी कि कर्नल के हृदय के ताले में केवल उसी की कुंजी घूमती थी । अहल्या बी.ए. में थी । आधुनिका किशोरी को पिता और मल्लिका के अद्‌भुत रिश्ते का ज्ञान नहीं था, ऐसा भी नहीं था; किन्तु फिर भी वह मल्लिका को सचमुच ही प्यार करती थी । मल्लिका का शासन, स्नेह और व्यक्तित्व उसे सर्वदा जकड़े रहता था । मल्लिका के बिना पूछे वह घर से बाहर पैर भी नहीं रखती थी । उस शासन में कहीं भी कठोरतापूर्ण स्वामित्व की भावना नहीं थी वह था केवल स्नेह का शासन। मल्लिका अब श्रृंगार की नहीं, वात्सल्य की मूर्ति थी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में घनीभूत विषाद की रेखा को कर्नल भी नहीं देख पाता था । लोकापवाद का उसने स्वेच्छा से ही वरण कर लिया था । समाज की दृष्टि में वह एक निर्लज्ज दुराचारिणी ही तो थी । उसके अर्धमीलित नयनों का वैभव भी अब धुंधला पड़ गया था। मल्लिका के पास निजी सौन्दर्य पहले भी सामान्य ही था, किन्तु उसी सामान्य ईंट-पत्थर से उसने अपने सुरुचिपूर्ण श्रृंगार-प्रसाधन की भित्ति पर ही, अपने व्यक्तित्व का सुदर्शन महल खड़ा किया था, किन्तु अहल्या को विधाता ने मुक्त हस्त से ही सौन्दर्य-दान दिया था । उसने अपनी मां का नहानी चम्पई रंग पाया था और पिता की चेहरे की भव्य गढ़न । प्रशस्त ललाट के बीच से मांग निकालकर और नन्हें सीप से सफेद कानों की सफेदी को कृष्ण केशपाश के वैभव से तनिक ढांककर, कैसे और भी मनोहारी बनाया जा सकता है, यह उसने मल्लिका से ही सीखा था । कानों के आरक्त अग्रभाग में दमकते उसके मद्रासी हीरों के कर्णफूल, गले में झूलता नवरत्न का पेंडेंट या लम्बी अंगुलियों में पड़ी मुक्ता नीलम की अंगूठी, प्रत्येक आभूषण में मल्लिका की ही कलात्मक रुचि का प्रदर्शन होता । आभूषणविहीना होने पर भी, अहल्या तपे सोने-सी ही दमकती । बचपन से ही वह मल्लिका के अन्त:करण का समर्थन लेकर चली थी और मल्लिका की विलासी काया, निष्प्राण होकर भी, उसी पर छाया की तरह मंडराती थी । अपनी एक से एक दामी साड़ियां, बड़े शौक से गढ़वाए गए आभूषण सब उसने अहल्या को ही उपहार में दे डाले थे । आज तक किसी भी दावत में, बिना अहल्या की सहायता के ही मल्लिका पूरा आयोजन कर डालती थी, पर इधर सास और बड़ी ननद के बच्चों के आ जाने से वह चटपट आफिस से ही घर चली जाती थी । पति के अस्वस्थ हो जाने के पश्चात् उसने पति के ही वेतन पर कर्नल के सेक्रेटरी का पद ग्रहण कर लिया था । काशीवासिनी गृहपरित्यक्ता सास को भी कभी-कभी पुत्र का मोह घर खींच लाता । फिर तो सुअवसर पाकर ननद भी आ जाती और मां-बेटी शत-शत कंठों में, मल्लिका की अपकीर्ति फैला देतीं, पर फिर भी मल्लिका हार नहीं मानती। पति के असंतोष एवं प्रसन्नता का तो प्रश्न ही नहीं उठता था, जब तक उसके मुंह में ज़बान थी, तब ही वह

बेचारा रौबदार पत्नी की छाया में सिकुड़ा-सहमा रहता, अब तो विधाता ने विवेक और वाणी दोनों से ही वंचित कर दिया था । अपनी इनवैलिड चेयर में बैठा वह दिन-भर, कुछ न कुछ चुगता रहता । मल्लिका आफिस जाती तो उसकी निष्प्रभ आंखों में उदासी की झलक नहीं उभरती और वह दफ्तर से लौटती तो किसी प्रकार की प्रसन्नता या उत्साह का प्रदर्शन नहीं करता । सास ने घर की बहू के आचरण से क्षुब्ध होकर, एक-दो बार नौकरों के सामने उसे बुरी तरह फटकार भी दिया था : 'कि हे बऊ मां, पत्थर का कलेजा है क्या तुम्हारा । ऐसे निरीह परवश पति को भी बिना किसी दया-माया के छोड़ जाती हो ।'

'आपकी पुत्री, जामाता या आप स्वयं इनकी दवा-पानी और नर्स-डॉक्टर का खर्चा उठा लें तो मैं कल ही दफ्तर जाना बन्द कर दूंगी,' तीर-सा उत्तर मिलता और वह बटुआ उठाकर कार में जा बैठती । एक दिन भी वह दफ्तर नहीं पहुंचती तो तूफान-सा उठ खड़ा होता। कर्नल पूरी तरह से बौरा ही जाता, कभी कोई वाउचर नहीं मिलता, कभी कोई ड्राफ्ट खो जाता, स्टेनो की टाइप की गई चिट्ठी में बीसियों गलतियां निकल जातीं, चार बजे एक मीटिंग होती तो पांच बजे उसका ध्यान आता, घंटी बजाकर बैरा को बुलाता तो वह भी गायब होता ।

मल्लिका, कर्नल के जीवन की घड़ी की चाबी थी, बिना जिसके, उसका एक पल भी सार्थक नहीं था । किस कमीज़ के साथ वह कौन से स्टड पहनता है, काले सूट के साथ पोइंटेड टो का जूता पहना जाएगा या फ्लैट, यह सब मल्लिका ही जानती थी । एक ही नहीं, बीसियों छोटी-मोटी बातों को मल्लिका की अनुपस्थिति रोक देती थी। कर्नल को आए दिन दावतें देने का पुराना मर्ज था । प्रत्येक वर्ष, अहल्या की वर्षगांठ पर बड़ी धूमधाम से दावत का आयोजन होता था । 'अहल्या की उन्नीसवीं वर्षगांठ की छटा अब के निराले ही होगी कर्नल, क्योंकि इस बार यह टीन एजर्स की अन्तिम गोष्ठी होगी-थैंक गाड !' कहकर मल्लिका, अहल्या की ओर देखकर स्नेह से मुस्कराकर ऐसे चिढ़ा उठी जैसे अहल्या की मित्रमंडली का गुरुभार वहन करने की मुक्ति उसे सचमुच ही गुदगुदा गई हो। 'वाह रे मौसी, लगता है, मैं भी आपको भारी हो गई हूं, क्यों?'

'पगली कहीं की, तू भला क्यों भारी होगी। पर तेरे फिरंगी मित्रों की टोली को क्या आसानी से निभाया जा सकता है । चा-चा-चा वाला तेरा मित्र रेक्सी, बाउल गान से नन्दी की छतें भी फाड़कर उखाड़ देनेवाला तेरा दूसरा बंधु समीर गांगुली, तेरे पापा की पूरी व्हिस्की एक सांस में गटक जानेवाला रूसी, ये ही क्या कम हैं !'

अहल्या अपने रेशमी ड्रेसिंग को डालकर, फूलदान बदलने लगी ।

श्रावण का महीना था, शस्यश्यामला बंगभूमि अपने पूर्ण यौवन पर थी, मिलों से उठते धुएं की काली लकीर भी श्रावण की हरीतिमा को, काला नहीं कर सकी थी। माली ने मेंहदी की झाड़ियों पर अभी-अभी पानी डाला था । भीगी मिट्टी की सोंधी गमक से मिली मेंहदी की सुगंध ने, नशे के जाल की तरह फैलकर कोठी को घेर लिया था । बावर्चीखाने से मदमस्त मसालों में पकते नाना व्यंजनों की खुशबू की लपटें चली आ रही थीं। बरामदे में तीन-चार नौकर पीतल के फूलदान, ऐशट्रे और बड़ी-बड़ी मूर्तियों को पालिश से चमका रहे

थे । संध्या होने तक 'नन्दी' की छटा ही निराली थी । लम्बी-लम्बी कारों का जुलूस-सा, बरसाती में न सिमट सकने से गेट तक लग गया था। ग्रे माइसोर सिल्क की साड़ी में मल्लिका ही कर्नल के मित्रों की अभ्यर्थना कर रही थी, अहल्या अभी तैयार नहीं हुई थी । उसे घंटों क्या पहनूं और क्या न पहनूं, सोचने में ही लग जाते थे । बड़ी कठिनता से मनाकर, मल्लिका उसे एक जयपुरी लाल बांधनी निकालकर दे आई थी। पतली पारदर्शी लाल चुनरी में वह दुल्हन-सी ही लगेगी और फिर मल्लिका चाहती भी थी कि वह आज दुल्हन ही लगे । उसने आज अपनी बहन के पुत्र रौनेन को भी दावत का निमंत्रण दिया था । रौनेन बसु लम्बा-चौड़ा सुदर्शन तो था ही, लखपती पिता का इकलौता पुत्र भी था। सात वर्ष विलायत पढ़कर लौटा था और आते ही उसे आसाम के चाय बगान में बहुत बड़ी अफसरी भी मिल गई थी । अपनी मातृभाषा से भी सुस्पष्ट उच्चारण से वह फ्रेंच बोलता था । उसके माता पिता मौंटरील ही में बस गए थे; वहीं मल्लिका के जमाई बाबू का टिम्बर का बहुत बड़ा व्यापार था । 'वैसे तो सुन्दरी गुणी कन्याओं का यहां अभाव नहीं है बूड़ी' उसकी दीदी ने लिखा था 'पर अगर टूटू के लिए तुम कोई सुन्दरी अपने ही देश की कन्या जोगाड़ कर सको तो अच्छा है, वैसे लड़के की पसंद ज़रा ऊंची ही है ।' मन ही मन चिट्ठी पढ़कर, मल्लिका मुस्कराई भी थी, कैसी ही ऊंची पसंद हो, वह देख लेगी। अहल्या तेयार होकर उसके पार्श्व में खड़ी हुई तो वह मुग्ध हो गई । लाल साडी की आपा में उसके गुलाबी कपोल और भी आरक्त हो उठे थे, सुकुमार हाथों की शुभ्रता, लाल-लाल कामदार चूड़ियों में और भी निखर उठी थी । गले में एक रुबी का हार, कालर की तरह ही चिपककर, सुडौल लम्बी ग्रीवा को किसी ईजिपशियन सुन्दरी का-सा अनोखा सौन्दर्य प्रदान कर रहा था। बालों को अमृता शेरगिल स्टाइल में चपटा-सा बनाकर लड़की ने अद्भुत कला-चातुर्य से, दोनों गुलाब की पंखुड़ी जैसे छोटे कानों को ऐसे ढांककर रख दिया था कि अंगारे से दहकते दो लाल रुबी के कर्णफूल ही किसी अदृश्य वल्लरी से लटके लाल चेरीगुच्छ से झूल रहे थे । गर्व और सन्तोष से मल्लिका ने झुककर उसका माथा चूम लिया, उसकी शिक्षा सार्थक हुई थी ।

'माशी–मुझे देर हो गई क्या?' रौनेन न जाने कहां से छिटककर आ गया था । लड़का वास्तव में सुदर्शन था।

'लो बेटा, यह है हमारी दुलारी अहल्या और यह है मेरी दीदी का लड़का रौनेन–कैसा आश्चर्य कि तुम आज तक अहल्या से कभी नहीं मिले, जब तुम यहां आते तो यह बोर्डिंग में होती और यह जब यहां आई तो तुम विलायत चले गए–ले जा बेटी, रौनेन को भीतर ले जा।' दावत की दिव्य मस्ती रौनेन के दिमाग में भी चढ़ने लगी। बाहर बैंड बज रहा था । नाना विदेशी सेंटों की सुगंधि, साड़ियों की सुरसुराहट और अहल्या का मादक सौन्दर्य उसकी नसों में भीगने लगा। रागरंग और रस से प्लावित सुनहरी संध्या धन्य हो उठी । एक-एक कर कर्नल का विलासी कक्ष भर गया-बीच कमरे में एक जोड़ा हाथी दांतों की शुभ्रता में टिका ब्रिज टेबल था, उसी को घेर कर्नल के मित्रों का जमघट जुट गया, हल्के और गहरे ड्रिंक्स चलने लगे, मल्लिका कुशल हाथों से छोटे-बड़े गिमलेट देती जा रही थी। कौन ड्राइज़िन लेता है, किसे ड्राईमार्टिनी पसन्द है और कर्नल को सिवाय लौंग ब्रैंडी के और कुछ

नहीं भाता, यह सब उसे पता रहता । स्वयं शैंपेन की अनमोल घूंट से तरावट पा चुकी थी, इसी से उसके सांवले चेहरे पर तारुण्य की मादकता फिर से झलक उठी थी । एक कोने में पियानो को घेरकर अहल्या के मित्रों का गुट जम गया था । बड़े तखत की रंगीन गद्दियों के घेरे में अपनी सखियों से घिरी अहल्या बैठी थी । गोदी में, अपने पर्स से अहल्या की परशियन बिल्ली को खिलाती दौलत दारुवाला खिलखिलाकर हंस रही थी, उसकी चमकीली पारसी काली आंखों में रस का सागर छलक रहा था, बिना बांहों की नीली चोली में उसका गोरा शरीर कसौटी पर कसी सोने की लीक-सा चमक रहा था । उसका माई रूसी पियानो पर कोई विचित्र-सी धुन छेड़ता अपनी पतली-पतली टांगों को लकड़ी के फर्श पर पटकता ताल दे रहा था। जापानी छात्र रेक्सी 'माई बेबी डॉल' गुनगुनाता अहल्या का पेंसिलस्केच बना रहा था । अहल्या बार-बार चित्र को झांक-झांककर देखती। अपनी सुन्दर-सी नाक चढ़ाकर कह रही थी : 'छि:, कहीं भी मुझसे नहीं मिलती । रेक्सी, लगता है कि बच्चे ने स्लेट पर रेखाएं खींच दी हैं ।'

रेक्सी ने हाथ की तस्वीर नीचे रख दो और चारकोल के टुकड़े से शेड देता हंसकर बोला : 'जानती हो ऐल्या, एक बार एक महान चित्रकार ने सूर्यास्त का चित्र बनाया । एक बैरोनेस ने उनसे पूछा : क्या ऐसा सूर्यास्त, ऐसे विचित्र रंगों से भला कभी सम्भव है? हंसकर ही उस चित्रकार ने कहा था : सच कहिए-इसे देखकर, क्या आपकी यह इच्छा नहीं होती कि काश, ऐसा सूर्यास्त सम्भव होता ।

अहल्या ने ओंठ फुला लिए, 'वाह जी वाह, यह भी अच्छी रही । देखो तो दौलत! कहीं सिर-पैर दिख रहा है क्या–मैं तो कभी भी यह इच्छा नहीं का सकती कि मेरो ऐसी एल्यूसिव एग्ज़िस्टेन्स हो ।'[1]

रौनेन अब तक चुपचाप मुग्ध-सा उसे ही देख रहा था, सौंन्दर्य और लावण्य की दौलत अमिता दत्त में भी कोई कमी नहीं थी। ढीले जूड़े पर गुलाब का फूल खोंसे, हल्की नीली ढाकाई साड़ी में कृष्णा किशोरी, अमिता दत्त, मल्लिका की सेकेंड चॉयस थी। लम्बी इकहरे बदन की अमिता गुरुदेव की नृत्यप्रवीणा छात्राओं में से थी, चित्रांगदा और चंडालिका के अभिनय करते-करते उसकी लयबद्ध चाल में रवीन्द्र संगीत का माधुर्य बस गया था । कई वर्ष शांतिनिकेतन में रहने के बाद वह कलकत्ता आ गई थी । उसके पिता एक प्रसिद्ध सर्जन थे। कई बार पुत्री के विवाह का प्रस्ताव लेकर वे मल्लिका के पास जा भी चुके थे पर अभी तक मल्लिका, अहल्या की ही आशा लगाए बैठी थी । किन्तु न जाने क्यों, रौनेन अहल्या की तुलना में उन दोनों को अत्यन्त सामान्य-सा ही पा रहा था। रूसी भी पियानो छोड़कर तस्वीर देखने झुक आया और समीर गांगुली टाई खोलकर दोनों पैर मेज़ पर ही उठाए बैठकर गुनगुनाने लगा : 'आमार सोनार बांग्ला आमी तोमाय भालोवाशी ।' एक आंख बन्द कर उसने अमिता की ओर देखकर ऐसी मीठी आवाज़ में अपनी गुनगुनाहट व्यक्त की कि सब हंस पड़े । अमिता दत्त के पीछे वह बुरी तरह पागल था, सब जानते थे, किन्तु अमिता उसे एकदम ही लिफ्ट नहीं देती थी; एक-आध बार उसकी ओर देख मुस्करा-भर देती और उसी सामान्य-सी मुस्कराहट के भरोसे समीर पिछले चार वर्षों से जी रहा था । दौलत अब

बिल्ली को एक ओर डालकर बोली : 'अहल्या, अब तो कुछ खिला भाई, बड़ी भूख लगी है ।'

अहल्या उठी, उसने एक बार पिता के मित्रों की ओर दृष्टि डाली, बड़ी ज़ोर से ब्रिज और ड्रिंक्स का दौर चल रहा था : 'पापा खाना लगवाइए न । सबको भूख लगी है । नौ तो बज गया पापा!' अपनी नाजुक कलाई की छोटी-सी चमकती घड़ी के हीरे चमकाकर उसने दूर से कर्नल को अपनी अधीरता दिखाई । अब्दुल और हमीद ने आदेश पाते ही अपनी चमकती वर्दियों में आकर, झाड़-फानूस की बत्ती गुल कर दी । बड़े-बड़े चांदी के मोमबत्तीदानों में मोमबत्तियों के धीमे प्रकाश ने, कमरे में रेशमी उजाला फैला दिया । कर्नल के बाग के विदेशी पुष्पों की सुगंधि के साथ-साथ आर्केस्ट्रा का करुण आर्त स्वर वातावरण में छलछला उठा । रोस्ट मुर्ग और नमकीन तली मछली की सुगंधि से कमरा भर गया । एक-एक का अतिथि आ-आकर कर्नल की बहुमूल्य ड्रेस्डन चायना में भारी-भारी चम्मचों से व्यंजनों का स्वयं ही परिवेशन करके खाने लगे । बातों का क्रम बदल गया । हल्की-फुल्की गपशप और मधुर हंसी के साथ दावत रंग पर आ रही थी। सबकी दृष्टि का केन्द्र बनी थी अहल्या । जस्टिस विधुशेखर बनर्जी, अगरतला के ज़मींदार देवेश बर्मन, आसाम की एक छोटी-सी रियासत के राजा गौरमोहन बरुआ, सब उसे पुत्रवधू के रूप में पाने को लालायित थे! ऐसी सुन्दरी और अटूट सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी गुणी कन्या पाना भला कौन नहीं चाहेगा! ! सुन्दरी अहल्या के एक ही कटाक्ष में असंख्य हृदयों की लाशें बिछ सकती थीं ।

'क्यों बेटी, बी.ए. के बाद क्या करने का इरादा है?' जस्टिस बनर्जी ने कुछ ऊंची ही आवाज़ में कर्नल को सुनाकर ही पूछा ।_

'वाह, करेगी क्या!' कर्नल बीच ही में बोल पड़ा, 'शादी करेगी, क्यों है न बेटी? अब के पहाड़ जाकर इसी की तो चिंता करनी है ।'

'क्यों, क्या पहाड़ में योग्य लड़का मिल जाएगा हमारी बेटी के लिए!' गौरमोहन बरुआ ने तरुणी सुन्दरियों के जमघट में घुसकर बड़े प्यार से अहल्या की पीठ थपथपाई, 'क्यों जी!' कर्नल का स्वर नशे ने तीखा कर दिया था : 'क्यों कुमाऊं की धरणी योग्य लड़कों से एकदम ही हीन हो गई है क्या? एक से एक आई.ए.एस., इंजीनियर, डॉक्टर लड़के हैं—अहल्या का विवाह अपने ही समाज में करूंगा,' कचर-कचरकर मुर्गे की टांग को पूरी शक्ति से चिंचोड़कर कर्नल ने अपने कथन की पुष्टि की ।

'क्यों बेटी, तुम तो पढ़ी-लिखी हो, जहां तुम्हारे पापा शादी करेंगे वहीं कर लोगी ।' गौरमोहन बूढ़ा पापा को छेड़ने ही पर तुला है यह दुष्ट अहल्या जान गई, शैतानी से मुस्कराकर कर्नल की चम्पक कन्या ने शील-सौम्यता का ऐसा अद्‌भुत अभिनय किया कि मल्लिका भी दंग रह गई : 'और क्या, आपने सोचा है कि मैं बुढ़ापे में आपकी चरण सेवा करने बहू बनकर गौरीपुर जाऊंगी !'

हो-हो कर रसिक बूढ़े गौरमोहन हंसने लगे, पर कर्नल ने देखा, मल्लिका का चेहरा एकदम स्याह पड़ गया है ।

डिनर खतम हुआ और सब अपनी-अपनी कुर्सियों पर जम गए तो जस्टिस बनर्जी ने, जेब से अपना केम्ब्रिक का रूमाल निकालकर मुंह पोंछकर कहा : 'हां भई पाण्डे, बात तो ठीक कही है तुम्हारी लंड़की ने, विवाह-सम्बन्ध तो अपने ही समाज का अच्छा होता है ।' जस्टिस बनर्जी आधी बोतल घर से चढ़ाकर आए थे, फिर यहां की नीट जिन भी असर दिखला रही थी : 'अब मेरी ही बड़ी बहू को लो, कुर्ग की है, देखने में स्वर्ण-चम्पा का फूल, लैटिन ऐसे पढ़ती है जैसे घुट्टी में ही घोलकर पी हो। नम्बूद्री ब्राह्मणों की बेटी है, पिता रिज़र्व बैंक के मैनेजर थे । नाना थे आई.सी.एस. । विवाह हुआ तो समाज में तूफान मच गया, बेटे को बहुत समझाया पर माना नहीं । अब बहू आती है, तो हमारे घर में मछली नहीं बनती, कहती है 'बदबू आता है ।' अब तुम्हीं कहो यार पाण्डे, अपने बंगाल की बहू होती तो क्या उसे मछली में बदबू आती!'

'यही नहीं बनर्जी, बच्चों पर भी असर पड़ता है,' देवेश वर्मन ने अपनी बर्मी सिगार के धुएं की खुशबू से बनर्जी को और उकसाया : 'तुम्हारी दूसरी बहू भी तो स्विस है, उसके लौंडे को तो ऐंग्लो ही कहोगे, सुना दून स्कूल से फिर निकाल दिया गया, मेरा नाती भी तो वहीं है ।' बनर्जी अब सिर तक नशे में डूब चुका था, दोनों पैर ब्रिज की मेज़ पर धरकर, वह अब अपने गृह के प्रत्येक सदस्य की बखिया उधेड़ने को तत्पर था ।

'निकाल ही नहीं दिया, पांच सौ हर्जाना भी भरना पड़ा मुझे । किसी बैरे के पेट में डबल रोटी का चाकू मारने गया था। कुछ कहो भाई, कहलाएगा तो दोगला ही। मां का असर आया है और क्या!'

'अच्छा, क्या मां भी?' मल्लिका उनके पास ही झुक आई, उसे ऐसी बातों में बड़ा रस आता था, जीवन-भर वह अपने ही चरित्र पर नाना टीका-टिप्पणियां सुनती आई थी, जब किसी और पर उसी का-सा कीचड़ उछाला जाता तो वह खिल उठती।

'अब क्या कहूं मिसेज़ सरकार,' नशे से बनर्जी की आंखें रक्तजवा-सी लाल होकर, बाहर को ही निकली पड़ रही थीं : 'आप ऐसी सती लक्ष्मी के सामने कहने से भी पाप लगता है। हे मां दुग्गा खौमा कौरो ।' कहकर बड़ी भक्ति-श्रद्धा से जस्टिस बनर्जी ने झुककर मल्लिका को नमस्कार किया और रोने लगे । शराबी को रोने में कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता, सिसकियां और हिचकियां लेते वे बोले : 'किसी उचक्के स्क्वैड्रन लीडर के साथ घूमने चली गई है शिमला पहाड़ और बेटा यहां बिसूर रहा है।'

'वह तो तुम्हारा लड़का समझदार है कहो बनर्जी,' रसिक गौरमोहन बरुआ ने छौंक दिया, 'नहीं तो कब का शहीद बन गया होता ।'

दौलत ने अपने कटे बालों का गुच्छा, एक झटके से पीछे की ओर डाला और उठ गई : 'अब चला जाए रेक्सी, पापा से कहें तुम्हें होटल तक छोड़ देंगे ।'

बड़ी ही अनिच्छा से रेक्सी उठा । एक ही पेग ने उसकी नीली आंखों को और भी नीला बना दिया था । अलस अहल्या, ग्लैडोलाइ की एक लम्बी डंडी को नोंच-नोंचकर फेंक रही थी। उसकी गुदगुदी रेशमी बिल्ली बार-बार इधर-उधर जाकर, उसके गुलाबी गालों पर अपनी काली उठी पीठ घिसती म्याऊं-म्याऊं कर उससे उठने का आग्रह कर रही थी और

रेक्सी सोच रहा था किसी दिन वह उसकी ऐसी ही पुष्प नोंच-नोंचकर फेंकनेवाली मुद्रा में एक तस्वीर बनाएगा, उसके गाल से पीठ घिसती काली बिल्ली बनाकर नीचे लिखेगा–'टू कैट्स ।

'अभी जाओगी दौलत ! बारह ही तो बजा है, पापा की दावत तो हमेशा चार बजे तक चलती है ।' कहकर उसने आंचल संभाला, उसके गले का, लाल रत्नों का गुलूबन्द मंदी रोशनी में चमक रहा था, लाल रुबी के टुकड़ों ने उसे अपनी किरणों का प्रतिदान-सा दे दिया था, रेक्सी, रौनेन, समीर सब उस रक्तवर्ण, रक्ताम्बरा सुन्दरी को अनिमेष लुब्ध दृष्टि से देख रहे थे। काली भौंहों के बीच, क्लांत-अलस नेत्रों का वैभव पल-पल में रंग बदल रहा था।

'हां जी, जानता हूं कि दावत तो चार बजे तक ही चलती है, पर पापा को उठाकर ले ही जाना होगा, ममी एकदम अकेली हैं । मैं, रुसी और पापा तीनों यहीं हैं ।' दौलत दारुवाला बचपन से ही अहल्या के साथ पढ़ी थी । उसके पापा रुस्तमजी दारुवाला का पेट्रोल पम्प था और शराब की बहुत बड़ी दुकान थी । दो बच्चे थे–रुसी और दौलत। पिछले चार वर्षों से उनकी रुग्णा पत्नी एकदम ही बिस्तर से लग गई थी, असाध्य कैंसर ने उसकी हड्डियां घुला दी थीं । दौलत भी असाधारण सुन्दरी थी किन्तु उसका सौन्दर्य अहल्या से एकदम ही भिन्न था । दुबली-सी मरियल दौलत, जो अपनी बेंत-सी पतली टांगों को स्कूली स्कर्ट से निकाले अपनी रिकेट चाल से चलती थी, अब गज़ब की आकर्षक हो गई थी। यौवन की जादुई छड़ी फिरते ही वह सिन्ड्रेला सी, नए कलेवर में लिपटी नई ही दौलत बन गई थी, रुसी उसका बड़ा भाई था, पिता ने उसकी पढ़ने में रुचि नहीं देखी तो घड़ियों की बड़ी-सी दुकान खोल दी । जब कभी अहल्या उसकी दुकान में आती तो रुसी के जी में आता, वह अपनी सब दामी घड़ियों की माला पिरोकर अहल्या के गले में डाल दे। दोनों भाई-बहनों की सूरत एक-सी ही थी, फिर भी जिस नैन-नक्श ने दौलत को सुन्दरी बना दिया था उसी नैन-नक्श ने रुसी के चेहरे को हास्यास्पद बना डाला था। दोष रुसी का नहीं, उसकी बेडौल नाक का था जो बढ़ते-बढ़ते उसके पूरे व्यक्तित्व पर, एक काले मनहूस बादल की तरह छा गई थी। अहल्या प्रायः ही उसकी यहूदी नाक का मज़ाक बनाती, किन्तु वह सुन्दरी अहल्या के उपहास को भी, शिव के विष की ही भांति कंठ ही में ग्रहण कर लेता । अहल्या से एकान्त में कितना कुछ कहने को कई बार व्याकुल हो उठता, पर एकान्त में उसे देखकर भी वह कुछ नहीं कह पाता, उसकी लम्बी नाक उसकी हृदय की भावनाओं पर अपनी मनहूस साया डाल देती और हीनभावना से त्रस्त रुसी दारुवाला उदास ललचाई दृष्टि से अहल्या को आंखों ही में भरकर सन्तोष कर लेता। रुसी भी रेक्सी और रोनेन की तरह, पार्टी से इतनी जल्दी नहीं जाना चाहता था, पर रात बहुत हो चुकी थी । रससभा एकाएक भंग हो गई ।

'क्यों अहल्या, पिकनिक तो अठारह तारीख को पक्की रही न?' समीर गांगुली ने पूछा । 'हां-हां, पापा से कार के लिए अभी कहना होगा, कहीं उस दिन लेकर चल न दें,' अहल्या उठकर पिता की मेज़ पर चली गई ।

---

1. भ्रान्तिपूर्ण अस्तित्व ।

छह

कटहल की लम्बी-लम्बी डालियों पर चांदनी उतर आई थी, कारों की घर-घर के बीच जन्मदिन की मुबारकवादियों का स्वर, सीटियों में गुडनाइट और गुडबाई का बोझ ग्रहण कर अहल्या कमरे में लौटी तो उसे कमरा एकदम खाली लगा । मौसी पता नहीं किस बात पर रूठकर कुछ पहले ही चली गई थीं, नित्य की भांति जाते समय उन्होंने आज अहल्या को बुलाकर प्यार से उसका माथा नहीं चूमा था । अहल्या ने कमरे में जाकर कपड़े उतारे-नाइट सूट पहना, मुंह धोकर अपने चेहरे पर क्रीम लगाया तो उसके आईने पर एकसाथ कई अदृश्य चेहरे उभर आए। रेक्सी, जिसके देवदूत से भोले चेहरे के बीच नीले फीरोज़ा-सी जड़ी चमकीली आंखों में उसके प्रति प्रेम का संदेश आज आवश्यकता से अधिक स्पष्ट हो उठा था, रौनेन, जिसने पहली ही दृष्टि में अपना हृदय-निवेदन कर दिया था, रुसी दारुवाला, जिसके सम्भ्रान्त चेहरे की निस्तेजता पर उसका चित्त अनायास ही करुणा से भर आया था। क्यों वह इन सबकी मित्र बनकर नहीं रह सकती—सब उसे मित्रता के ही बन्धन में बांधकर क्यों सन्तुष्ट नहीं होते । वह मौसी की नाराज़ी जान गई थी । उसके व्यक्तित्व को चित्ताकर्षक बनाकर उसके मोहजाल में बेचारे रौनेन को फंसाने का मौसी का यह कैसा बचपना था! दोनों चोटियों को पीछे डालकर अहल्या आईने के सामने खड़ी हुई । आईने पर लगी बड़ी बत्ती उसने जला दी । हाथ की चूड़ियां, गले का हार, कान के कर्णफूल वह सब उतार चुकी थी, किन्तु फिर भी अपने पुष्प-से खिले चेहरे को वह मुग्ध होकर निहारती रह गई...अपना चेहरा होने पर ही वह क्या उसे त्रुटिरहित पाती है या सचमुच ही वह इतनी सुन्दरी है । अपने इतिहास के अध्यापक प्रौढ़ दत्ता के शब्द उसके कानों में बज उठे : 'तुम मेहरुन्निसा-सी हो, सुन्दरी हो और इसी से उसी की वैनिटी भी पाई है ।' बनावटी रोष से अहल्या ने उन्हें बीच ही में टोक दिया था : 'यह तो आपका सरासर अन्याय है, बताइए तो भला, किस वैनिटी का परिचय दिया मैंने?' भारी-भरकम दत्ता महोदय के थैले-से शरीर में गुदगुदी की झुरझुरी-सी छूट गई थी, कैसी मुग्ध दृष्टि से उसे निहारकर उन्होंने कहा था : 'वैनिटी का क्या परिचय दिया जाता है मिस पांडे? वह तो स्वयं ही अपना परिचय देती है ।' पिछले वर्ष, उसके इसी मुंहजले सौन्दर्य को लेकर एक बड़ी भद्दी घटना घट गई थी । अरुणवरुण बनर्जी एम.एस.सी. करके रिसर्च कर रहा था । उसके पिता नैरोबी में कपड़े के बहुत बड़े व्यापारी थे । अहल्या से उसका किसी कला-प्रदर्शनी में परिचय हो गया था और फिर तो वह बुरी तरह उसके पीछे पड़ गया । कुशाग्र बुद्धि के छात्र का चेहरा एकदम ही काला स्याह था ।

'क्यों जी सेन? कहीं पिता के अफ्रीका-प्रवास ने तो तुम्हें यह रंग उपहार में नहीं दे डाला?' मुंहफट अहल्या ने उसे एक दिन किसी मीटिंग ही में छेड़ दिया था और बेचारे के

चेहरे को लाल पड़ने की तो गुंजाइश नहीं थी, गहरा बैंगनी ही पड़कर रह गया था । एक बार उसने अहल्या से अपने हृदय के भाव व्यक्त करने की धृष्टता की तो उसका चेहरा क्रोध से काला पड़ गया : 'आईने में चेहरा तो देख लिया होता—कैसी धृष्टता है ।' क्रोध से कांपती अहल्या दौलत के पास भागती-भागती उसका दु:साहस बतलाने को चली गई थी। जब वह उसे बतला ही रही थी कि समीर का फोन आया था : 'गज़ब हो गया अहल्या, सेन ने कुछ खा लिया है, हम अस्पताल ले जा रहे हैं, एक चिट्ठी तुम्हारे नाम की लिखकर छोड़ गया था। अच्छा हुआ किसी की नज़र नहीं पड़ी, मेरे पास है। अगर साला मर गया तो तुम्हें दे दूंगा नहीं तो फाड़कर फेंक दूंगा ।' उसने हंसकर कहा था : 'अहल्या का भाग्य अच्छा था, सेन को बचा ही लिया गया या नहीं तो जीवन-भर के लिए उसे एक कलंक का बोझ वहन करना पड़ता ।' अरुण के पिता उसे आकर नैरोबी उठा ले गए थे और पिछले माह उसने अहल्या को अपने विवाह का निमंत्रण भी भेजा था। तब से अहल्या बहुत सावधान हो गई थी, वह अब अपने प्रत्येक तरुण मित्र को गज़-भर के फासले ही पर रखती थी।

आज रेक्सी की आंखों ने उसे अशान्त कर दिया था। रेक्सी कितना भावुक था और कितना सुन्दर! ! उसकी प्रशंसापूर्ण दृष्टि, उसे गर्म सलाखों की ही भांति दग्ध करने लगी– कहीं वह भी उसके पीछे सेन की तरह ही पड़ न जाए । रेक्सी का पिता जापानी था और मां किसी अमेरिकन लक्षाधिपति की एकमात्र कन्या थी। रेक्सी का पिता किसी आर्ट स्कूल में पढ़ रहा था, वहीं उसकी भेंट उस अमरीकी सुन्दरी से हुई। राजवंश का जापानी तरुण उसके पीछे पागल हो गया। रेक्सी के नाना ने विवाह का विरोध किया तो दोनों जापान भाग आए, विवाह हो गया किन्तु बन्द-घुटे जापानी राजमहल में अमेरिका की सुकुमारी का दम घुट गया । एक दिन वह फिर पति को छोड़कर, अमेरिका भाग आई। रेक्सी का पिता बड़ा ही भावुक था । उसे बिना कहे ही नन्हे पुत्र को लेकर पत्नी भाग गई थी, यह वह अभिमानी सह नहीं सका और उसने हाराकिरी कर ली। रेक्सी नाना का दुलारा था, मां ने किसी फिल्म-डाइरेक्टर से विवाह कर लिया था । उसकी हर फरमाइश लखपती नाना पूरी करता था। एक दिन वह ज़िद कर बैठा कि वह भारत जाकर वहां के चित्रकारों से भारतीय चित्रकला सीखेगा । डॉलर से लाड़ले पौत्र की जेबें ठूंसकर नाना ने भारत भेज दिया । अवनीन्द्रनाथ की बनाई औरंगजेब की पेंटिंग रेक्सी देख चुका था, उसी महान कलाकार के चरणों में बैठकर वह जीवन धन्य करेगा यह सोचकर घर से निकला था, किन्तु बीच ही में एक जोड़ा संगमरमर-से धवल आरक्त चरणों की शोभा ने उसे खींचकर बांध लिया । कलकत्ते के एक अंग्रेज़ी सिनेमाघर में ही उसे अहल्या दिखी थी। वह मंत्रमुग्ध-सा उसी के पीछे-पीछे बाहर निकल आया था । उसकी कार का नम्बर तो डायरी में नोट कर लिया, पर फिर वह कुछ महीनों तक कलकत्ते की भूल-भुलैयां में खोकर रह गई। एक दिन, वह अपने भड़कीले होटल की बाल्कनी में खड़ा था कि उसे अहल्या फिर दिखी। हाथ का चाय का प्याला फेंककर वह पागलों की तरह उसके पीछे दौड़ पड़ा ।

'सुनिए-सुनिए, एक्सक्यूज़ मी,[1] क्या एक ही बात के लिए आपको कष्ट दे सकता हूं?' उसके सुन्दर चेहरे पर हड़बड़ी और घबराहट की ऐसी विचित्र रेखाएं उभर आई थीं कि

अहल्या हंसकर, आश्चर्य से थमकर रुक गई थी।

'देखिए, क्षमा कीजिएगा, मैं एक विदेशी छात्र हूं, क्या आप एक सिटिंग देकर मुझे कृतार्थ करेंगी? मैं आपका एक चित्र बनाना चाहता हूं।'

बाद में घनिष्ठता बढ़ जाने पर अहल्या ने रेक्सी को कई बार इस घटना की याद दिलाकर छेड़ा भी था : 'लगता था, मेरे ना कहने पर तुम बेहोश होकर गिर जाओगे पुअर रेक्सी!'

रेक्सी से अब उसका परिचय सात महीनों का था, प्रायः ही वह अपने रंग-तूलिका बटोरकर, नन्दी में आ जाता और दिन-भर स्केच करता रहता। अहल्या जानती थी कि मल्लिका को उसकी रेक्सी से घनिष्ठता फूटी आंखों भी नहीं सुहाती, किन्तु रेक्सी के एक दिन भी न आने पर वह खाली-खाली-सा महसूस करती। उसकी मधुर-स्वच्छ हंसी, कभी उसका रूठना, कभी उसके तख्त पर लेटकर, उसकी बिल्ली को पेट पर चढ़ाकर हिलाना, सबकुछ अहल्या को बहुत भाता था । रेक्सी एक बहुत बड़ा-सा बच्चा ही तो था, उसका ऐसा साथी जिसके साहचर्य में उसे सुख मिलता था । रेक्सी को वह अपना मित्र ही मानती थी, उस सम्भावित मित्रता के बीच कभी वासना या विकार का सर्प भी फन उठाकर खड़ा हो सकता है, यह वह सोच भी नहीं सकती थी, किन्तु आज एक कटु सत्य उसे आईने से चुनौती-सा दे उठा। जाते समय कैसी प्रणय-भीनी दृष्टि से देखकर रेक्सी उसके अन्तःकरण तक को कंपा गया था। क्या मल्लिका मौसी यही देखकर तो नहीं रूठ गई?

बड़ी देर तक इसी उधेड़बुन में डूबी वह बैठी रही और फिर बिस्तर पर लेट गई । धीरे-धीरे नींद ने उसे घेर लिया । गुलाब के खिले पुष्प की ही भांति उसका निद्रित चेहरा शान्त और तेजस्वी लगकर चमक रहा था। सुबह उठी तो दिन चढ़ आया था। उसकी खुली खिड़की से, सूरज की आड़ी-तिरछी किरणों के जाल ने ही शायद उसे आकर उठा दिया। कितनी देर तक सोती रही थी वह। उठते ही उसे मौसी का ध्यान हो आया, जैसे भी हो उसे मल्लिका को मनाना होगा, नहीं तो कल की पिकनिक चौपट हो जाएगी । वह मल्लिका के क्रोध को जानती थी, जो ड्रांट-डपटकर अपना क्रोध-प्रदर्शन कर लेते हैं, उनमें से नहीं थी मल्लिका । कुढ़न को संयम की चुप्पी में साधकर, वह मन ही मन घुन्नी बनकर अपने क्रोध की ज्वालामुखी में स्वयं कुढ़ती और दूसरों को भी अपनी अमानुषिक चुप्पी से कुढ़ा डालती। नहा-धोकर मल्लिका दस बजे नित्य ही दफ्तर आती थी, किन्तु वहां फाइल, रसीद और दरबान, स्टेनो के बीच मौसी को मनाना असम्भव होगा। हाथ-मुंह धोकर अहल्या चाय की मेज़ पर गई तो पापा नहीं थे।

'बेबी, साहब ने कहा है सर में दर्द है, आज कमरे ही में चाय पिएंगे, अभी सो रहे हैं—आप पी लीजिए'–अहमद ने उबले अंडे की प्लेट उसकी ओर बढ़ा दी, दलिये को किसी प्रकार गले के नीचे उतारकर, अहल्या एक प्याला चाय पीकर ही मल्लिका की कोठी की ओर चल दी । तीन-चार मोड़ पार कर, लाल कंकरीली कोठी थी । अहाते में बूढ़ा संथाल माली पानी डाल रहा था, उसे देखते ही हंसकर बोला : 'बड़ो भोरे जे दिदीमनी, मां तो हाटे गैछेन (बड़ी जल्दी आ गई दिदीमनी, मां तो हाट गई है) । 'हाय रे, मौसी आज सुबह ही

सुबह हाट बाज़ार चल दी। वह लौट ही रही थी कि रोनेन हाथ में चाय का प्याला लेकर आ गया : 'अरे वाह मिस पाण्डे!'

'अरे पांचू, चाय तो ले आ, एक और प्याला। माशी अभी-अभी बाज़ार गई हैं। मुझे रोहू बेहद पसन्द है, विदेश में रहा हूं, कभी कुछ मिला नहीं खाने को, इसी से माशी सोचती हैं कि सारी कसर निकाल दूं। वही रोहू खरीदने निकल पड़ीं । बैठिए-बैठिए ।'

एक कुर्सी को खींचकर रौनेन न ने आगे बढ़ा दिया और स्वयं उचककर दीवार पर ही बैठ गया । 'कल आपकी दावत गज़ब थी मिस पांडे–कैसी-कैसी दावतें खाने का सौभाग्य हुआ है, पर आपके पापा की रुचि देखकर दंग रह गया–आप आज सुबह ही कैसे चली आई?

अहल्या इस प्रश्न से कुछ चौंक-सी गई, सच ही तो वह मौसी के सन्धान में पहले कभी भी इतनी सुबह भागती नहीं आई थी। 'पापा के सर में थोड़ा दर्द था, सोचा मौसी को बतला दूं-डॉक्टर को खबर कर देंगी, हाई ब्लडप्रेशर है न, इसी से।' पिता के सरदर्द की चिन्ता अहल्या के चेहरे पर भी उभर आई । 'च्च च्च! तब तो उन्हें थोड़ा पीना-पिलाना भी कम ही करना चाहिए ।' रौनेन ने चाय का प्याला, अहल्या को ऐसे यत्न से थमाया जैसे वह किसी रोगी के हाथों में थमा रहा हो । 'कल हमारी पिकनिक है । आप आएंगे? अब के हम लोग बीरभूम की ओर जाने की सोच रहे हैं, प्रोग्राम तो थोड़ा लम्बा हो रहा है पर कल तड़के ही निकल जाएंगे।'

'हां-हां, क्यों नहीं, क्यों नहीं, अवश्य। ऐसा सुअवसर कहां मिलता है, बंगाल का 'इंटीरियर' देखा ही कहां है! आज वेनिस तो कल फ्रांस, इसी में तो दिन गए हैं मेरे ।' कथन का अहंकार वाणी में भी झंकृत हो गया, जैसे भी हो, उस सुन्दर विदेशिनी को प्रभावित करने में कोई भी कसर नहीं रखनी होगी, यह मन ही मन सोच रहा था रौनेन।

'ओ मां, एई जे टुटू, धौर तो बाबा,' हाथ में बड़ी-सी मछली का मुंड लटकाए मौसी गेट पर खड़ी थी, रौनेन के साथ ही अहल्या को देखकर वह मन ही मन प्रसन्न हो गई, दौड़कर अहल्या ने मौसी के गले में हाथ डाल दिए, अभिमान और उपालम्भ के आंसुओं से उसका कंठ छलक उठा : 'आपने कल मुझे प्यार भी नहीं किया मौसी–' बच्ची की तरह वह मचली । 'ओ मा, कान्ना देखो मेयेर! (रोना देखो लड़की का) अरे यहां भी तो कितना काम था,' ले कहकर उसने अहल्या का माथा चूमा और मछली रौनेन को थमाकर भीतर ले चली।

'कल हमारी पिकनिक है मौसी, और आज पापा सरदर्द लेकर बैठ गए । मैं इसी से आई, सोचा आपको खबर कर दूं, कल खाने-पीने में भी तो बदपरहेज़ी बरत गए हैं । डॉक्टर मल्लिक को खबर कर दूं क्या?' कर्नल की बीमारी का समाचार सुनते ही, मल्लिका का उत्फुल्ल चेहरा लटक गया । वह मन ही मन उस दर्द का कारण भी जानती थी । ऐसी पीने-पिलाने की दावत के अजीर्ण के पश्चात, कर्नल को मल्लिका की उपस्थिति का पाचक अनिवार्य हो जाता था, दावत निबटाकर, बचा-खुचा सामान किसी सुगृहिणी की ही भांति, बांट-बूंटकर, मल्लिका कुछ फ्रिज में बचाकर रखती। फिर अहल्या को उसके कमरे में

पहुंचाकर, वह बड़ी देर तक कर्नल के पास ही बैठी रहती । अपने कुछ कपड़े वह सर्वदा कर्नल की वार्ड रोब में रख दिया करती थी। ऐसे ही अवसरों पर हाथ-मुंह धोकर अपनी सुनहरे पाड़ की सादी-सी शांतिपुरी को बंगाल की गिन्नियों की भांति पहनकर, वह कर्नल के पलंग के पास ही धरी आरामकुर्सी में लेटी-लेटी सिगरेट फूंकती । कभी पास ही धरे हीटर पर परक्युलेटर धरकर दो प्याला कॉफ़ी ही तैयार कर, एक प्याला कर्नल को थमाकर, दूसरा स्वयं लेती। बड़ी रात को, कर्नल की कार उसे घर तक छोड़ आती थी, किन्तु कल वह रूठकर ही तो चली आई थी। 'रुक जाओ, मैं ही डॉक्टर मल्लिक को लेकर चलती हूं, तुम यहीं बैठो ।' कहकर डॉक्टर मल्लिक को फोन करके लौटी तो वह भी जाने को उठ खड़ी हुई और अपनी सधी मुस्कान के अचूक निशाने से रौनेन को बींधकर बोली : 'अच्छा, पिकनिक पर आना मत भूलिएगा, पापा की तबीयत ठीक रही तो हम आपको यहीं से पिकअप कर लेंगे ।'

कर्नल का ब्लडप्रेशर जिस तेज़ी से अचानक उठ गया था उसी तेज़ी से उतर भी गया । मल्लिका ने आते ही आफिस की छुट्टी कर दी और गले में रुद्राक्ष की बड़े-बड़े दानों की माला डाल दी । किसी वैद्य ने रक्तचाप की एक यह नई ही औषधि बता दी थी ।

अहल्या की पिकनिक का पूरा प्रबन्ध हो गया था, डनलप की मैट्रेस, सैंडविच, स्टोव, चाय, चीनी, ताश, रिकार्ड सब कार में रखवा दिए गए थे । कलकत्ते से दूर जाकर ही पिकनिक अभियान सफल बन सकेगा यह अमिता का सुझाव था। पिछली बार शान्तिनिकेतन घूम आए थे, 'अब शान्तिनिकेतन में है ही क्या?' अमिता ने होंठ फुलाकर कहा : 'बृन्दावने कृष्ण नाई तो किछूई नांई'–ठीक ही तो कहते थे क्षितिमोहन बाबू। चलो अब के 'अजय धारे' पिकनिक की जाए । बीरभूम की रांगामाटी के वक्ष को चीरकर बहती अजया के तट पर उनके पिकनिक का दल जम गया । गुसकरा, बोनपास, भेदिया तालित कैसे अजीब छोटे-छोटे स्टेशन पार कर वे अजया के किनारे पहुंचे तो रमणीय स्थल की भव्यता को देखकर स्तब्ध रह गए ।

'व्हाट ए ब्यूटिफुल स्पॉट!'[1] रेक्सी किसी बच्चे की भांति तालियां पीटकर उछल गया ।

'हां जी हां, ब्यूटिफुल नहीं तो और क्या।' अमिता गर्वीले स्वर में टहूकी : 'कहा था न मैंने, ऐसा पिकनिक स्पॉट कहीं मिलेगा नहीं, आहा! कहां गए वे दिन ।' उसने अपने शिथिल एलोकेशी जूड़े को संवारा । 'कितनी बार, हम आश्रयिका संघ की पिकनिक में इसी महुआ बन में आमोद-प्रमोद में डूबकर रह जाते थे ।'

'ओह, फिर तुम्हारा वही शान्तिनिकेतन का कीर्तन-पुराण!' अहल्या ने कुछ झुंझलाकर कहा, 'तुम्हारी बातों से तो लगता है, हम सबने तो कहीं पढ़ा ही नहीं, खाली घास ही चरती आई हैं । आखिर क्या था तुम्हारे आश्रम में। कभी किसी छात्रा ने किसी अध्यापक से प्रेम-विवाह रचा लिया और कभी कलकत्ते के 'छाया थियेटर' में तुम लोगों की एक-आध नौटंकी हो गई, यही न !'

अमिता को अहल्या के निर्मम परिहास से सचमुच ही गुस्सा आ गया : 'जानती हो, भारत की नैतिक संस्कृति और अलौकिक पवित्रता का केन्द्र था हमारा आश्रम । इसी अजया के तट पर, दूर-दूर तक, आश्रम के छात्र-छात्राओं की अशेष पंक्ति-सी फैल जाती थी, इसके निःसीम शून्य गगन को हमारा कलकंठ मधुमय कर देता था, इसी पवित्रता को तुम्हारा फिरंगी दल आज चा-चा-चा के रिकार्डों से अपवित्र कर देगा, यही कसक है।'

'ओहो–व्हाट चीक्स!' अहल्या ने शैतानी से मुस्कराकर दरी फैला दी, रेक्सी स्टोव, पिकनिक वास्केट उतार-उतारकर लगाता, उन दोनों की चें-चें-पें-पें का एक शब्द भी उदरस्थ नहीं कर पाकर हंसता जा रहा था, रौनेन बसु अहल्या के अंग-प्रत्यंग के लुभावने उभार, उतार और चढ़ाव पर सौ-सौ बार तृषित दृष्टि फेरकर भी उसे नित्य नवीना ही पा रहा था! ध्रुव सरकार बेचारा दल का सबसे निरीह जीव था । लड़कियां ही उसके व्यर्थ जीवन की एकमात्र सार्थक स्वप्न थीं । कोई भी लड़की उसकी ओर देखकर मुस्करा-भर दे, बस फिर वह उसके चरणों का दास था, उसकी एक आंख भेंड़ी थी, चश्मे से अपने चक्षुदोष को यथासाध्य ढकने की चेष्टा कर भी बेचारा उस अंगदोष से मुक्ति नहीं पा सका था। उसे पिकनिक दल में केवल इसलिए शामिल कर लिया गया था कि चाय उबालने में, दरी समेटने में और ऐसे ही नाना छोटे-मोटे कार्यों में वह बेजोड़ था। उसे कभी 'अजी सरकार', 'बी ए गुड ब्वाय', 'ज़रा मेरी चप्पल उठा देना' अहल्या कहती और वह चट से पादुकाद्वय उठाकर पैरों के पास ला देता : 'देखो जी ध्रुव, चटपट मछलियां मार लाओ न । चाय के साथ-साथ क्रीम क्रैकर और 'साल्टेड फिरा' फिश क्या मज़ा देगी, है न मीता ।' अहल्यष्टा शिउली वृक्ष का सहारा लेकर लेट गई, अमिता ने आंखें मूंदकर कहा : 'आहा, की ठांडा वाताश सुनवि ऐकटा गान?' अपनी मीठी बंशी की-सी स्वरलहरी से उसने वन-वनांत गुंजा दिया ।

अमल धवल पाले

लेगेछें मंद मधुर हावा
कोन सागेरर पार होते आने
कौन सुदूरेर धन
भेशे मेशे जेते चाय मन
फेले जेते चाय–एइ किनाराय सब
चाय जब पावा

दौलत की स्कर्ट में कांटे ही कांटे भर गए थे, रेक्सी उनको चुन-चुनकर निकाल रहा था, रौनेन सिगरेट फूंकता पैंट की घास को झाड़ रहा था । ध्रुव बेचारा इस सभा से, कुछ अनिच्छा से ही विदा लेकर, ड्रेन पाइप घुटनों तक समेटे अहल्या के लिए मछली-सन्धान में निकल गया था, अमिता के पैरों के पास बैठा, समीर गांगुली अमिता के स्वरों के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ डूबता-उतराता, बेसुध-सा उसे ही देख रहा था ।

'व्हाट ए ब्यूटिफुल सांग !'[1] रेक्सी ने कहा : 'व्हाट डू यू नो ऑव इट्स ब्यूटी, इफ यू डोंट नो इट्स मीनिंग?[2] रवीन्द्र संगीत बेटा, तुम्हारी विदेशी सिम्फनी थोड़े ही न है, इसके तो

अर्थ की बारहखड़ी, स्वरलिपि से पहले कंठस्थ करनी पड़ती है।' हंसकर अमिता ने कहा : 'समझे कुछ?' रेक्सी उसके लम्बे भाषण का एक शब्द भी नहीं समझा, केवल हंसता ही रहा ।

'तो लो सुनो,' अमिता उठकर बैठ गई, उसे अर्थ बताने का जोश उसके सांवले चेहरे पर एक अनोखी लुनाई लेकर छा गया । 'सुनो रेक्सी, इसका अर्थ है-अमल-धवल पाल मधुर बयार में डोल उठी है । आज किस सागर से, किस सुदूर के धन की स्मृति में मेरा मन तैरना चाहता है, उस स्मृति के लिए मैं अपना सबकुछ इसी किनारे पर फेंक देना चाहती हूं।'

'कौन-सी ऐसी स्मृति है जी!' रेक्सी ने दुष्टता से मुस्कराकर पूछा और एक अजब-सी चुप्पी छा गई।

अमिता तड़ाक से उठकर अजया के तट पर टहलते-टहलते दूर निकल गई ।

'ओह रेक्सी, यू हैव हर्ट हर!'[1] अहल्या ने उसका कंधा पकड़कर झकझोर दिया : 'जानते नहीं उस बेचारी की सगाई अपनी बड़ी बहन के देवर से हो गई थी । इसी के पिता ने उसे पढ़ने के लिए विदेश भी भेजा, हज़रत ने वहां जाकर एक अमेरिकन नर्स से शादी कर ली, कल ही वह उस नर्स को लेकर भारत आ रहा है, इसी से तो अमिता इतनी उदास है ।'

'अहल्या,' रेक्सी ने कहा, 'पर इसमें उदासी कैसी? अभी तो मिस दत्ता की पूरी ज़िन्दगी पड़ी है और फिर जब ऐसे प्रशंसक हैं!' कहकर उसने समीर की ओर देखकर मुस्करा दिया । पता नहीं अमिता ऐसे सुदर्शन युवक को देखकर भी नहीं रीझ पाती थी। अद्धी के ढीले पंजाबी कुर्ते में लगे सोने के बटनों को मोड़ता-मरोड़ता समीर उठ गया : 'देखूं मछलियां मेरे हाथ भी शायद लग ही जाएं—चलो न रौनेन, तुम भी आ जाओ |'

'मैं भी चलूंगी मिस्टर बसु !' अहल्या भी उठ गई और रोनेन के साथ-साथ चल दी ।

'देखिए, मुझसे मिस्टर बसु क्यों कहती हैं भला? बड़ा अजब 'फील' होता है । रौनी ही कहिए न, मेरे विदेशी मित्र मुझे इसी नाम से पुकारते हैं ।' रौनेन ने अपने विदेशी मित्रों के ही लहजे से रौनी को ऐसे अमेरिकन ड्रौल के स्वर में कहा कि अहल्या मुस्करा उठी : 'वाह, खूब ड्रौल कर बोलते हैं आप तो !'

'क्या करूं, आदत से लाचार हूं, अब आप ही बताइए कि कलकत्ते में रहकर आप ही में क्या बंगालीपन नहीं आ गया? मैं तो विदेश में रहते-रहते ऊब गया हूं-चलिए न आप भी एक बार कैनाडा, पापा आपको देखकर बहुत ही खुश होंगे ।'

'वाह जी वाह, क्या आपकी ममी खुश नहीं होंगी ।'

'नहीं-नहीं–मैं अपने को 'एक्सप्रेस' नहीं का पाया, ममी भला क्यों खुश

नहीं होगी? माशी आपको इतना दुलार करती है, ममी तो और भी खुश होगी ।'

'मैं तो थक गई हूं रौनी, यहीं बैठ न जाएं थोड़ी देर।' और चट से अपने रेशमी रूमाल की ऊंची-सी पहड़ी पर बिछाकर रौनेन ने अहल्या के लिए जगह बना दी। एक ऊंचा सिग्नल, लाल-हरी आभा-सी फैलाता खड़ा था, रेल की पटरियां दूर-दूर तक सीमान्त में जाकर खो गई थीं–भक-छुक करती शायद कोई ट्रेन चली आ रही थी ।

'जानते हैं, मुझे इन छोटी-मोटी पटरियों पर, विचित्र यात्रियों को लेकर भागी जाती ट्रेन को देखना बहुत ही अच्छा लगता है, हावड़ा सियालदह पर आती-जाती ट्रेन देखने में भला क्या रस आता है।' अहल्या आप ही आप बोलती जा रही थी, हवा में उसके बाल इधर-उधर उड़कर कुंडल किरीट-सा बना रहे थे, ट्रेन धड़धड़ाती आकर निकल गई और बच्ची के-से उत्साह से वह एकटक ट्रेन को देखती रही । रौनेन उसकी उसी मुद्रा को मुग्ध होकर देखता रहा। उसे लगा जैसे एक भी शब्द बोलकर वह उस क्षण की गटझं." को नष्ट कर देगा । न जाने कब तक वह चुप ही खड़ा रहता, एकाएक अहल्या उचककर खड़ी हो गई : 'आप तब से खड़े ही हैं। चलिए अब लौट चला जाए। क्या ख्याल है आपका? बड़ी दूर तक निकल आए हैं'–और बिना रौनेन के उत्तर की प्रतीक्षा किए वह लम्बे-लम्बे डग भरती चल दी। ठगा-सा, रौनेन उसके पीछे-पीछे चल दिया । कैसी अनुपम लावण्यमयी किशोरी थी यह । नारी, रौनेन के लिए आज तक केवल मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन मात्र रही थी, कितनी ही नारियां उसके रंगीन जीवन में तितलियों की भांति मंडरा-मंडराकर उड़ गई थीं–ब्लौंड, बुनेट, नीग्रेस, स्विस, फ्रेंच, कैनेडियन और इटैलियन । पिता के असीम वैभव ने उसके लिए विलास के नाना कक्ष खोलकर रख दिए थे, किन्तु पहले तो कभी उसे ऐसी व्याकुलता ने नहीं घेरा था। रात-भर वह ठीक से सो नहीं पाया था । उठते-जागते उसे अहल्या ही दीखती थी। पिकनिक की मधुर प्रतीक्षा में उसने आंखों ही आंखों में रात काट दी थी। एक बार अवश्य, वह एक अमेरिकन टाइपिस्ट के पीछे बुरी तरह पागल हो गया था । आइरीन अपने बाईस वर्षों के बावजूद एकदम ही बच्ची लगती थी, वह फूल बेचा करती थी। उसके आते ही दुकान पर भीड़ जुट जाती । मनचले युवक उसे 'लोलिटा' कहकर पुकारते थे । लोलिटा का ही सा व्यक्तित्व भी था उसका । उसे लेकर रौनेन एक से एक दामी होटलों में ठहरा था और एक दिन उसकी प्रेयसी लोलिटा, उसके हीरे के बटन चुराकर अपने एक ड्राइवर-प्रेमी के साथ भाग गई थी । कई दिनों तक शराब के नशे में डूबकर रोनेन ने उसे भूलने की चेष्टा की थी। वही चेष्टा आवश्यकता से अधिक उत्साह से बढ़ने लगी तो पिता ने उसे भारत भेज दिया । अहल्या को देखकर तो वह फिर सबकुछ ही भूल गया । कभी रेल की पटरियों पर चलती, कभी फिसलकर टेढ़ी होती अहल्या की बंकिम देह-यष्टि उसे चुम्बक की भांति खींचती चली जा रही थी । पिकनिक दल इसी बीच इधर-उधर बिखर गया था । शिउली वृक्ष के तले दौलत, अपनी मादक झूमती आंखों से रेक्सी को एकटक देख रही थी। रेक्सी की गौर लाल पुष्ट भुजाओं पर उभरे सुनहले बाल, नीली आंखें, जो बंगाल के उन्मुक्त आकाश से रंग मिलाकर ही बनाई लगती थीं और उसकी हवाइयन टी-शर्ट से झांकती उसकी चौड़ी सिल-सी छाती। । दौलत की मुग्ध दृष्टि का आभास पाकर वह मुस्कराकर बोला : 'दौलत, तुम्हारा भी एक स्कैच बनाना चाहता था । पहले भी एक बार कोशिश की थी पर हार गया। क्या उन लोगों के आने तक ऐसे ही स्थिर होकर, मुझे एक सिटिंग दे सकोगी ? प्लीज़ दौलत ! '

आश्चर्य से दौलत उठकर बैठ गई : 'मेरा स्केच कब बनाया जी तुमने? वाह रे, ऐसा पेचीदा चेहरा है मेरा क्या ?'

'हां दौलत, तुम्हारी आंखों का रंग तुम्हारे ड्रीमी मूड के साथ ही बदलता रहता है। । मैंने काले रंग के गहरे शेड से तुम्हारी पुतलियां बनाई और आज देखता हूं कि तुम्हारी आंखें तो हेजल हैं' -प्रशंसक की दृष्टि आवश्यकता से अधिक ही तीखी हो उठी, पर बीच ही में दौलत को टोक दिया अहल्या ने : 'उसकी आंखों के जादू ने तो नहीं उलझा दिया तुम्हें ?' चंचल कटाक्ष से रेक्सी को बींधकर वह एक तिनका उठाकर चबाने लगी ।

'ओह, अहल्या,' रेक्सी स्वयं ही बड़बड़ाने लगा, 'सुना था कि तुम भारतीयों की एक रोप-ट्रिक होती है, जिसे हम विदेशी रहस्य की पराकाष्ठा मानते आए हैं, ऐसी ही भारत की रहस्यमयी रोप ट्रिक-सी है तुम्हारी सखी अहल्या । उसके स्वभाव का कौन-सा भाग सत्य है और कौन मिथ्या, यह मेरे लिए एक अबूझ पहेली ही रही है। । कभी वह अनोखी आत्मीयता से निकट खिंच आती है और दूसरे ही क्षण कटी पतंग की तरह हवा में दूर उड़ जाती है, मनुष्य की पकड़ से बाहर, और तुम !' कहकर रेक्सी दौलत के चेहरे के पास ही झुक आया । उस पारसी किशोरी की आंखों में अनोखी मादकता थी, बहुत दिनों पहले, उसने असित हालदार का अंकित एक उमर खैयाम का चित्र देखा था–एक पेड़ के नीचे उमर खैयाम की साकी- 'ऐंड दाउ टू बिसाइड मी' की फारसी लिपि-सी ही रहस्यमयी झूमती मस्तानी आंखों से भी शराब झलकाती साकी-सी ही मादक लग रही थी दौलत ।

'देखो कोई आ रहा है,' कह धड़कते हृदय से रेक्सी को अलग हटाकर 'दौलत कपडों की धूल झाड़कर खड़ी हो गई, ओफ् कितने दुस्साहसी होते हैं ये विदेशी, सोच रही थी दौलत और उसे भी क्या हो गया था । 'हलो माई ब्यूटी—क्या आज खाने-पीने का इरादा नहीं है, देखो तो ध्रुव कितनी बड़ी मछली लाया है,' अहल्या, अमिता, ध्रुव, रौनेन और समीर सूखे पत्तों को चरमराते चले आ रहे थे ।

स्टोव जलाकर ध्रुव की लाई मछली को बड़े उत्साह से भूना गया । रेक्सी ने अपने जापानी सॉस की शीशी निकाली । कोल्ड चिकन की विशबोन को लेकर नाना हास-परिहास के बीच दौलत से विश करने को कहा गया, क्योंकि उसी के हाथ में विशबोन आई थी। अपनी दोनों आंखें मूंदकर दौलत चुप ही रही। चित्त की खीझ और झुंझलाहट के बीच वह कुछ भी विश नहीं कर पाई । आंखें खुलीं तो देखा रेक्सी मंत्रमुग्ध-सा अहल्या की ओर ही देख रहा था । एक लम्बी सांस खींचकर दौलत ने गर्म चाय की घूंट ली, उस हंसी और कहकहों के बीच सहसा उसका चित्त अशान्त हो उठा। । बार-बार उसे पलंग पर पड़ी अपनी रुग्ण मां का ही ध्यान आ रहा था । असाध्य कैंसर ने उसकी मां को कितना बदल दिया था । वही मां, जिसने उसे कभी मज़ाक में भी नहीं झिड़का, अब बात-बात पर चिड़चिड़ा उठती थी, उसके लम्बे-लम्बे बालों की जटाओं को जब दौलत किसी भी तरह नहीं सुलझा सकी तो एक दिन कैंची लेकर राब लटें काट दीं। कटे बालों से झांकता रुग्णा मां का पीड़ित चेहरा, उसकी पिकनिक की रंगीनी में रह-रहकर उभर उठता और वह फिर उदास हो जाती। घर जाकर उसे फिर, धीरे-धीरे कदम रखकर मां के कमरे में जाना होगा, स्टोव जलाकर चिकन सूप बनाना होगा और रात को जब वह ममी के बगल की चारपाई पर लेटकर रेक्सी को सपने में देखेगी तो सपना भी शायद रेक्सी को अहल्या की ओर एकटक

निहारने का ही चित्र प्रस्तुत करेगा । 'चलो भाई, अब देर मत करो, पहुंचते-पहुंचते रात ही हो जाएगी' उसने कहा और स्वयं एक-एक कर चीजें समेट-समेटकर टोकरी में रखने लगी। ।

---

1. मुआफ कीजिए ।
1. अरे, कितना सुन्दर स्थल है।
1. अरे, कितना सुन्दर है संगीत !
2. यदि तुम इसका अर्थ नहीं जानते तो तुम इसके सौन्दर्य को कैसे जानोगे?
1. तुमने उसे ठेस पहुंचाई ।

सात

पिकनिक की रंगीनी का जाल बटोर, सब कार में बैठकर घर लौटे तो सचमुच ही अंधेरा हो चला था। अहल्या सबको एक-एक कर घर पहुंचाकर लौटी तो देखा, पापा के कमरे की बत्ती जल रही थी। उसे थोड़ा आश्चर्य ही हुआ, इतनी जल्दी तो पापा क्लब से कभी नहीं लौटते थे। ओह मल्लिका मौसी आई थी, मौसी के मीठे गले की हंसी सुनकर वह आश्वस्त हो गई । ‘ मौसी, उसने पुकारा। ।

‘आ गई सोना, ओ विष्णु, गर्म चाय लाओ, बिटिया आ गई-कहो कैसी रही पिकनिक ?’

मौसी की ग्रे साड़ी का आंचल उठाकर बड़े स्नेह से उसे गले में लपेटती अहल्या मोढ़ा खींचकर उसके पास ही बैठ गई और बड़े दुलार से मल्लिका ने उसे अपनी गोदी में खींच लिया।

‘और आप कहते हैं, आप इस मोम की गुड़िया को पहाड़ ले जाएंगे आह ! एक ही दिन की होईचोई में–मुख कैमोन शुकिए गैछे-सोना आमार ।' अहल्या की ठोढ़ी को चूमकर मल्लिका ने माथे से लगाया ।

‘कैसा पहाड़ मौसी ?’ अचकचाकर अहल्या मोसी की गोद से छिटककर बैठ गई । अपनी आंखों में प्रश्न की जिज्ञासा भर उसने कर्नल की ओर देखा। । हाथ में व्हिस्की-सोडा की चुस्की लेकर कर्नल मुस्कराए । हाथ में व्हिस्की रहने पर पापा का मूड कभी खराब नहीं होता, अहल्या जानती थी। । ऐसे ही अवसरों पर वह कर्ण-सा दानी बन जाता था और शराब से घुलकर चित्त एकदम ही दर्पण बनकर झकझक कर उठता था ।

‘हर बात जानने की इतनी उतावली क्यों रहती है तुझे ?’ बड़े प्यार से उन्होंने पुत्री की ओर देखकर धमक लगाई।

‘नहीं पापा, कहिए न ! क्या सचमुच पहाड़ चल रहे हैं? हाय मैं तो कब से कहती आ रही थी कि सब पहाड़ तो देख लिए, पर अपना पहाड़ नहीं देखा, पर आप तो सुनते ही नहीं थे ।'

मल्लिका ने उसकी उलझी लटों को पीछे किया और बड़े दुलार के स्वर में बोली : 'और मेरा क्या होगा री? कलकत्ते की पौंचा (सड़ी) गरमी में माशी के हाड़-गांस का दलिया पकेगा, यही न ?’

क्यों वाह रे! तमककर अहल्या ने माशी के गले में हाथ डाल दिए : ‘आप भी तो चलेंगी पहाड़ । पिछली बार क्या हम शिलौंग नहीं गए? उससे पहले दार्जिलिंग, मरी, मसूरी, काश्मीर, डलहौज़ी, धरमशाला कोई पहाड़ भी तो नहीं छूटा-फिर बताओ भला, इस बार तुम क्यों नहीं चलोगी?'

एक लम्बी सांस खींचकर मल्लिका उठ गई। । एक भेद-भरी दृष्टि से उसने कर्नल की ओर देखा और पर्स उठा लिया : 'सब पहाड़ जाना तो मेरा नहीं हो सकता खुकूमनी' बहुत प्यार उमड़ने पर वह अहल्या को इसी नाम से पुकारती थी–'अच्छा चलूं पर देख खुकू' उसने आदेश के स्वर में कहा और अहल्या के कन्धे पर हाथ रखकर उसके कान के पास झुक आई : 'पापा को इसके बाद व्हिस्की-सोडा मत देना, मांगें तब भी नहीं, बूझली?' एक बार कर्नल पर स्नेहपूर्ण अधिकार की दृष्टि की मुहर लगाकर वह चली गई । मन ही मन वह कितनी क्षुब्ध होकर जा रही थी । उसने घंटों बैठकर कर्नल को समझाया था, 'पहाड़ तुम्हें जाना है तो जाओ पर अहल्या बंगाल की बेटी है, वह ऊब जाएगी' पर कर्नल अपनी ज़िद पर अड़ा था । लड़की विवाह योग्य हो गई थी, वह अन्तर्जातीय विवाह के पक्ष में नहीं था। एक बार पहाड़ जाकर पहाड़ी अदब-कायदे और समाज से बेटी को परिचित कराना ही होगा । समाज और आत्मीय स्वजनों से नाता क्या सहज में ही तोड़ा जा सकता है? उनके दद्दा ने लिखा था :

'समाज और रक्त का बन्धन विकट होता है शिवदत्त । अभी तुम्हारे पास साधनों की प्रचुरता है, तुम्हारा वैभव असीम है, पर एक दिन इस राजसी सुख के बीच तुम सहसा अपने देश और अपनी जन्मभूमि के लिए व्याकुल हो उठोगे । पहले भी कई बार तुम्हें पहाड़ आने के लिए लिख चुका हूं और आज अन्तिम बार बिना किसी वाक्याडंबर के लिए लिख रहा हूं भाई, अगर बसन्ती के विवाह में अपनी पुत्री को भी लेकर आ सको तो हम सुखी होंगे । तुम्हारा दद्दा ।'

पत्र के साथ ही दद्दा का चेहरा कर्नल की आंखों में तैर उठा था, बन्द गले का कोट, पट्टू का चुस्त पाजामा, घनी मूंछों के नीचे एक अनोखे स्मित का आकर्षण । एक साथ ही दोनों खेल-कूदकर बड़े हुए थे, छुट्टियों में अंग्रेज़ी छात्रावास से घर आया नन्हा शिवदत्त, दद्दा के सहवास में अपने स्कूल की महिमा का मुखस्त किया पाठ भूल जाता । पतंग का मंझा, कैसे पिसे कांच से खरा बनाया जाता है, सुरती में चूना मलकर उसे खाने में कैसा मज़ा आता है और पगली बुढ़िया देबुली को तनिक-सा उकसाए जाने पर ही, वह लहंगा उठा-उठाकर कैसी भयानक गालियां दे उठती है, ये सब शिवदत्त ने दद्दा से ही सीखा था । आज इतने वर्षों बाद दद्दा का निमन्त्रण पाकर वह एक बार पहाड़ जाने को व्याकुल हो उठा। पहाड़ जाने में उसका अपना भी स्वार्थ निहित था, लड़की सयानी हो गई थी। जापानी, बंगाली, मुसलमान और क्रिस्तान विदेशी छोकरों की भीड़ जो उसकी दुहिता के चारों ओर भ्रमरावलि बनाकर मंडराने लगी थी, उससे कर्नल त्रस्त होता जा रहा था । अपने नवीन समाज की खोखली मानवता को वह परख चुका था, इसी से चाहता था कि पहाड़ में अच्छा घर और वर देखकर कन्यादान से मुक्ति पा ले । पहाड़ भी अब बहुत बदल चुका था । प्रायः ही उसे कलकत्ता के प्रवासी कुमाउंनी समाज से कुमाऊं की नवीन प्रगति का ब्यौरा मिलता रहता । कैसे पन्तों के सिरमौर धनेश पन्त की कन्या एक मुसलमान के साथ भाग गई थी, उनके पड़ोसी श्रीराम भट्ट के पुत्र ने भी एक मुसलमानिन डाल ली थी; वही राम भट्ट, जिनके घोर सनातनी चौके की लकड़ियां भी नित्य गंगाजल से धोई जाती थीं । नई पीढ़ियां

बहककर रह गई थीं, पर कर्नल की दृष्टि में दोषी नई पीढ़ी नहीं, पुरानी पीढ़ी थी । जैसे ही मनुष्य को पेट की क्षुधा, समय पर भोजन न जुटने से, निकृष्ट कार्य करने को भी बाधित कर देती है, ऐसे ही शरीर की क्षुधा को भी मनुष्य भुला नहीं सकता । सब, समय पर ही कन्यादान की सप्तपदी से मुक्ति क्यों नहीं पा लेते?

अहल्या को मल्लिका आवश्यकता से अधिक छूट देती जा रही थी। रौनेन वांछनीय युवक था इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु वह किसी भी प्रकार मल्लिका से उसका प्रस्तावित रिश्ता मान लेने को तत्पर नहीं था।

'क्या है आपके पहाड़ियों में कोई ऐसा?' उसने एक दिन कहा तो कर्नल की आंतें जल-भुनकर रह गई ।

'अगर पहाड़ियों में ऐसी योग्यता न होती तो बड़ा आश्चर्य होता है मल्ली कि तुम इस समय यहां हो!'

घड़ी में रात के दो बजे थे । चोट खाई सर्पिणी-सी मल्लिका उठ गई थी और ओसभीनी रात्रि के गहन अन्धकार को चीरती, पैदल ही चली गई थी । बड़ी मान-मनौवल के बाद कर्नल उसे लौटा पाया था । वह स्वयं उसके बिना नहीं रह सकता था, किन्तु इस बार उसने जी पक्का कर लिया । मल्लिका को वह पहाड़ नहीं ले जा सकता । पहाड़ तक यह खबर कब की फैल चुकी थी कि अपनी फूहड़ पत्नी को निकालकर उसने एक बंगालिन धर ली है, फिर अब उसे सयानी पुत्री के भविष्य का भी ध्यान रखना था । नहीं, मल्लिका का चलना इस बार किसी भी प्रकार नहीं हो सकेगा। उसने दृढ़ स्वर में अहल्या से कहा और वह चुप रह गई ।

प्रत्येक ग्रीष्म में, पहाड़ जाने की तैयारियां बड़े उत्साह से होती थीं, मौसी के साथ बाज़ार जाकर अहल्या नाना वस्तुएं जुटाती थी, कई तरह का ऊन, बिनाई के लीफलेट, नाना नम्बरों की बिनने की सलाइयां, छाता, बरसाती, फिर राशन, स्टोव, टिनफ्रूट सब ही कुछ तो साथ में जाता था । अच्छी-खासी गृहस्थी ही संग चलती । सरकार काका को बड़ी-सी कुरसी के पहिए घुमा-घुमाकर मल्लिका के नौकर, कर्नल के मोनोग्राम चमकाते बैरा-बटलर, सब दल बांधकर पहाड़ चलते तो लगता, लाट साहब का दफ्तर ही पहाड़ जा रहा है। अब के ऐसा कोई उत्साह नहीं था। । नौकरों में से एक को भी साथ नहीं लिया गया । कर्नल नहीं चाहता था कि उसके भृत्यगण, स्वामी के दीन-सरल आत्मीय स्वजनों को देखें। । अहल्या अपने सूटकेस में दामी बनारसी और जामदानी साड़ियां रखने लगी तो मल्लिका ने फीकी हंसी हंसकर कहा : 'क्या करेगी इन दामी साड़ियों का वहां, न हो तो एक-आध रख ले–वहां इनकी कीमत कौन आंकेगा?' कर्नल भुन्ना उठा : 'क्यों, क्या ढोर-जानवरों में जा रही है या सब कलापारखी तुम्हारे बंगाल ही में आकर बस गए हैं ।' आंखों में आंसू भरकर मल्लिका उठ गई थी। उस दिन संध्या अहल्या मौसी से मिलने गई तो ताला बन्द था । चौकीदार ने कहा : 'बहूजी की सास की तबीयत काशी में अचानक खराब हो गई, तीन बजे साहब और बहनजी को लेकर वे चली गई ।'

मल्लिका ने ऐसा तो पहले कभी नहीं किया था। बिना उससे और पापा से मिले ही वह चली गई और जब उसे पता था कि वे कल पहाड़ जा रहे हैं । उसने घर आकर पापा से कहा तो कर्नल का चेहरा क्षण-भर को फीका पड़ गया, फिर उसने कहा : 'अहल्या, मल्लिका नाराज़ थी इसी से मिलने नहीं आई, तुम बाज़ार जाकर बसन्ती के लिए गहनों का एक सेट ले आओ, एक बात और बेटी, इस बार की पहाड़ की यात्रा बहुत आरामदेह नहीं होगी। न वहां मसूरी की-सी तड़क-भड़क होगी, न तुम्हें वहां मनबहलाव के वे साधन ही उपलब्ध होंगे जिनका तुम्हें अभ्यास है। अल्मोड़ा एक सीधा-सा शहर है बेटी, जहां एक पत्थरों से पटी छोटी-सी बाज़ार है, शायद. अब एक-आध सिनेमा भी बन गए हों, पर न वहां तुम्हें कलकत्ते का-सा कोई साउथ क्लब मिलेगा और न रंगीले संगी-साथी । फिर भी मुझे पूरा विश्वास है कि तुम अल्मोड़े के जादू से अछूती नहीं रहोगी । वहां के सरल बन्धु-बान्धवों का स्नेह, प्रवृति का आकर्षण सब तुम्हें बांध लेगा । एक बात और भी है बेटी,' कर्नल का स्वर गम्भीर हो आया : 'मैं चाहता हूं कि तुम उस समाज में जाकर अपने शील-सौजन्य और कुल का नाम उज्ज्वल करो–यह ठीक है कि मैंने तुम्हारे रेक्सी, रौनी, समीर और ध्रुव सरकार के आने-जाने पर कभी रोक-टोक नहीं रखी, पर वह केवल इसलिए कि मुझे तुम पर पूरा विश्वास है–मैं यही चाहता हूं कि मेरा तुम पर यह विश्वास अक्षुण्ण रहे–अब तुम जा सकती हो, अहल्या ।'

अहल्या, कई दिन से अपने पापा में एक विचित्र परिवर्तन देख रही थी । बोलते-बोलते वह सहसा एक अभेद्य चुप्पी के आवरण में अपने को रेशम के कीड़े की तरह लपेटकर खो जाता । मल्लिका से प्रायः ही उसकी झड़प के तीखे स्वर, उसके कमरे तक तैरते चले आते । वह जानती थी कि बहस का कारण वही थी। मल्लिका उसे पूरी तरह अपने समाज में मिलाना चाह रही थी । यह ठीक था कि वह बचपन ही से मौसी के ब्रह्मसमाजी मन्दिर के माघोत्सव में स्वयं बिना किसी ज़ोर-दबाव के ही जाती थी और कुछ अंश तक यह भी ठीक था कि बंगाल से उसे किसी प्रकार का बनावटी प्रेम नहीं था, किन्तु बचपन से ही पुराने धान के लहलहाते खेत ही देखे थे, देवदार के घनद्रुमों को उसने देखा ही कब! धुएं-से मलिन कलकत्ते के गगनांगन की माया क्या भव्य हिमालय पर तने शुभ्र नीलाकाश को देखकर छूट नहीं जाएगी ? फिर यह तो सचमुच ही मौसी की ज़्यादती है । बात दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी । पहाड़ से लौटने तक मौसी को स्वयं ही अपनी भूल ज्ञात हो जाएगी । अहल्या बाज़ार से पन्ना का एक बहुमूल्य सेट लेकर लौटी तो कर्नल अपने सूटकेस में अनाड़ियों की भांति सूट ठूंसे जा रहा था । अचानक अहल्या का जी भर आया । यह सब काम मल्लिका ही आज तक किया करती थी । 'हटिए पापा, लाइए मैं सामान लगा देती हूं, देखिए-यह रहा गहने का सेट-इससे सुन्दर तो मुझे कुछ भी नहीं मिला ।'

बड़ा-सा पन्ने का हार मखमल के डिब्बे में झकझक कर उठा । कर्नल ने डिब्बे को बन्द करके सूटकेस में धर दिया और काग़ज़ के डिब्बे से एक बहुमूल्य साड़ी निकालकर कहा : 'यह तेरी मौसी न जाने किस दुकान से आर्डर कर भिजवा गई हैं, फालसाई साड़ी के ज़रीदार आंचल पर एक सुनहरे कार्ड में लिखा था, 'बसन्ती को–मल्लिका' ।' अहल्या ने

देखा साड़ी डिब्बे में पैक करने से पहले पापा ने उसकी दृष्टि बचाकर कार्ड निकालकर जेब में रख लिया । वह मन ही मन समझ गई कि पापा अपने समाज में मौसी का अज्ञात परिचय ही देना चाहते हैं ।

दो दिन की लम्बी यात्रा के बाद अहल्या काठगोदाम पहुंची तो शरीर में स्वयं ही अनजानी फुर्ती-सी आ गई । काठगोदाम से कर्नल की टैक्सी धीरे-धीरे पहाड़ की घुमावदार चढ़ाई को चीरती चढ़ने लगी । कांच से आती ठंडी हवा के थपेड़ों से अहल्या के बाल इधर-उधर उड़ने लगे । कैसा विचित्र गिरि-वैभव था, कैसी अपूर्व सुषमा। दूर-दूर तक आकाश को घेरे बादलों के टुकड़े धीर-मन्थर गति से बहे जा रहे थे, कहीं पर धूमिल रिबन-सी छोटी जलधारा दूर-दूर तक जाकर वृक्षों के झुरमुट में खो गई थी। गरम पानी के मोटर स्टेशन के पास जाकर उनकी टैक्सी रुकी और कई चीथड़ों में लिपटे, गोरे सरल मुस्कराते वालकों ने कर्नल की टैक्सी को घेर लिया : 'स्ट्राबेरी लीजिए साहब, वेरी चीप बास्केट हुजूर, ओनली वन रूपी, वेरी स्वीट ।' रसीली नारंगी नन्हीं स्ट्राबेरी का एक दोना लेकर अहल्या चूसने लगी : 'यहां का खाना प्रसिद्ध है बेटी, यहां स्ट्राबेरी नहीं, पूड़ियां खाई जाती हैं, स्ट्राबेरी तो विदेशी टूरिस्टों के लिए है, हम पहाड़ियों के लिए नहीं, आओ तुम्हें यहां की प्रसिद्ध तिवाड़ी की दुकान पर ले चलें–'

पानी और कीचड़ से पैर बचाती अहल्या, साड़ी थोड़ा उठाकर उतरी, पास की एक पत्थर के गोमुख से छलछल कर शीतल जलधार को अंजुली में भरकर, एक नई दुल्हन अपनी नई नथ को भिगोती, पानी पी रही थी। एक क्लीनर वहीं पर अपनी बस को पानी से धोता उन फूहड़ यात्रियों को कोस रहा था, जिन्होंने उलटियां करके उसकी सुन्दरी बस की काया क्षत-विक्षत कर डाली थी । तिवाड़ी होटल में पहुंचकर वह इधर-उधर देखने लगी कि किधर वैटें । प्रत्येक जर्जर मेज़ पर पूड़ियों के टुकड़े और पीले रायते की जूठन पड़ी थी । एक ओर कई यात्री कचर-कचर कर खाते, गर्म पूड़ियों का तकाज़ा लगा रहे थे। दो-तीन गन्दे से छोकरे भाग-भागकर परिवेशन में लगे थे । अहल्या को सहसा पापा पर झुंझलाहट हो आई, छिः-छिः, यह भी भला कोई जगह थी खाने के लिए। कलकत्ते के साउथ क्लब, फर्पो और ग्रैण्ड होटल की अभ्यस्त अहल्या ने चट से नाक पर रूमाल रखकर वक्र दृष्टि से पापा की ओर देखा, पर कर्नल तब तक बड़े इतमिनान से एक कोने की मेज़ पर पैर जमा चुका था । अहल्या साड़ी समेटकर बड़ी अनिच्छा से बैठी ही थी कि एक स्वस्थ सुन्दर गोरा-सा लड़का, अपनी कर्णचुम्बी मुस्कान से, उसकी समस्त झुंझलाहट क्षणभर में अपहरण कर, स्वयं 'मेनू' के रूप में उपस्थित हो गया : 'क्या लाऊं मेम साहब, पूड़ी है, दही, चटनी, रायता, आलू-पालक सबकुछ तैयार है।' 'दो थाल जल्दी लाओ लड़के और पूड़ियां गर्म लाना, समझे?' कर्नल ने सिगार की राख झाड़कर कहा : 'बहुत अच्छा सरकार' । लड़का फुर्ती से भागता, बड़े अन्दाज़ से दो हाथों में दोनों थाल सजाए, मिनटों में लौट आया। खाने की सुगन्ध और पहाड़ी रायते की राई ने अहल्या की परिमार्जित मेमसाहबी रुचि को भी जीत लिया । ठीक ही तो कह रहे थे पापा, ऐसा स्वादिष्ट भोजन उसने बड़े-बड़े दामी होटलों में भी नहीं खाया था। उस पर जो बिल आया, उतना तो वह प्राय: अपने होटल के बेयरा को

ही टिप करती थी। खाना खाने के बाद जब उनकी टैक्सी अल्मोड़ा की ओर चली तो कर्नल ने सिगार सुलगाकर अहल्या से अंग्रेज़ी में कहा : 'अहल्या, मैं तुमसे पहले भी कह चुका हूं कि तुम्हें अपनी इस पहाड़ यात्रा में कई बातों के लिए अपने को तैयार करना होगा । पहाड़ी होकर भी हमारा रहन-सहन, उठक-बैठक एक भिन्न वर्ग से ही रही है । मैं कह नहीं सकता कि पहाड़ अब कितना बदल गया है, पर आम तौर पर लोगों की प्रकृति नहीं बदला करती; फिर खासकर तुम्हारी ताई ज़रा तेज मिज़ाज की हैं । मैं जानता हूं कि तुम्हें किसी के शासन में रहने का अभ्यास नहीं, पर मुझे पूरा विश्वास है कि तुम कठिन से कठिन परिस्थितियों से भी जूझ लोगी। अगर तुम्हारा जी न लगा तो हम शादी से निबटकर ही वापस चल देंगे, है न?'

पर अहल्या तो पापा की बातें एक कान से सुनकर दूसरे से निकाल रही थी । रानीखेत की हरीतिमा से गौरवपूर्ण गौफ कोर्स, छोटा-सा बाज़ार और लाल-लाल छत के तस्वीर-से बंगले सबको वह मुग्ध होकर आंखों ही आंखों में पी रही थी । कैसा बहुरूपिया कांचनशृंग था यह । कहीं के मोड़ उसे शिलांग की धानखेती का स्मरण दिला रहे थे, कहीं पर गौहाटी की-सी परिचित पर्वत-श्रेणियां थीं और कहीं सुई-सी पतली पगडंडियों पर, कमर में काला लहंगा खोंसे, सिर पर घास के गुरुतर बोझ के नीचे दबी कुमाऊं की गठे शरीर की लावण्यमयी घसियारिनें । ऐसी सुन्दर गरीयसी जन्मभूमि को छोड़कर वह आज तक बाहर रही, यह कैसी विडम्बना थी। चुंगी के पास आकर टैक्सी खचाक से रुक गई, सामने अल्मोड़ा अपने पूरे वैभव के साथ चमक रहा था । 'अब हम बीस मिनट में ही पहुंच जाएंगे बेटी, बहुत थक गई हो क्या ?'

अहल्या के क्लान्त चेहरे पर सरस मुस्कान झलक उठी : 'नहीं पापा, कितना सुन्दर है यह पहाड़! मेरा तो जी कर रहा है अब लौट के कलकत्ता जाऊं ही नहीं ।' स्नेह से पुत्री की ओर देखकर कर्नल ने हंसकर कहा : 'पगली, अभी तू अल्मोड़ा पहुंची ही कहां है । वहां पहुंचकर अक्सर इरादे बदल डालते हैं। '

अाठ

पुत्री को लेकर कर्नल जब अपनी चिरपुरातन देहरी पर खड़ा हुआ तो उसका गला भर आया। शाम के धुंधलके में चारों ओर से घिरे गिरिशिखर ऊंचे झूमते वृक्षों के झुरमुट से झिलमिलाती रोशनियां देखकर उनकी पिछली ज़िन्दगी का पर्दा सहसा उठ गया । अपने आने की सूचना वे समय पर नहीं भेज सके थे, इसी से उनके गृह के बुलन्द फाटक पर कोई भी उनकी अभ्यर्थना के लिए नहीं खड़ा था । कुली सामान लेकर आंगन में पहुंचा ही था कि दद्दा ने देख लिया। हाथ का अखबार फेंककर वे दौड़कर कर्नल से लिपट गए और वहीं से चिल्लाने लगे : 'अरी सुनती हो, अपना शिबिया आ गया है, अरे भई बहू, शंख तो बजाओ ।' सोलह वर्ष बाद बचपन के साथी मिल रहे थे, दोनों की आंखें गीली हो आईं : 'हद कर दी तूने, एक तार तो कर दिया होता, मैंने तो आशा ही छोड़ दी थी, और यह तेरी लड़की है? वाह-वाह, एकदम तेरा नक्शा है, पितृमुखी कन्या सुखी, बड़ी भाग्यवान बेटी होगी हमारी, चलो-चलो, भीतर चलें ।' अहल्या ने झुककर ताऊ के पैर छुए और सहमकर उनके पीछे-पीछे चल दी । ऊपर के बन्द पहाड़ी झरोखों से कई जोड़ी आंखों की तांक-झांक चल रही थी। पहाड़ी गहनगुहा द्वारों से होकर वह भीतर जाते-जाते कई बार संकरे द्वारों से टकराकर माथा सहलाकर बोली : 'ओह, कैसे छोटे-छोटे दरवाज़े हैं पापा ।'

'ये इसीलिए बनाए गए हैं बेटी, कि घर में आई हमारी अंग्रेज़ी पढ़ी-लिखी बहू-बेटियां भी सिर झुकाकर चलना सीख सकें ।' पुरुष कंठ स्वर सुनकर अहल्या चौंकी, सांवली ताई विराट चपटे-चौड़े मुंह पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान बिखेरती खड़ी थी। ओह इन्हीं के लिए पापा उसे मार्ग भर लेक्चर पिलाते आए थे । झुककर अहल्या ने उनके पैर छुए और एक ही दृष्टि में बिना किसी शस्त्र के ही सुभद्रा ने उसे चीर-फाड़कर रख दिया । सुभद्रा का किसी जंगी जहाज़-सा विराट वपु द्वार को प्रायः घेरे ही खड़ा था । गोल-मटोल चेहरे पर बड़ी-बड़ी आंखों में संसार के प्रत्येक प्राणी के लिए चुनौती भरी थी । तीन-तीन एम.ए. पास बहुओं को वह लट्टू-सा नचाती थी, पति और तीनों पुत्रों की अफसरी, उसकी चौड़ी मुट्ठी में बन्द थी, वही घर की हाई कमांड थी ।

'क्यों लला, हमारी बंगाली देवरानी को नहीं लाए? फट से सुभद्रा ने पूछा और उसके प्रश्न का करारा चांटा पड़ते ही कर्नल पुत्री के सामने कटकर रह गया । दद्दा बेचारे, जेब से किसी बिल को निकालकर देखने का उपक्रम करने लगे। 'हद है बोज्यू, ज़रा भी नहीं बदलीं तुम तो।' खिसियानी हंसी हंसकर कर्नल ने मज़ाक में ही बात को टालने की चेष्टा की : 'किससे सुन आती हो दुनिया-भर की ऊल-जलूल बातें!'

'सुनूंगी किससे लल्ला, घर की लछमी को तुम बहा आए, सुख ही होता तो बेचारी आज इस खुशी के दिन सर मुंडाए संडमुसंड जोगियों के पीछे थोड़े ही भागती।' आंचल

आंखों पर रखकर सुभद्रा रोने का उपक्रम करने लगी । अहल्या ने देखा, आंखों के कोर सूखे ही थे, अकेले कंठस्वर के नकली उतार-चढ़ाव से ही रोने की भूमिका बांधी जा रही थी।

'जाओ जी भुवन की अम्मा, चाय-वाय बनाकर लाओ, बेचारा थका-मांदा आया है और तुम रोना लेकर बैठ गईं । बहुओं को बुलाकर इसके पैरों पर नारियल तो रखवा देतीं, बहुओं को आज ही तो देख रहा है ।'

सुभद्रा ने आंखें पोंछकर वहीं से बिगुल बजा दिया–अपनी विराट देह को उठाने में उसे बड़ा कष्ट होता था, उस पर वह निरन्तर आह-ऊंह ऐसे लगाती रहती जैसे संसार-भर की आधि-व्याधियां उसे ही घेरकर बैठी हों।

'ये अपने भुवन की बहू है, ज्योतिर्विदजी की लड़की है, एम.ए. पास है, भुवन तो बिड़ला जूट मिल में लगा है । लल्ला आठ सौ पावे है ।' वह एक-एक कर पुत्रों के 'क्रेडेन्शियल्स' देती, बहुओं का परिचय कराती जा रही थी । 'यह लल्ला रघुवा की बहू है, इसने भी एम.ए. किया है, बर्मा के मनमोहनजी की बेटी है, रघुवा तो डॉक्टर है तुम्हें पता है, आजकल अमेरिका गया है, यह है तुम्हारी छोटी बहू, सुरिया तो हमारा आई.ए.एस. है । इसी से बहू भी डब्बल एम.ए. ढूंढी,' स्वर अहंकार से दीप्त हो उठा। बहू को डब्बल एम.ए. में जो विशेष परिश्रम करना पड़ा था उसका पूरा आभास सुभद्रा ने 'डब्बल' में पचासों ब का प्रयोग एकसाथ कर स्पष्ट कर दिया । एक-एक कर तीनों बहुएं नए ससुर के पैरों पर तीन नारियल रख गई । दुबली-पतली-सी बड़ी बहू रमा, सास के ही से गोल-मोल शरीर की मंझली शान्ता, और सबसे छोटी तुहिना, जो अहल्या की ही समवयसिनी लग रही थी। । बार-बार उसके माथे से आंचल गिरा जा रहा था; लगता था उसे इस प्रकार छोटा-सा घूंघट निकालने का अभ्यास नहीं है । सुभद्रा बहुओं का विधिवत् परिचय देकर तटस्थ हो ही रही थी कि भुवन और सुरेश ने एकसाथ आकर चाचा को प्रणाम किया । दोनों की सुदर्शन जोड़ी को सुभद्रा ने ऐसे गर्व से देखा जैसे कोई दक्ष मूर्तिकार अपनी कुशलता से गढ़ी हुई मूर्तियों को देखता है : 'इन दोनों को तो तुमने गायत्री मन्त्र दिया था लल्ला, और फिर इनके ब्याह में कहां आए तुम ।' स्वर का उपालम्भ स्पष्ट कर सुभद्रा ने अहल्या की ओर फिर एक बार तीखी दृष्टि डाली : 'अब तो यह भी ब्याह को तैयार हो गई । वैसे अपनी वसुली से छह महीने ही तो छोटी है, पर हमारी वसुली को तो न जाने क्या हो गया है । मरी दिन पर दिन ज़मीन पर ही गढ़ी जावे है। अरी वसुली, कहां मर गई जाने । ऐसी शरमीली है लल्ला, क्या बताऊं, न जाने इस छोरी की सासरे में कैसे निभेगी !'

बसन्ती खिड़की से शानदार ठसकीले चाचा और उनकी भड़कीली पुत्री को देख चुकी थी, इसी से वह सहमकर पिछली कोठरी में ही दुबकी बैठी थी । मां को वह जानती थी, एक बार हांक लगाकर चुप बैठनेवाली वह नहीं थी । उसके न जाने पर वह मार हांकों के नाक में दम कर देगी । वह दबे पैरों से आकर, चाचा के पैर छू सुभद्रा के पास ही बैठ गई । 'जा, अहल्या को अपने कमरे में ले जा, हाथ-मुंह धुला देना, मैं चाय बनाके भेजती हूं।' वह कांखती- कराहती उठकर चौके की ओर चली और उसके पीछे-पीछे तीनों बहुएं भी चल दीं। । कर्नल को लेकर, ताऊ मर्दाने दीवानखाने की ओर चले गए तो वह बसंती का बंसी-सा

मीठा स्वर सुनकर चौंकी : 'पापा मेरे कमरे में चलेंगी क्या?' अहल्या उसके पीछे-पीछे कई छोटे-बड़े कमरों को पार कर एक विचित्र आकार के छोटे-से कमरे में पहुंची। । बाहर से छोटी-सी दिखनेवाली इस हवेली में कितने सारे कोष्ठ और प्रकोष्ठ थे । हर कमरे की छतें नीची और ढालू थीं, जिनसे कमरों में आश्चर्यजनक गर्मी थी। 'बैठिए न' बसन्ती ने एक मोढ़ा खींच दिया । अहल्या, प्रकाशहीन कमरे की अव्यवस्था देखकर गुमसुम खड़ी थी, तटस्थ होकर हंसने की चेष्टा कर बोली : 'आपको बड़ा कष्ट हुआ ।' 'हाय राम कैसा कष्ट । कष्ट तो आपको होगा–कैसा कूड़ा-करकट भरा है!' क्षमा मांगने के-से स्वर में बसन्ती ने कहा और एक-एक कर ज़मीन पर फैली चीज़ों को बटोरकर एक ओर धरने लगी। एक ओर कई, नई रंगी पीली धोतियां सूख रही थीं । उन पर लाल-लाल बुंदकियां छापी गई थीं जिनका गीला गुलेनार रंग छूटकर दरी पर भी लग गया था । दूसरी ओर एक लम्बे कपड़े पर गोल-गोल पूड़ियां-सी बेलकर सुखा दी गई थीं और उन पर मक्खियों का जत्था विश्राम कर रहा था। ।

'कल असल में रंग्वाली थी न, इसी से कमरा इतना गन्दा हो गया।' बसन्ती ने कमरे की गन्दगी की कैफियत-सी दी ।

'रंग्वाली क्या कोई त्यौहार होता है?' अहल्या ने भोलेपन से पूछा और बसन्ती खिल से हंस पड़ी । अहल्या उसके लाल-लाल अधरपुट से झांकते अनारदाने-सी दन्त-पंक्ति को मुग्ध होकर देखती रही । कितनी भोली-सी सूरत थी और कैसी मीठी दबी आवाज़ की हंसी थी।

'हाय राम, रंग्वाली भी नहीं जानती? शादी से चार दिन पहले' कहकर वह सहसा सकुचाकर चुप रह गई। एकाएक उसे स्मरण हो आया कि वह तीन दिन बाद होनेवाले अपने ही विवाह की भूमिका बांध रही थी। उसका एकाएक इस तरह सकुचाकर चुप रह जाना अहल्या के लिए एक सर्वथा नवीन अनुभव था। उसकी कई सखियों के विवाह हो चुके थे नहीदा अहमद जो विवाह के पहले ही दिन अहल्या को साथ लेकर भावी पति की सूट ट्राई करने स्वयं गई थी; मनीषा दे जिसने विवाह से एक सप्ताह पूर्व, भावी श्वसुरगृह में किसी विदेशी राजदूत के सम्मान में आयोजित भोज में भरतनाट्यम् नृत्य प्रस्तुत किया था–भावी विवाह के नाम से ही ऐसी लज्जा की छुई-मुई बनकर लाल पड़ जाना वह आज ही देख रही थी । वह हंसकर कुछ पूछने ही को थी कि रेशमी साड़ी सर्र-फर्र करती छोटी भाभी तुहिना चाय के दो गिलास लेकर आ गई । तुहिना, प्रयाग विश्वविद्यालय का डन मेडल जीत चुकी थी, अपनी विद्या और सौन्दर्य की धाक से आज तक वही घर की देवरानी-जिठानियों में सबसे ऊंचा आसन ग्रहण करती आई थी, किन्तु आज अहल्या को देखकर वह भी मन ही मन लोहा मान गई । क्या हेयर स्टाइल था, एकदम ही फ्रैंच बुफो । उस पर तीखी अहंकारदीप्त दृष्टि। कैसा आश्चर्य है एक सुदर्शन पुरुष दूसरे सुदर्शन पुरुष को प्रशंसा का अर्ध्य दे सकता है, किन्तु सुन्दरी नारी कभी दूसरी नारी के सौन्दर्य की महत्ता स्वीकार करने को तत्पर नहीं होती। पास आकर तुहिना ने, मन ही मन अहल्या के त्रुटिरहित सौन्दर्य में मीन-मेष निकाल लिए । रंग तो गोरा था, पर नाक कितनी छोटी थी। माथा भी कोई ऐसा खास चौड़ा नहीं था, एक-दो ही बच्चों की मां बनने पर पीछे का हिस्सा बहुत भारी न हो

गया तो तुहिना अपना नाम बदल देगी। अभी से ही शरीर के अनुपात में पिछला हिस्सा भारी लगता था । अलसगमना अहल्या के सौन्दर्य में वह किसी प्रकार का आकर्षण नहीं पा रही थी, बाल भी इतने लम्बे नहीं हो सकते, अवश्य ही नाइलोन के बाल लगाए हैं ।

'आप लोग चाय लीजिए, मैं नाश्ता ले आऊं,' कहकर वह नाश्ता लेने चली गई । जब वह नाश्ता लेकर लौटी तो बसन्ती काफी हद तक कमरा साफ कर चुकी थी और हाथ पोंछकर बैठने ही जा रही थी : 'आइए न बोज्यू, आप भी बैठिए न ।' उसने एक आसन खींचकर कहा। 'बैठूं कहां से जी, भंडार खुला पड़ा है। उधर बरेलीवाली मामीजी भी आ गई हैं, उनका सामान लगवाना है। आप इसी कमरे में सो सकेंगी नहीं तो अम्मावाले कमरे में पलंग बिछवा दूं?' उसने अहल्या से पूछा, हथौड़े की चोट की तरह उसका एक-एक शब्द, एक कठोर ठकठक से निकलते जा रहे थे।

'नहीं-नहीं, पलंग का क्या होगा, इतना काम आपका वैसे ही बढ़ा है, मैं इन्हीं के साथ सो रहूंगी' -अहल्या ने बड़ी विनम्र वाणी में कहा और तुहिना चली गई । एकाएक उसे पापा पर बड़ा गुस्सा आ गया । हद है, ऐसे कबूतरखाने में डालकर एक बार उसे देखने भी नहीं आए । न ढंग का गुसलखाना, न एकान्त कमरा, उस पर ताई तो पूरा ऐटम बम थी। कैसे कस-कसकर ताने मार रही थी और वह छोटी भाभी तुहिना कैसे 'एक्सेंट' बोलने की चेष्टा कर रही थी, जैसे अभी केम्ब्रिज से चली आ रही हो। 'बहुत घबरा रही हैं न पहाड़ आकर? पर कल तक आपकी तबीयत बहल जाएगी–बहुत सारे मेहमान आए हैं न । इसी से पूरा घर 'अपसेट' हुआ पड़ा है ।' बसन्ती ने जैसे उसकी मन की उदासी भांप ली।

'नहीं तो,' अहल्या ने अचकचाकर हंसने का उपक्रम किया : 'वाह भला तबीयत क्यों घबड़ाएगी, मैं तो अपनी ही ज़िद्द से पहाड़ आई हूं, पर कितनी ठंड है यहां, हवा हड्डियों में घुसी जा रही है ।' अहल्या ने शाल को गुड़ीमुड़ी कर गर्दन लपेट ली ।

'अभी एक कष्ट आपको और सहना होगा ।' बड़ी ही मीठी हंसी के बीच बसन्ती ने उसे सूचना दी। ।

'कैसा कष्ट ?

'अभी बहुत सारी मुहल्ले की औरतें ढोलक-मंजीरा लेकर इसी कमरे में आ धमकेंगी, रोज यहीं गाना-बजाना होता है, अम्मा के कमरे से मर्दों को भी आना-जाना पड़ता है। वैसे भी आजकल सारे अत्याचार मेरे ही निरीह कमरे पर होते हैं, आपको ऐसी धींगामस्ती का अभ्यास नहीं रहा होगा, इसी से बता रही हूं–ये लीजिए, आ भी गई, लगता है ।'

सचमुच ही बहुत सारी लम्बी, मोटी, नाटी-दुबली, कानी-भेंड़ी, सुन्दर और कदर्य औरतों का जत्थे का जत्था भीतर धंस आया । सब पास-पड़ोस की स्त्रियां, दूर के रिश्ते की चाची-ताइयां सब आज समय से कुछ पूर्व ही शकुन-आंखर गाने धमक गई थीं । कुछ ने अहल्या को आते देख लिया था । दूर से ठीक दिखी नहीं थी, इसी से नज़दीक से देखने का चाव था । कुछ सुभद्रा के साहबी देवर और बंगाली देवरानी को देखने का लोभ संवरण नहीं कर पाई थीं। उनकी ऊंचे स्वर की पहाड़ी फुसफुसाहट में बंगाली देवरानी शब्द का बार-बार उच्चारण सुनकर अहल्या लज्जा से लाल पड़ गई । उसके जी में आ रहा था कि वह उन

सब पहाड़िनों के मुंड एक-दूसरे से भिड़ा दे। उनकी सुई-सी तीखी नज़र अहल्या को बेरहमी से इंजेक्शन देने लगी, कोई उसके बिना बांह के ब्लाउज़ की बखिया उधेड़ रही थी, कोई उसकी सर्वथा नवीन केश-सज्जा को, दूसरी को कोंच-कोंचकर दिखा रही थी। धीरे-धीरे ढोलक की धमाधम थपेड़ों के साथ, बसन्ती के भावी वर के कुलगोत्र का परिचय देती वे सुहाग और घोड़ियां गाने लगीं, कभी चम्पे की कली-सी बन्नी के लिए एकदम ही अयोग्य बन्ने के घोर श्यामवर्ण का उपहास उड़ाती और कभी समधी को गाय के गोठ में, भड़वा बनाकर बांधने की कामना करती, एक से एक गालियां गातीं । बड़ी देर तक गा-बजाकर सब चली गई तो तुहिना खाने के लिए बुलाने आ गई : 'आप चौके में ही खाएंगी या यहीं ला दूं? बीबीजी को तो यहीं खाना होगा, आपको वहां खाने में असुविधा हो तो यहीं ला दूं ।'

तुहिना ने ऐसे लहजे में कहा जैसे थाली लानी ही पड़ी तो वह ला देगी, पर उसे विशेष सुविधा नहीं होगी।

'नहीं, ऐसी भी वया बात है, मैं वहीं चलती हूं।' कहकर अहल्या उठ गई । चौके में कितनी ही अपरिचित महिलाओं के बीच बैठकर उससे खाया भी नहीं गया । किसी प्रकार उल्टे-सीधे दो-चार कौर निगलकर वह फिर बसन्ती के कमरे में आई तो वही छोटा-सा कमरा उसे सगे आत्मीय-सा लगा । कमरे की सारी फैली चीजें बटोरकर बसन्ती तरतीब से सजा चुकी थी । एक धुंधले पावर के बल्ब की नीली रोशनी से छोटा कमरा खिल-सा गया था । पलंग पर साफ चादर और रज़ाई को खींच-खांचकर, उसकी सिलवटों को यथासाध्य दूर कर, बसन्ती खा-पीकर उसी का इन्तज़ार कर रही थी ।

'मैं तो सोच रही हूं, कि आप मेरे पलंग पर सो जाइए, मैं अम्मा की पलंग पर सो जाऊंगी । आपको मेरे साथ सोने में बड़ी असुविधा होगी, मैं तो रात-भर हाथ-पैर मारती रहती हूं।' फिर वह अपनी मीठी-सी हंसी हंसकर लजा गई ।

'अरे मुझसे आप-आप क्यों कहती हो, रही हाथ-पैर मारने की बात–मैं तो पूरे बिस्तर में मछली की तरह तैरती हूं–चलो, आज रात कम्पीटीशन ही रहेगा ।' अहल्या ने शाल उतारकर तिपाई पर डाल दिया और साड़ी को उतार एक कोने में फेंककर धम्म से पलंग पर चढ़ रज़ाई खींच ली । 'ओ–बाप रे बाप–बला की सर्दी है,' दांत किटकिटाकर उसने बड़ी आत्मीयता से बसन्ती के दोनों हाथ पकड़कर मुट्ठी में बन्द कर लिए। कुछ ही घंटों में भूले-बिसरे रक्त की डोर ने दोनों बहनों को बांध लिया था । 'साड़ी पहनकर तो मुझसे सोया नहीं जाता भाई, नाइटी पापा के सूटकेस में बन्द है, तुम क्या इतनी लम्बी साड़ी लपेटकर ही सोती हो?'

सोती तो बसन्ती पेटीकोट ब्लाउज़ ही में थी, पर अपनी कलकत्ते की बहन के लेस लगे बोस्की के पेटीकोट की महिमा के सामने, अपने घर के सिले और निरन्तर घर ही पर धुले पांडुजीर्ण पेटीकोट की पताका फहराने का दुःसाहस उसे नहीं हुआ । कैसी सुन्दर सुगन्ध आ रही थी अहल्या के शरीर से — क्या चन्दन लगाकर नहाती होगी? उसे तो तीन दिन से आटे और हल्दी का उबटन लगा-लगाकर अम्मा ने हुलिया ही बिगाड़ दिया था । बड़े संकोच से वह खाट की पाटी पर ही सिकुड़-सिकुड़कर समाई जा रही थी कि बड़े स्नेह से

अहल्या उसे खींचकर पास ले आई, 'नज़दीक आओ भई, मैं तो ठंड से मरी जा रही हूं– स्वेटर भी सारे पापा के सूटकेस में रह गए ।'

'ठंड लग रही है क्या बहुत? रुको, मैं ले आती हूं। पर हाय राम, मेरे भी तो सब कपड़े छोटी भाभी के कमरे में धरे रह गए, लो यह बिलकुल नया है — पहनोगी?' उसने पास ही पड़े एक मर्दाने स्वेटर को उठा लिया ।

अहल्या को हिचकिचाते देखकर उसने हंसकर कहा : 'बिलकुल नया है अहल्या, आज ही तो मैंने पट्टियां बिनकर खतम किया था ।'

'ओह, क्या अपने मियांजी के लिए तो नहीं बिना है तुमने?' 'नहीं जी,' बसन्ती ने फिर लाजभीनी हंसी से अहल्या को बांध लिया : 'यह तो राजूदा का है, दिनभर मेरे पीछे पड़े थे कि जल्दी खतम कर, किसी दावत में जाना है और जब तक खतम किया तब तक आप चल दिए। पहन लो अहल्या, डबल निटिंग का है, खूब गरम है ।' एक प्रकार से ज़ोर-ज़बरदस्ती से ही बसन्ती ने स्वेटर उसे पहना दिया, किसी के वृषभं स्कन्धों के लिए बिना गया वह स्वेटर, उस पर कागभगोड़े के ढीले अल्लमखल्लम कोट की तरह झूल उठा, और उस विचित्र परिधान को देखकर दोनों ही ठठाकर हंस पड़ीं, पर स्वेटर सचमुच ही खूब गर्म था। सिर तक रज़ाई खींचकर अहल्या, बसन्ती से बातें करती, रात के बारह बजे तक उसके विषय में बहुत कुछ जान चुकी थी । बड़ी भाभी रमा घर की सबसे शान्त बहू थी । मंझली शान्ता भाभी का मायका काशीपुर में था, उसके पिता बर्मा में रूबी का व्यापार करते थे । जब वे नई-नई ब्याहकर आई तो उन्हें ठीक से पहाड़ी बोली भी नहीं आती थी । और सबसे छोटी भाभी तुहिना तो अम्मा से भी अंग्रेज़ी बोलने लगी थीं । बसन्ती का दूल्हा, लखनऊ में हाउस-सर्जन था । दूल्हे की मां ने बसन्ती को किसी शादी में देखकर पसन्द किया था । बाद में उसकी फोटो भी मंगवाई गई थी। इसके बाद दस ही दिन में उसकी चट मंगनी पट ब्याह हो गया था । बड़ी देर तक बसन्ती बोलती गई और एकाएक अहल्या का हुंकारा बन्द हो गया, बात सुनते-सुनते-वह न जाने कब बेसुध होकर नींद में डूब गई थी ।

सुबह जब अहल्या की आंख खुली तो, कहीं गिरजे के मीठे-मीठे घंटे बज रहे थे, बसन्ती उठकर न जाने कहां चली गई थी । अहल्या ने भी उठने की चेष्टा की और खिड़की से झांककर देखा, उजाला अभी ठीक से हुआ ही नहीं था । सड़क से गले की टन-टन मीठी-मीठी घंटियां बजाता, एक तिब्बती लामा भेड़ों को हंकाए लिए जा रहा था। पास के नलों में कुछ ईसाइनें कनस्टरों में पानी भर रही थीं और दूर कहीं मुर्गा बांग दे रहा था। अहल्या फिर लेट गई। भेड़ों की घंटियों की छुनछुन और गिरजे के मीठे घंटों के संगीत ने उसे लोरियां-सी देकर फिर सुला दिया । पास लेटी बसन्ती के उठ जाने से उसे फिर ठंड लगने लगी थी । खिड़की खुली थी पर मारे ठंड के रज़ाई से हाथ निकालकर उसे बन्द करने का साहस भी अहल्या को नहीं हो पाया । रज़ाई को सिर तक खींचकर वह निश्चिन्त होकर सो गई । आंख लगी ही थी कि किसी ने उसे पकड़कर ऐसे झकझोर दिया जैसे कोई फलों से लदे पेड़ को फल गिराने के लिए हिला रहा हो।

'अरी ओ वसुली, शादी क्या ठहरी कि साली घोड़ा बेचकर सोती है । अच्छा और जनाब मेरा स्वेटर पहनकर बड़ी बेशर्मी से आठ बजे तक खर्राटे ले रही हैं, रुक जा —' कहकर झकोरनेवाला वह अपरिचित व्यक्ति, अहल्या के चेहरे पर नज़र पड़ते ही स्वयं रुक गया और पलक मारते ही एक छलांग लगाकर, इससे पहले कि अहल्या उसे ठीक से देख पाती, गायब हो गया । यह सबकुछ ही मिनटों में हो गया और अहल्या बुत-सी बैठी ही रही; गहरी नींद से झकझोरकर उठाया गया व्यक्ति, जिस अस्पष्ट यथार्थ के धुंधलके में आंखें खोलता है उसे कुछ देर तक वह ग्रहण नहीं कर पाता । बेचारी एक तो ऐसी बेरहमी से कभी झकझोरी नहीं गई थी, अभी तक कंधे दुख रहे थे। जब थोड़ी देर में उसकी समझ में आया कि वह जिस स्वेटर का अनाधिकार उपयोग कर सोई थी, उसी का स्वामी, उसे झकझोर गया था तो उसके सारे चेहरे पर रक्त चढ़ गया । क्या सोचता होगा वह । न जान, न पहचान और एकदम नया स्वेटर चढ़ाकर वह सो रही थी, उस पर गुलाबी केम्ब्रिक का बिना बांहों के ब्लाउज़ के गले के बटन खोलकर ही वह सो रही थी–छि: छि:, किसी अपरिचित पुरुष के सामने उसका कैसा विचित्र हुलिया दिख गया था। स्वेटर उतारकर उसने बड़े यत्न से तहाकर सिरहाने की मेज़ पर रख दिया और अटैची में पड़े ड्रेसिंग गाउन को डालकर बसन्ती की प्रतीक्षा में बैठ गई । आते ही उसे बतलाएगी कि उसकी ज़िद के कारण आज उसकी खूब गत बन गई । बार-बार वह सोचकर कटी जा रही थी । एक बार फिर बटन खोलकर वह उसी पोज़ में बैठ गई । हाथ का आईना लेकर उसने अपने उस अधउघड़े शरीर को देखने की चेष्टा की और दोनों गाल बीरबहूटी हो गए ।

उस व्यक्ति को तो वह नहीं देख पाई थी किन्तु उसने सचमुच ही उसे अच्छी तरह देख लिया था । बसन्ती समझकर झकझोरने के बाद उसकी दृष्टि जब चेहरे पर पड़ी तो बसन्ती के स्थान पर विदेशी चलचित्र की-सी एक द्युतिमान तारिका को देखकर वह अचकचाकर रह गया था । कर्नल के आने के बहुत पहले ही वह अपने एक मित्र के यहां दावत पर चला गया था और जब लौटा तो ग्यारह बज चुके थे; चुपचाप दीवानखाने में मेहमानों की खाटों के बीच अपनी खटिया ढूंढ़कर सो गया था। सुबह उठा तो उसे बड़ी ठंड लगी, वसुली ने स्वेटर बिनकर देने का कल ही वायदा किया था, क्यों न जाकर अभी तिकतिक लगा दे, फिर तो उसे औरतों की भीड़ में ढूंढ़ना मुश्किल होगा। राजेन्द्र की अपनी कोई बहन नहीं थी इसी से बसन्ती पर उसका विशेष स्नेह था, प्रायः ही उसकी चोटी खींचकर धौल-धप्पे लगाते-लगाते राजू की ऐसी आदत पड़ गई थी कि बिना उसे छेड़े-छाड़े बात ही नहीं कर पाता था । आज भी उसी स्नेह के अधिकार से वह हवा की तरह उससे लड़ने पहुंच गया था, पर वहां कोई और भी सो सकती है, यह बात उसके ध्यान ही में नहीं आई ।

बसन्ती गुसलखाने से लौटी तो अहल्या कुर्सी पर बैठी थी : 'अरे तुमने तो बिस्तर भी लगा दिया । नींद आई अहल्या? कहीं नींद में मैंने पूरी रज़ाई तो नहीं छीन ली?' एकाएक रज़ाई छीननेवाले उस व्यक्ति का स्मरण करते ही अहल्या फिर लाल पड़ गई, पर कैसा आश्चर्य था कि वह अपनी दुर्दशा का उल्लेख नहीं कर सकी : 'नहीं तो, मैं खूब सोई–तुम

कहां चली गई थीं?' 'गुसलखाने गई थी, चलो तुम्हें भी ले चलूं–थोड़ी देर में तो वहां क्यू लग जाएगा ।'

ब्रश पेस्ट लेकर अहल्या उसके पीछे-पीछे चली तो बरामदे में खड़ी ताई ने देख लिया : 'ओरे बाप, तू तो यह आर्थर पन्त की मेम का-सा 'गौन' पहने है री'–मुख में आंचल धरकर वह हंसती-हंसती बोली ।

'तो क्या हो गया अम्मा, छोटी भाभी भी तो ड्रेसिंग गाउन पहनती हैं,' बसन्ती ने अहल्या पर अपना कवच रखकर कहा । आधुनिका, छोटी भाभी का प्रत्येक दोष सुभद्रा की आंखों में सामान्य ही रहता; उसके पिता बहुत बड़े अफसर थे और पिता के महिमामय पद की ओट लेकर वह कुमाऊं की प्रत्येक परम्परा को जब चाहे, पैरों तले कुचल सकती थी । अपने कमरे में वह स्टोव रखकर अंडा फेंट ऑमलेट बनाकर खाती थी, सुभद्रा जान-बूझकर भी मक्खी निगल लेती, प्रायः ही वह सिर उघाड़े पति के साथ घूमने भी निकल जाती और जब उसकी बड़ी जिठानी चौके में बैठकर अतिथियों के चींटीदल के लिए पचास-पचास गिलास चाय बनाकर भेजती, वह अपने कमरे में बैठी अंग्रेज़ी किताबों से स्वेटर बुनती । मायके से वह प्रचुर मात्रा में दहेज लाई थी, इसी से सास उसकी नादिरशाही को खुशी-खुशी झेल लेती थी । बड़ी बहू रमा वास्तव में रमा थी । उसके पिता के मध्यवर्गीय परिवार ने उसके श्वसुर-गृह को, केवल पुत्री के शान्त स्वभाव और शील-सौजन्य का ही दहेज दिया था, इसी से सास की क्रोधाग्नि में प्रायः उसी की आहुति पड़ती । मंझली शान्ता अपनी सजग बुद्धि का सहारा लेकर प्रायः तटस्थ ही रहती । एक ओर सास की हां में हां मिलाती, दूसरी ओर जेठानी-देवरानी से भी मिली रहती । मीठी-मीठी बातों की छुरी बगल में दबाए वह सुर्र-फुर्र लगाती रहती कि लगता सबसे कामकाजी बहू वही है, पर वह तो हो-हल्ला अधिक मचाती, काम बहुत कम ही करती थी । फिर भी सुभद्रा उससे मन ही मन दबती ही रहती थी । अहल्या हाथ-मुंह धोकर आई और कपड़े पहनकर तैयार ही हुई थी कि बड़ी भाभी ने उसे चाय पीने को चौके में बुलवा भेजा ।

नौ

बड़े से लिपे-पुते चौके में तीन-तीन चूल्हों में आग भड़काए सुभद्रा एकवस्त्रा बनी, एक नांद-सी पतीली में दाल घोंट रही थी । अहल्या को देखकर पास ही दाल पीसती अपनी प्रौढ़ा भाभी को सम्बोधित कर बोली : 'यही है हमारी कलकतिया लल्लावाली भतीजी । कल शाम ही आए ये लोग। बार-बार इसे देखकर अभागी छोटी की ही याद आ रही है, क्या करूं कलेजा उमड़ा आ रहा है,' आंख का आंचल धरकर रोने में, उसके पीन पयोधरों की यवनिका एकदम ही उठ गई, इसका उसे कोई क्षोभ नहीं था । वह तो काल्पनिक अश्रुजल पोंछती अपनी तापसी देवरानी का ही गुणगान बघारती रही ।

'क्या कहूं बोज्यू, ऐसी लछमी थी इसकी मां, पर भाग में सुख हो तब न। गिरह में तो शनीचर देवता विराजमान थे। कहां से राज भोगती, जिसे भोगना था वह भोग रही है ।' किलै नै, किलै नै (क्यों नहीं, क्यों नहीं) कहती अपनी विराट नथ हिलाती उसकी भाभी उड़द पीसना स्थगित कर बड़े मनोयोग से उसकी बातें सुनने लगी।

सुभद्रा ने आंचल के कोर से देख लिया कि भाभी ने तब से ढाई दाना भी उड़द का नहीं पीसा था, इसी से प्रसंग बदलकर उसने पैंतरा बदल लिया ।

'पीसो हो बोज्यू, चट्ट-पट्ट चार बड़े उतारूं तब इन स्कूलियों की पल्टन को जिमाऊं ।'

बोज्यू को ननद की अनर्गल कमेंट्री में बड़ा ही रस आ रहा था । अहल्या अनमनी-सी बड़ी भाभी के साथ छुहारे कतरवा रही थी, न चाहने पर भी ताई की फुसफुसाहट उसके कानों में विष घोल रही थी :

'हां तो बंगालिन साली ने लल्ला पर जादू कर दिया, कुछ दिनों तक सुना बकरा बनाकर छोड़ दिया था ।' 'हाय राम, सच?' बोज्यू ने सिल-बट्टे को एकदम ही खिसका दिया और उकड़ूँ होकर और निकट खिसक आई । 'और नहीं क्या झूठ, खुद तुम्हारे ननदोई कलकत्ता जाकर देख आए थे, मार में-में करके सूने बगीचे में घूम रहे थे, पर कुछ भी कहो हो बोज्यू, गलती तो नन्दी की भी थी, धरती साली के दो लात।'

'किलै नै, किलै नै'—ननद की कठोर दृष्टि को दूर खिसकाए सिल पर निबद्ध देख बोज्यू ने बट्टा हाथ में लेकर धीर-मंथर गति से उड़द पीसने का क्रम पुनः चालू कर दिया ।

'अरे फिर भी हो बोज्यू, नन्दी यहां आती तो हम सर आंखों पर धरते, पर गई अपनी मायके, मति जो मारी गई थी । वहां नहनियां भाभी ने दो ही दिन में रूप दिखा दिया, फिर किस मुंह से यहां आती । अब जोगन बनी-बनी फिर रही है । सुना मायापुरी के आश्रम में है, भुवन के बाबू ने तो चिट्ठी भी डाली थी पर आए तब न।'

मन ही मन बोज्यू जानती थी कि कर्कशा ननद के शासन में बेचारी नन्दी आती भी किस दु:साहस से ।

एकाएक नौ का घंटा बजा और दुःसाहसी घंटे को एक भद्दी गाली निकालकर सुभद्रा ने अपने छोटे नौकर भौनिया को हांक लगाई : 'अरे ओ भौनिया छोकरे। बुला स्कूलियों को, उन्हें खिलाऊं, तब कहीं जाकर दूसरी पल्टन जीमेगी ।'

घुटनों तक, एक धारीदार कच्छा पहने, बारह-तेरह वर्ष का भौनिया, मालकिन की परुष हांक की उपेक्षा कर ठाठ से बीड़ी पीता रहा । ऊंचे कच्छे से निकली उसकी अशोकस्तम्भ-सी लौह टांगें, अंगद के पांव की तरह जमी ही रहीं । खिड़की से झांककर सुभद्रा ने देखा और चीखकर बोली : 'अबे ओ छोरे, आता है या मारूं चिमटा । रुक, आने दे बाबूजी को, आज ही तेरा हिसाब-किताब चुकता करती हूं।'

भौनिया ने मुस्कराकर बीड़ी को पत्थर से घिसकर बुझाया और कान में खोंसा। उसके ऐसे कितने ही हिसाब-किताब हो चुके थे। दिन-रात की मालकिन की धौंस ने उसे हद दर्ज़े का ढीठ बना दिया था । एक अंगड़ाई लेकर वह स्कूलियों के लिए थालियां लगाने लगा ।

'हंस रहा है छोकरा । मार दांत पीछे कर दूंगी, जा बुला स्कूलियों को।' सुभद्रा ने ऐसे स्वर में कहा जैसे वह स्कूलियों को खाने के लिए नहीं, फांसी के तख्ते पर चढ़वाने के लिए बुला रही थी । थोड़ी देर में चार किशोर बालकों को लेकर भौनिया ऐसे झूमता चला आ रहा था जैसे बेड़ी डाले कैदियों को लिए जेलर चला आ रहा हो।

एकसाथ ही कांसे की थालियों पर बहुत सारा भात परस, पानी-सी पतली दाल डालकर सुभद्रा आचमन कर चौके से बाहर कूद आई । अहल्या का जी भर आया, कैसे प्यारे लड़के थे और कैसे खाना परसकर डाल दिया ताई ने । ऐसी भूसे-सी सानी तो उसके घर के ढोरों को भी नहीं दी जाती थी—कर्नल की आस्ट्रेलियन गाय को दुहने, एक सिल्कन बुश्शर्टधारी, ठाठदार ग्वाला आया करता था । चारों सिर झुकाए चुपचाप उल्टे-सीधे कौर डालकर उठ गए, न उनसे कुछ लेने का आग्रह किया गया, न बेचारों ने मुंह खोलकर कुछ मांगने की ही धृष्टता की । उनके जाते ही सुभद्रा पिसे उड़द की थाली लेकर चौके में धम्म से कूदी, उसकी विराट देह के भार से कच्ची मिट्टी-लिपी धरणी कांप गई और चूल्हे-अंगीठियों पर चढ़े विभिन्न पतीलों के ढकने खनखना उठे ।

'ओ बाप रे,' दुष्ट भौनिया छौंक-सी लगाकर फिर बाहर भाग गया । बड़ी भाभी ने सिर झुकाकर हंसी रोक ली। सुभद्रा के कानों तक शायद भौनिया का रिमार्क नहीं पहुंच पाया था । इसी से वह अपनी चौड़ी हथेली पर पानी लगा, पिसे उड़द फैलाती, पेशेवर अन्दाज़ से बड़े बना-बनाकर कड़ाही में छोड़ती जा रही थी । हींग, कच्चे उड़द और पकते बड़ों की सौंधी खुशबू पूरे चौके में फैल गई : 'भौनिया आ, अटाली में पानी-थाली धर और बाबू-सैब लोगों को बुला ला ।' सुभद्रा ने हांक लगाई पर प्रायः ऐसे ऐतिहासिक क्षणों में भौनिया अपनी सजग बुद्धि का सहारा ले, लोटा थामकर दिशा-जंगल चल दिया करता था; आज भी वह किसी जादुई बौने की तरह अदृश्य हो गया । रमा ने अहल्या के साथ पटले बिछाकर पानी धर दिया, मिट्टी की बनी चौकोर कक्ष-सी अटालियों की लक्ष्मण रेखा में घिरकर ही गृह के पुरुष जीमते थे, किसी ने छू भी दिया तो उन्हें भूखे ही बाहर निकल आना होता था । अहल्या को मन ही मन अपने परिवर्तन पर आश्चर्य हो रहा था । अपने घर में उसने कभी

सुराही से पानी निकालकर भी नहीं लिया था, और आज वह कठपुतली-सी भाभी के पीछे-पीछे घूमती काम करवा रही थी।

'ओ छोटी बहू, कहां गई, ज़रा अपना बनाया टिमाटर का सास तो निकालना, हमारे कलकतिया लल्लाजी अंग्रेज़ आदमी ठहरे, विलायती अचार ही पसन्द करै है,' सुभद्रा ने कहा और न जाने किस नेपथ्य से भौनिया की व्यंग्यपूर्ण, चिढ़ाने की-सी आवाज़ आई : 'के हो धुलैंणी ज्यू, क्या टिमाटर की भी सास होती है? और ससुर?' अहल्या को हंसी आ गई । 'आ छोकरे तेरे ससुर को भी इस भट्टी में झौंकू, साला कैसा गायब हो गया ठीक काम के वक्त। बीच रास्ते में कमर पै हाथ धरै क्या हंसे है, क्या फोटू उतारूं तेरा? जा बुला ला साहब लोगों को । अब के अपने मायके गई तो वहीं का कोई कशपुरिया छोकरा लाऊंगी । इन पहाड़िया नौकरों ने तो मेरा दिमाग खाली कर दिया हैगा।' झल्लाकर सुभद्रा ने घी गलाने धरा और जीमनेवालों की प्रतीक्षा करने लगी । तुहिना एक छोटी शीशी में टिमाटर का सॉस ले आई थी । आते ही उसने कभी नमक और कभी रायता लगाकर ऐसी फुर्ती दिखा दी जैसे अब तक वही मोर्चे पर डटी खड़ी थी । भौनिया मस्त हाथी की चाल से सबको लेकर लौटा और सुभद्रा ने छोटा-सा घूंघट खींच लिया : 'वाह लल्ला, आज तो तुम लाग लगा ही लाए ।'

अहल्या ने आश्चर्य से देखा, सचमुच ही कर्नल, नंगे बदन एक चिट्टी धोती पहने मुस्कराता पटले पर जम गया । 'हाय पापा,' दोनों हाथों से चेहरा ढांककर अहल्या हंस उठी । कर्नल के साथ ताऊजी, उनके दोनों अफसर बेटे, शिखा-सूत्र सम्हाले चौके में बैठ गए। उनके साथ ही एक और सुदर्शन लम्बा-चौड़ा व्यक्ति सबसे कोने की अटाली में बैठ गया, पहले अहल्या उसे ठीक से नहीं देख पाई । पर अचानक आंखें चार होते ही उसके दोनों गाल लाल हो उठे। यही था वह जो उसे रज़ाई खींचकर बुरी तरह झकझोर गया था । वह भी सकपकाकर सहम-सा गया । उधर सुभद्रा अपने स्वादिष्ट व्यंजनों का बखान करती अपने ही मुख मियांमिट्ठू बन रही थी ।

'ये अचार हमारी छोटी बहू ने बनाया है लल्ला, फूट का कोरस पास किया हैगा इसने। बड़ी बहू को शायद भौनिया का सास-प्रसंग स्मरण हो आया, वह सिर झुकाकर आंखों से धुएं के आंसू पोंछने का उपक्रम करने लगी । अहल्या भी किसी तरह वहां से बचकर भाग निकलने के लिए छटपटा रही थी, पर स्वभाव से ही धृष्ट अभया अहल्या को न जाने किस लाज ने छुई-मुई बनाकर घर दिया था। घुटनों में ठुड्डी रखकर वह कटे छुहारों को फिर से निरर्थक ही कतरने लगी।

'अरे रज्जू, सकोरे कुल्हड़ आ गए या नहीं? जनवासे में चार पलंगें भी तो कम थीं? सुभद्रा ने पूछा ।

'नहीं बुआ, पलंगें तो अभी नहीं आईं । सरकिट हाउस से अच्छी पलंगें मंगवाई हैं, कुल्हड़-सकोरे उठवाकर गोदाम में धर दिए हैं ।'

'अरे कौन-सा कद्दू में तीर मार दिया तैने, पलंग रखवाने को मैं कल से झींक रही हूं।' 'सब हो जाएगा बुआ, क्यों परेशान होती हो,' रज्जू ने हंसकर कहा । उस हंसी में बसन्ती

के स्वर की मिठास थी। खाना खाकर पुरुषों की पंगत उठी तो सुभद्रा ने बहू-बेटियों को बुलाया । अहल्या को बड़ी जोर की भूख लग आई थी, पर सुभद्रा की कठोर मुद्रा से सहमकर वह अध-पेट खाकर उठ गई । बसन्ती का खाना सजाकर तुहिना ले जा रही थी, एकाएक सुभद्रा को एक ही दो दिन में पराई होनेवाली बिटिया का स्मरण हो आया : 'ले जा बेटी, कमरे ही में थाली उठा ले जा, एक-दो दिन की और है छोरी, फिर तो पराई हो जाएगी ।' आंखें पोंछकर उसने कहा ।

'तुम भी लगी हो लली ।' नथवाली भाभी ने रायता चाटकर कहा : 'गोकुल की बेटी मथुरा ब्याही, यह अल्मोड़ा और दो कदम पर नैनीताल, आती-जाती रहेगी। क्यों जी छोटा करती हो, अच्छी तरह खा लो लली, कल तो तुम्हें निर्जल व्रत धरकर ही कन्यादान करना होगा । उनकी बातों के बीच ही अहल्या उठकर भीतर चली गई । बसन्ती ने सामान्य-सा ही भोजन कर थाली खिसका दी थी और एक मर्दाने कुर्ते में बटन टांक रही थी। 'अरे तुमने तो खाया ही नहीं बसन्ती,' अहल्या ने आश्चर्य से थ़ाली की ओर देखकर कहा : 'कितना बढ़िया खाना था!'

'सच कह रही हो अहल्या । मुझे तो बड़ी चिन्ता हो रही थी कि पता नहीं, हमारे धुंए भरे चौके में तुमसे खाया भी गया होगा या नहीं ।'

'लपटन-सा'ब कुर्ता और सूटर मांग रिये हैं—भौनिया अपनी चौरस कमर पर दोनों बेलन-से हाथ टिकाए खड़े होकर बोला ।

'अरे रुक जा, बाप रे बाप, ये लपटन साहब भी बस हुकुम चलाते हैं । कुर्ते के बटन न हो गए तूफान हो गया । रोज़ एक कमीज़ टांकने को दे जाते हैं । लगता है चीनी दुश्मनों ने इन्हीं के बटनों पर कस-कसकर चानमारी की है — ले ये रहा कुर्ता और यह है स्वेटर ।' कट से, बटन का तागा दांत से तोड़कर बसन्ती ने भौनिया को थमाया और फिर स्वेटर थमाकर अहल्या की ओर मुस्कराकर बोली : 'उन्हें क्या पता कि उनका स्वेटर हमारे किस काम आया ।'

अहल्या जैसे कुछ कहने को हुई और फिर उसका चेहरा लाल पड़ गया—कुछ भी नहीं कह पाई बेचारी ।

बसन्ती कहती जा रही थी : 'मेरे मंझले मामाजी के लड़के हैं, नेफा में पोस्टेड हैं आजकल । एक तो इन्फेन्ट्री में है । दिन-रात मामाजी परेशान रहते हैं, बड़ी मुश्किल से सात दिन की छुट्टी मिल पाई है । मामी इन्हें तीन दिन का छोड़कर मरी थीं, नानीजी ने ही पाला था । अब अस्सी बरस की हैं, ननिहाल के गांव में ही रहती हैं, उन्हीं से मिलकर चले जाएंगे ।'

अहल्या चुपचाप सुन रही थी, बसन्ती फिर से कहने लगी : 'पिछले साल इनकी शादी तुहिना भाभी की बहन राज्यश्री से लगभग पक्की ही हो गई थी, फिर न जाने क्या हुआ कि ये हज़रत ऐन मौके पर ऐंठ गए, वह तो इनके ही बुआ के लड़के दीनू ने बात रख ली, उन्हीं से राज्यश्री की शादी हो गई । तुहिना भाभी तो कहती हैं, उन्होंने कोई ईसाई ऐयर होस्टेस धर ली है। राम जाने, पर इतना मैं जानती हूं कि नानीजी के रहते रज्जू दद्दा कभी किसी

ईसाई-विसाई के चक्कर में नहीं पड़ेगा । तुहिना भाभी की बहन इतनी सुन्दर हैं, मेम-सी गोरी, फिर नैनीताल से सीनियर केम्ब्रिज भी पास किया था । पर न जाने क्यों, इन्हें कोई पसन्द ही नहीं आती । नानीजी बस इनके ब्याह की रट लगाए हैं, पर सुनें तब तो। वैसे आजकल फिर इनकी बात एक जगह चल रही है, लड़की सुना है बड़ी सुन्दर है, आज अम्मा ने पांच बजे उन लोगों को चाय पर बुलाया है । अगर राजू दद्दा ने पसन्द का ली तो अम्मा आज ही टीका चढ़ा देंगी, तब ही तो इतना इतरा रहे हैं हज़रत ।' अहल्या को भी न जाने क्यों उस अपरिचित लपटन साहब की प्रस्तावित सगाई में रस-सा आने लगा। वह बड़ी उत्सुकता से पांच बजे की प्रतीक्षा करने लगी । पापा के सूटकेस से वह अपने कपड़े और शृंगार प्रसाधन का सामान निकाल लाई थी। बसन्ती के दामी उपहार को देखकर सुभद्रा का वात्सल्य उमड़ पड़ा : 'आहा, आखिर कुछ कहो, पसन्द हमारी अहल्या बेटी की बहुत ऊंची, कैसी बढ़िया साड़ी है और गहने भी कितने सुन्दर हैं । आ तो बेटी ज़रा मेरे साथ । शाम को कुछ औरतों को चाय पर बुलाया है, बीच के कमरे ही में मेरे साथ ज़रा चाय-वाय का सामान लगा दे ।' अहल्या उठकर ताई के पीछे जाने लगी, बरामदे में बसन्ती के राजू दद्दा वही स्वेटर चढ़ाए ऐंठे चले जा रहे थे। इस बार अहल्या ने निर्भीक दृष्टि उठाई, किन्तु स्वेटर पर आंखें गड़ते ही वह ज़मीन में गड़-सी गई । इसी स्वेटर को वह रात भर पहने थी और आज उसी स्वेटर को एक अपरिचित पुरुष की छाती पर लगा देख, उसका संकुचित हो उठना स्वाभाविक ही था। रज्जू कतराकर निकल गया और वह ताई का हाथ बंटाने में जुट गई ।

समय से कुछ पूर्व ही निमंत्रित महिलाएं आ धमकीं । भारी-भारी कांजीवरम साड़ियों में, पीले तप्तकांचन-से रंगोंवाली रोबदार तीन महिलाएं थीं और उनके साथ लज्जा से गड़ी जाती एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की, बड़ी-बड़ी आंखोंवाली, भरे-भरे शरीर की किशोरी थी। मोटी-सी गोरी महिला उसकी ताई थी, छोटे-से कद की दुबली-सी कुछ रुग्ण कलेवर की-सी महिला कन्या की मां थी और तीसरी बूटे से कद की रंगीली महिला उसकी चाची थी, जो नि:सन्देह उस विचित्र दल का नेतृत्व कर रही थी। 'आओ जी बैठो, अहोभाग्य कि आज हमारी बिसुली दिदी को बहन की याद तो आई ।' सुभद्रा ने गावतकिया कन्या की चाची की पीठ की ओर बढ़ा दिया । बिसुली दिदी सुभद्रा के बाल्यकाल की सखी थी, उसी ने पत्र में अपनी सुन्दरी भतीजी का उल्लेख कर, रज्जू से रिश्ते की प्रार्थना की थी ।

सुभद्रा की निर्लज्ज दृष्टि बेचारी सिर झुकाए बैठी कन्या की परत खोल-खोलकर धर रही थी : 'वाह, लड़की तो बड़ी सुन्दर, है। कहां तक पढ़ी है हो बिसुली दिदी? रज्जू तो हमारा गऊ है गऊ । उसे तो पढ़ने-लिखने से भी मतलब नहीं, पर क्या कहूं दीदी, आजकल तो हमारे पहाड़ के छोकरों को भी पर लग गए हैं।'

'हां-हां बहन, सुना अपने देहरादून के सोमशास्त्री का लड़का तो ब्याह से पहले ही दशहरे की छुट्टियों में ससुराल भी हो आया । भावी बहू को लेकर नैनीताल की सड़कों पर घूमते खुद हमारे उनने देखा-अब कहो ।' बिसुली दिदी को ऐसी बातों के प्रचार में विशेष दक्षता थी, किसकी लड़की किस पंजाबी के साथ भाग गई, कौन लड़का किस वर्जित

कुलगोत्र की लड़की के चक्कर में पड़ा है, ऐसी असंख्य घटनाओं की लिस्ट उनके पास सर्वदा तैयार रहती : 'इसी साल इन्टर का इम्तहान दिया था हमारी लल्ली ने, पर अंग्रेज़ी में रह गई । पढ़ने में नहीं तो सदा अव्वल आती रही, पर बहन अंग्रेज़ी-पर्चा ही सुना जब्बर था अबके, करती भी क्या, और फिर हज़ार कहो क्या करेगी डिग्री का, लड़की चाहे एम.ए. पास हो या बी.टी., फूंकना तो गूल्हा ही पड़ता है और उस कला में हमारी कंचन एक्सपर्ट है।' गर्व से चाची ने कंचन की ओर देखा । उस बेचारी पर अहल्या को मन ही मन दया आ रही थी, सचमुच ही लड़की सुन्दरी थी, ऐसा लुभावना चेहरा था जिसे एक बार देखकर सहज में ही आंखें नहीं फेरी जातीं । अहल्या ने चाय और नाश्ते का सामान सजाकर धरा तो बिसुली दिदी ने उसी के सम्मुख उसका परिचय पूछ दिया ।

'हमारे कलकतियावाले लल्लाजी की बिटिया है । जा तो बेटी, बसन्ती को भी बुला ला ।'

अहल्या बसन्ती को बुलाने गई तो बसन्ती ने हंसकर पूछा : 'कैसी है? देखा?' 'ऐसी है कि बस अबके तेरे रज्जू दद्दा ने नाही–की तो कहना पड़ेगा कि हद दर्ज़े के चुगद हैं।'

कहते ही उसकी दृष्टि अंधेरे कोने की आल्मारी से क्रॉकरी निकालते रज्जू दद्दा पर पड़ी, जिसे वह बाहर के उजाले से आने के कारण देख नहीं पाई थी। '

बसन्ती ज़ोर से हंसकर बोली : 'सुना रज्जू दा । तुम्हें अब सोच-समझकर ही उत्तर देना होगा ।'

बेचारी अहल्या शरमाकर भाग गई । वह क्यों शरमाई और क्यों पागलों की तरह भाग आई वह स्वयं ही नहीं समझ सकी । चाय पीते समय ही रज्जू को बुलाने की व्यवस्था बसन्ती को सौंपकर सुभद्रा निश्चित बैठी थी । थोड़ी देर में बसन्ती उठकर गई और फिर मां के कान में कुछ फुसफुसाकर कह सिर नीचा कर हंसने लगी । 'मैं तो जानती थी, वह तो लड़कियों से भी ज्यादा शरमावे है, कभी नहीं आएगा । मैंने कहा था इससे कि जा बुला ला, बिसुली दिदी के पैर छू जाएगा । पर सुन जनवासे का इन्तज़ाम देखने चल दिया । खैर कोई बात नहीं बहन, ऐसे हीरे के टुकड़े को भी पसन्द नहीं किया तो कहूंगी, छोकरे का दुर्भाग्य था और क्या, आ जाए तो मैं बातें कर लूंगी ।'

बड़े स्नेह से उनके दल को विदा कर सुभद्रा लड़की की ही रूप-चर्चा में डूब गई : 'अहा, कैसा सोने-सा रंग है और नज़र कैसी नीची, मेरे एक बेटा और होता तो मैं आंखें मूंदकर ले आती। एक हमारे ये रज्जू हैं, ठीक वक्त पर चल दिए । आजकल के लड़के तो सुन्दरी लड़की को देखने के लिए छत- मीनारों पर चढ़े रहते हैं और ये छोरा न जाने क्यूं मरी छोरियों की भीड़ देखकर ही दुम दबाके भाग जावे है ।'

एकमत से सबने कंचनलता के सौन्दर्य का समर्थन किया, बसन्ती तो अम्मा के पीछे पड़ गई कि वह बिना रज्जू दा से पूछे ही टीका चढ़ा दे ।

'हां जी और क्या, दूध का जला छांछ भी फूंक-फूंक के पीवे है। एक बार तो हाथ लग गए । राज्यश्री जैसी लड़की को जब इसने पसन्द नहीं किया, वह तो दीनू ने लाज धर ली, नहीं तो समधियाने में, मैं क्या मुंह लेकर जाती!' और हुआ भी ऐसा कि जनवासे से रज्जू

लौटा और सब उसके पीछे पड़ गए जैसे भी हो उसे हां करनी ही होगी । 'जो पहले-पहले मरी नाक-भौं चढ़ावे हैं, उन्हें फिर मिले हैगी कल्लो परी, हां मैं कह रही हूं रे रजुवा, ऐसी लड़की भाग से मिले है।'

पर अपने गम्भीर चेहरे को और भी गम्भीर बनाए रज्जू दा चुप ही बैठे रहे। 'और क्या, छोटी बहू ठीक ही कह रही हैगी, तूने ज़रूर कोई ईसाइन ही छांटकर धरी होगी । न जाने अम्मा के करम में मरने तक क्या-क्या दुख भोगना बदा हैगा,' और वह रोने लगी ।

छोटी भाभी जीभ काटकर पर्दे के पीछे छिप गई, हाय राम ! क्या कह दिया अम्माजी ने। पर बुआ की सिसकियां, बसन्ती का अनुरोध सब व्यर्थ ही गया । 'बुआ, मैं आपसे हज़ार बार कह चुका हूं कि मुझे शादी के चक्कर में नहीं पड़ना है, सात दिन बाद मुझे सिर पर कफनी बांधकर मौत की घाटी में कूदना है, ऐसे समय में भला शादी-ब्याह की किसे सूझ रही है । मेरा एक साथी था बुआ, सदा का स्वल्पभाषी,' रज्जू एकाएक वाचाल हो उठा : 'मेजर राव, आठ महीने पहले शादी कर आया था । चीनियों की बर्बर गोलियों ने उसकी देह को चलनी बना दिया, फिर भी वह मोर्चे पर डटा रहा और चीनियों को रुई की तरह धुनता रहा । मैं ही उसकी लाश को ढूंढ़कर लाया था बुआ, यहां आने से पहले उसकी अठारह वर्ष की विधवा से मिलने गया था। क्या तुम चाहती हो एक ऐसी ही अठारह वर्ष की विधवा का तोहफा तुम्हारे लिए भी छोड़ जाऊं?"

कमरा स्तब्ध हो उठा, विवाह की चहल-पहल के बीच सहसा नेफा की रणभूमि की नीरवता छा गई । बुआ ने फिर कुछ नहीं कहा, अकेली अहल्या ज़मीन खुरचती रही। जब उसने आंखें उठाई तो रज्जू बाहर चला गया था । उसी दिन सुभद्रा ने हृदय पर पत्थर रखकर अपनी बाल्यसखी के यहां पत्र लेकर अपने पुत्र को भेजा, रज्जू युद्ध तक विवाह न करने का संकल्प लिए बैठा है, ऐसी सोने की लक्ष्मी उसके गृह में उजाला नहीं कर सकी, यह उसी का दुर्भाग्य नहीं तो और क्या है?

दस

आभूषणों के उपहार और दामी साड़ी देने के बाद, अहल्या पर ताई की कृपादृष्टि बढ़ती गई थी : 'बेटी, ज़रा तू लाल कपड़े पर रुई से स्वागतम् तो लिख देना, बंगाल में तो तूने ऐसी सजावट, तस्वीरें निकालना खूब सीखा होगा। अकेला रज्जू ही सब काम में जुटा है, और छोकरों को तो मरी छोकरियों को देखने से ही फुर्सत नहीं है ।' जहां शादी-ब्याह के अवसर पर कितनी ही सुन्दरी-कुमारिकाओं का दल, तरुणदल पर दायें-बायें बिजलियां गिरा रहा था और जान-बूझकर, कभी छालियां कतरवाने, कभी भंडारगृह की चाबी मांगने, कभी जनवासे की असंख्य फरमाइशों का सन्देश लिए, कई जोड़े बांके, लड़कियों की ही भीड़ में धंसे जा रहे थे, वहीं पर रज्जू उस रंगीली भीड़ से कतराकर ही निकला जा रहा था ।

बसन्ती के विवाह में अहल्या एक अनोखे आकर्षण का केन्द्र बन गई थी । सीधी-सादी साड़ी का सुल्टा पल्ला मारे, एक ही तरह की चोटी लटकाए, दिन-रात के शादी-ब्याहों में दीखनेवाली पहाड़ की परिचित कन्या-कुमारियों की भीड़ में, अहल्या की परिपाटी से बांधी गई साड़ी, दमकते हीरे के कर्णफूल, उस पर सर्वथा नवीन हेयर स्टाइल देखकर पहाड़ का तरुण-रक्त हिलोरें लेने लगा । अहल्या लाल टूल के वस्त्र पर स्वागतम् के अक्षरों को रुई में उभारकर चिपका रही थी और उन पर गोंद लगा-लगा, राजू उसे थमाता जा रहा था । ताई के कहने पर वह जब स्वागतम् बनाने आई तो रज्जू सब सामान लेकर बाहर ही बैठा था, इधर-उधर भागते कई लड़के कागज़ी रंगीन झंडियों को सुतली पर साधकर बड़े यत्न से टांक रहे थे। एक ओर लाउडस्पीकर पर घिसे-पिटे रिकार्ड रिरिया रहे थे । अहल्या को आती देख, झंडी अभियान के दल में खलबली-सी मच गई और एकसाथ डिग्री कॉलेज के छात्रों का अशिष्ट स्वर अहल्या और राजू के कानों में पड़ा । लड़के फुसफुसाकर ही बोल रहे थे, किन्तु फुसफुसाहट तारसप्तक में ही चल रही थी ।

'अरे डियर, गज़ब की हेयरस्टाइल है बालों की, चो साली एक अंग्रेज़ी फिल्म एक्ट्रेस है, सोफिया लौरेन, वैसा ही चेहरा है यार–पहाड़ी नहीं हो सकती ।'

दूसरी फुसफुसाहट, अचानक लाउडस्पीकर के रुक जाने से और भी स्पष्ट हो उठी : 'अबे हट यार, सेंट-परसेंट पहाड़ी है, ओवरसियर सा'ब की भतीजी है ।'

'सच ?'

'सच यार, बाप कसम ।'

'आपकी नेशनेलिटी पर ही शायद बहस चल रही है,' तुहिना का व्यंग्यपूर्ण स्वर सुनकर अहल्या ने चौंककर पीछे देखा और हंस पड़ी । 'क्या करूं छोटी भाभी, उन बेचारों का क्या दोष, शायद मुझे पहाड़ आने से पहले यहां के अदब-कायदे जमकर ही सीखना उचित था ।'

‘हां, तुम्हें देखकर तो कोई भी पहाड़ी नहीं कहेगा, यहां कन्योचित शिष्टाचार को बहुत महत्त्व दिया जाता है न ।’ छुरी चुभाकर तुहिना फिर भीतर चली गई । रज्जू निःशब्द दोनों की बहस के बीच ही गोंद की शीशी लेकर चला गया था। अहल्या की आंखों में अपमान के आंसू छलक आए, पर 'स्वागतम्' की पट्टी को सम्हालकर उसने सूखने रख दिया और कागज की कतरनों को बटोरकर साफ करने लगी । आज ही नहीं, पिछले तीन-चार दिनों से छोटी भाभी उसे कई बातें सुना चुकी थी, पर अहल्या जिस गृह की अतिथि बनकर आई थी उसकी मर्यादा का उसे पूरा ध्यान था । तुहिना के ताज़े अपमान की चोट को भी वह भुलाकर बसन्ती के पास चली गई । विवाह के आहलादपूर्ण वातावरण से गृह का ओर-छोर भीग उठा था । बाहर पत्थर के आंगन के ऊपर, रंगीन शामियाना टांग दिया गया । नीचे बिछे दामी भारी गलीचों पर कई बच्चों का दल कलाबाजियां खा रहा था । वर के स्नान से अभिषेक की गई हल्दी से पूर्वाग सम्पन्न हो गया था । बड़ी-सी पीतल की परात में, दोनों घुटनों में मुंह छिपाए बसन्ती को लाल रोली के स्वस्तिक बने पटले पर बिठाकर तीनों भाभियां, कुमाऊंनी विचित्र अनिबद्ध स्वरलहरी के साथ, हल्दी पोत रही थीं । बसन्ती का पीला चेहरा हल्दी के पीलेपन से रंगकर और भी पीला लग रहा था। वह बार-बार भाभियों की ठिठोली के बीच डुबकी-सी मारकर घुटनों में सिर छिपाए ले रही थी और बार-बार भाभियां उसका चेहरा ज़बरदस्ती उठा-उठाकर फिर हल्दी से रंगे जा रही थीं । शरीर पर एक गहना भी नहीं था, एकमात्र पीली धोती में वह रत्न-सी चमक रही थी । कन्या के निराभरण रहने पर विवाह की बेला में आभूषणों से सहसा लद जाने पर उसका सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है, ऐसी कुमाऊं की परम्परा है । सुभद्रा की विराट देह, जामदानी बरेली के लहंगे और दुहरे पिछौड़े में और भी जंगी लग रही थी, उसके पीछे-पीछे भागती, कभी नारियल लाती, कभी हल्दी कंकु का थाल लिए घूमती उसकी तीनों बहुएं बड़ी-बड़ी नथों को झुलाती तस्वीर-सी लग रही थीं । अहल्या, स्वदेश की प्रत्येक परम्परा पर मन ही मन न्यौछावर हो रही थी। आज तक उसने बंगाल की सप्तपदी ही देखी थी, आज उसे विवाह का एक नया ही रूप देखने को मिल रहा था । जी में आ रहा था कि पापा मूवी कैमरा लाए होते तो सब तस्वीरें उतारकर धर लेती। ताऊजी लाल रेशमी अधोवस्त्र के ऊपर रेशमी कुर्ता पहने, सिर पर बांधे साफे की कलंगी झुलाते इधर-उधर भागे जा रहे थे। कन्या-पक्ष का पुरोहित आंगन में गावतकिया लगाए, किसी मुंहलगी वेश्या के-से नखरे दिखा रहा था । कभी उसे कस्तूरी और मुलहठी डला पान चाहिए तो कभी काली मिर्च और सोंठ की चाय ।

बारात आने का समय हुआ तो स्त्रियां छज्जों पर बारात देखने चढ़ गई । किशोरियों ने पहले ही जगह घेर ली थी, कुछ अत्यन्त आधुनिकाएं कुर्सी डालकर आंगन में ही जम गई थीं । अकेली अहल्या ही घुटनों में सिर डाले सिसकती बसन्ती के पास बैठी रही। छोटा-सा कमरा लोहे की सग्गड़ में धधकते गोबर के गोलों की आग से तप रहा था । कमरे की नीरवता के बीच कभी-कभी बाहर का कोलाहल और लाउडस्पीकर पर बजते गानों का स्वर तैरता आ जाता और फिर बसन्ती की सिसकियों का स्वर उन पर विजय पा लेता । बैंड की

झम्मकझम और पहाड़ी नगाड़े रणसींगी के स्वर ने बारात के आने की सूचना दी। लाउडस्पीकर रुका ही था कि पहाड़ी स्त्रियों का लाउडस्पीकर बज उठा–

'जब ही महाराजा
चौक में आए–
चन्दन चौकी पुराए हो
मथुरा के हो वासी
गज मोत्यूं. हार बनाए हो
मथुरा के हो वासी–

मथुरावासी रहस्यमय नौशे को देखने का लोभ अहल्या को भी हो आया, पर सिसकती बसन्ती को उससे अकेली नहीं छोड़ा गया । खूंटी से निकालकर उसने शाल को बसन्ती के कन्धे पर डालकर लपेट दिया ।

'छि:, इतना मत रो बसन्ती, देख तो आंखें कैसी सूज गई हैं ।' बड़े प्यार से उसने बसन्ती की पीठ थपथपाई । सहानुभूति के स्पर्श से बसन्ती फिर कांप उठी। उस रुदन में बनावट नहीं थी, एक अज्ञात अपरिचित गृह में एक सर्वथा अनजान व्यक्ति की चादर से बंधकर, कुमाऊं की कन्या पराई हो जाएगी। वह रुदन एक सरल भोली कुमाऊं की कन्या का रुदन था, जिसे बचपन से ही कुल की परम्परा और मर्यादा की कड़ी डोर से बांधकर रख दिया जाता है। खूंटे की गऊ की भांति उसे जहां बांधो, वहीं वह बंध जाती है, झामे की चिड़िया की भांति वह खा-पीकर मायके की देहरी से उड़ जाती है । उन नए परों की उड़ान में कैसा आनन्द है पर कैसी व्यथा! हो सकता है वह उड़ान मुदमय स्वच्छन्द उड़ान ही बने और हो सकता है कि कोई निर्मम बधिक-सा स्वामी उसे पिंजड़े के बन्धन में डालकर छोड़ दे। कुमाऊं के विवाह में न कोर्टशिप के लिए स्थान है, न रोमांस की अनुमति । तीन-चार दिन के स्वल्प परिचय ने ही बसन्ती को अहल्या के इतने निकट ला दिया था कि कल वह उसे छोड़कर चली जाएगी । यह सोचते ही अहल्या का जी न जाने कैसा हुआ जा रहा था ।

संस्कृत के मधुर श्लोकों के बीच शाखोच्चार का स्वर आया और थोड़ी ही देर में बड़ी भाभी भागती अहल्या को बुलाने आ गई।

'अरे तुम यहां क्या कर रही हो, बारात नहीं देखोगी क्या? ऐसा सजीला दुल्हा है, हमारी बसन्ती लली से भी गोरा–आओ चलो।' उसे खींचकर वह बाहर ले गई । छज्जे पर स्त्रियों का दल, चिड़ियों-सा चहक रहा था–'मूंछे हैं ।'

'हट मूंछे कहां, छाया पड़ रही है नाक की ।'

'हां, सच नाक ही तो है–कितनी लम्बी पर कुछ कहो भई, वर सुन्दर है ।'

'खाक मिट्टी सुन्दर है—टांगें देख, कितनी पतली-पतली हैं ।'

'हिश चुप कर, बसन्ती की भाभी आ रही है।'

अहल्या को खींचकर भाभी ने सबसे आगे कर दिया, सेहरा उठाए बसन्ती का बांका दूल्हा मुस्करा रहा था। 'कैसी अच्छी जोड़ी फबेगी, है न।' बड़ी भाभी उसे ठसकाए जा रही

थी : 'पलकें तो देखो कैसी लम्बी-लम्बी रेशमी हैं लड़कियों-जैसी ।'

कई लड़कियां खिलखिलाती, फूल बिखेरती, चुहल करती जूता छिपाने की योजना बना रही थीं, वर के पिता प्रसन्नचित, पापा से हंस-हंसकर बातें कर रहे थे । वर अब सेहरा सम्हाले पूजन-गृह की ओर जा रहा था, छोटा-सा पूजन-गृह एकदम ही भर जाएगा, सोचकर स्त्रियों का दल भीतर धंस गया और उसी धंसी जाती भीड़ के साथ बहती, अहल्या भी भीतर पहुंच गई । एकाएक उसे कमरे में अकेली सिसकती बसन्ती का ध्यान आया और वह भीतर चली गई । बसन्ती, थककर दीवार पर पीठ टिकाए, एक सींक से गोबर के गोले की राख को उकेल रही थी ।

'तेरे दूल्हे को देख आई बसन्ती-इतना सुन्दर है कि...अरे, यह क्या फिर तुम रोने लगीं, भई वाह, लगता है आज तुमने हंसने-बोलने की कसम ही खा ली है । अच्छा लो भई, अब तुम्हारे दूल्हे की बात ही नहीं छेड़ेंगे...चाय पियोगी बसन्ती-ले आऊं?'

सिर हिलाकर ही बसन्ती ने नाही कर दी। बाहर के हो-हल्ले और पेट्रोमैक्स की रोशनी के उतार-चढ़ाव से लग रहा था कि बाहर बारातियों के जलपान का आयोजन चल रहा था। कई लोग बिना बुलाए ही बारातियों की पंगत में जीमने बैठ गए थे । पहाड़ में ऐसे सन्तों को एक विशेष नाम लेकर पुकारा जाता है और वह नाम है 'भुरिया' । 'हो न हो, वह तीसरी पंगत में बैठे सब भुरिया ही हैं ।' जिमानेवाले व्यंग्य से कहे जा रहे थे, पर मान-अपमान से परे वे दुर्लभ विभूतियां कचौड़ी-रायता और मीठी चटनी का आनन्द लिए जा रही थीं । मिठाई का भंडार बसन्ती के कमरे ही में था । इसी से खाना निबटते ही मिठाई लेने रज्जू आया और बसन्ती को देखकर हंसकर कहने लगा : 'बाप रे वसुली, तेरे ससुरालवालों की पंगत तो लगता है रात-भर जीमेगी । इतनी देर में तो दस बारातें जीम लेतीं—ला निकाल तो बड़ी चांदी की ट्रे, तेरे दूल्हे और ससुर-जेठ के लिए, बुआ हमारी क्या कम डिप्लोमेट हैं ।' बसन्ती की भीगी पलकें भी रज्जू के परिहास से क्षणभर को चमक उठीं — उसने आल्मारी से ट्रे निकाली, पान के आकार से सजाए गए मिष्ठान्न की चांदी की वर्क कहीं-कहीं पर उखड़ गई थी । एकाएक अहल्या को याद आया कि ताई ने ट्रे नीचे भेजने से पूर्व, उसमें ताज़ी वर्क लगाकर केवड़ा छिड़कने का आदेश दिया था ।

'अरे रुकिए, इसमें नया वर्क लगाकर केवड़ा भीं छिड़कना है'—उसने लजाकर कहा और दोनों चीजें निकालकर ले आई ।

वह वर्क लगा रही थी और राजू केवड़ा छिड़कता कहता जा रहा था : 'बाप रे, इनके ये ठाठ हैं और बेचारे दूसरे रेट की मिठाई खानेवालों के दांतों पर मुझे दया आ रही है।'

'क्यों?' अहल्या चुप थी, पर बसन्ती ने पूछ दिया ।

'अरे क्यों क्या। बालूशाहियां ऐसी हैं कि जी में आ रहा है अब के अपनी रेजीमेंट के मोर्टार तोपों के गोलों के लिए लेता जाऊं । चीनी की चाशनी में हमारे हलवाई ने लगता है कंक्रीट घोलकर धर दी है'–अहल्या हंसने लगी और बसन्ती ने सिर झुका लिया । 'एक पान चख लेना ठीक है, क्या पता मीठा-वीठा कम हो।' एक-दो बीड़े मुंह में भरकर उसने दो बीड़े

अहल्या और बसन्ती की ओर बढ़ाए : 'खाएंगी? भये मानना पड़ेगा इस स्पेशल मिठाई की मिठास को ।'

बसन्ती और अहल्या ने बीड़े नहीं लिए तो वह स्वयं ही मुंह में भरकर ट्रे लेकर चला गया । उसके क्षणिक हास-परिहास से कमरा उजला-सा हो गया था। उसके जाते ही फिर मनहूसी में डूब गया-सदा के संयमी रज्जू को अहल्या ने पहली बार इतना वाचाल देखा था ।

खाना निबटाकर सुभद्रा एक बड़े थाल में पूड़ी-कचौड़ियां, सब्ज़ी परसकर ले आई : 'देख बेटी,' उसका गला सचमुच ही भर आया था, 'तू भी खा ले और वसुली को भी अच्छी तरह खिला दे, थोड़ी ही देर में कन्यादान का लग्न है — फिर तो यह कल भी ठीक से नहीं खा पाएगी।' आंखें पोंछती वह थाल रखकर चली गई — बड़े कष्ट से । एक प्रकार से बसन्ती के मुंह में कौर ठूंस-ठांसकर ही अहल्या उसे थोड़ा-बहुत खिला पाई । उससे भी ठीक से नहीं खाया गया, हर कौर बसन्ती की सिसकियों के साथ गले में अटका जा रहा था । थाल खिसकाकर वह बैठी ही थी कि राजू फिर आ गया : 'ओह गॉड,'[1] थाली में ढेर सारी कचौड़ियां देखकर वह बोला और खिसकाकर गोद में धरकर बड़े-बड़े गस्से मारने लगा । 'हाय राम, जूठी है'–बसन्ती ने हंसकर कहा । पर वह खाते-खाते ही बोला : 'अरे तेरी ही तो जूठी है, बहन का जूठा थोड़े ही ना होता है । यहां बारातियों को खिलाते-खिलाते भुरकस बन गया : वाह क्या खस्ता कचौड़ियां हैं–अब समझ में आया कि बारातियों की भूख का राज़ क्या था ।' वह चटखारे ले, थाली साफ कर उठने लगा तो बसन्ती ने हंसकर कहा : 'वाह खूब रज्जूदा । मेरी ही नहीं, अहल्या की जूठन भी साफ कर गए ।'

क्षण-भर को रज्जू का चेहरा अजीब-सा हो गया और फिर वह तेज़ी से झेंप मिटाने तीर-सा निकल गया ।

थोड़ी ही देर में शंख-घंट निनाद के साथ आकर तीनों भाभियां, बसन्ती को सास के आंचल के तले ढांककर कन्यादान के लिए ले गई, पीछे-पीछे अहल्या भी चली गई और उस बड़े-से कमरे की भीड़ की घुटन से सहमकर रह गई । एक ओर कन्या-पक्ष की भीड़ थी–बच्चों की चें-चें पें-पें, स्त्रियों का कलरव– और दूसरी ओर वर-पक्ष के सयाने, तरुण सजीले वर को घेरकर बैठे थे । अपनी रेशमी साड़ी के पल्ले को सम्हालती अहल्या बसन्ती के पास ही बैठ गई और उसे लगा जैसे वर-पक्ष की पूरी भीड़ की कई जोड़ी आंखें, उसके चेहरे पर अंगारे-सी दप-दप कर दहकने लगीं। कोई उसे देखकर फुसफुसा रहा था, कोई मुस्करा रहा था, और कोई निर्लज्ज दृष्टि से उसे घूरे ही जा रहा था, जैसे वह हलवाई की दुकान पर सजी मिष्टान्न की थाली हो। एकाएक परात बीच में रखकर, मंत्रोच्चार के गांभीर्य से दोनों पक्ष के पुरोहितों ने हंसी-मज़ाक का हल्का वातावरण बदल दिया । कुश की कांपती डाली के साथ कांपती बसन्ती का हाथ जामाता को थमाकर कन्यादान सम्पन्न हुआ और कन्या के माता-पिता को बधाइयों से लाद दिया गया । गठरी-सी बन बसन्ती को मां ने पिछोड़े के तले ढांप-ढूंपकर पराई बना दिया और फिर स्वयं उस सूने रिक्त आंचल को आंखों पर धरकर रोने लगी। बसन्ती को उठाकर दूल्हे के पार्श्व में बिठा दिया गया तो अहल्या को सहसा उसके

स्थान की रिक्तता का आभास हुआ । विवाह की विभिन्न रस्में पूरी कर दूसरे दिन बसन्ती विदा हुई तो पूरा घर भांय-भांय कर उठा । बसन्ती की विदा ने पहले दिन की रौनक को न जाने धो-पोंछक्कर कहां बहा दिया । उठा-उठाकर दरी-गलीचे, इंडे-बासन, लौटाए जा रहे थे और गृह की बहू-बेटियां इधर-उधर कटी लाश-सी बिछी पड़ी रात की थकान और नींद पूरी कर रही थीं । दूसरे ही दिन बहुत-से अतिथि विदा हो गए थे, संध्या को तीनों भाभियां, मनहूसी दूर करने पिक्चर देखने चली गई । बड़ी और मंझली ने आकर अहल्या से भी चलने का आग्रह किया, पर वह टालकर बसन्ती के कमरे में ही पड़ी रही । एकाएक कलकत्ता लौट जाने को वह व्याकुल हो उठी । जिस नये समाज में आकर वह एकाएक उल्लसित हो उठी थी, अचानक आज उसी के विषाद के घेरे ने उसे घेर लिया । ठीक ही तो कहा था पापा ने, अल्मोड़े का नशा विजया के मद की ही तरह क्षणिक होता है, सुन्दर गिरिशृंग का वैभव और चीड़, अंयार के भव्य वृक्षों की पंक्ति के सहारे ही तो दिन नहीं काटे जाते। कितना 'डल' लगने लगा था पहाड़ । पर कल बसन्ती आ जाएगी और उससे मिलकर वह पापा से लौट चलने की जिद करेगी।

बसन्ती ससुराल से लौटी तो उसे पाकर अहल्या का उचाट चित्त फिर प्रसन्न हो गया। तीन ही दिन में बसन्ती कितनी बदल गई थी। अब वह बिना किसी झिझक के, हंस-हंसकर अपने ससुराल के प्रसंग सुना रही थी, एंक क्षण के लिए उसका दूल्हा कमरे में आता तो वह कभी उसे अधिकारपूर्ण दृष्टि से बांधने की चेष्टा करती, कभी उसे अपने लाज-भीने स्मित के बोझ से लादकर रख देती। उसके पति की छुट्टियां पांच दिन और थीं और इसके बाद वह जाते ही मकान ढूंढ़कर, बसन्ती को अपने साथ ले जाएगा, यह बसन्ती ने आते ही अहल्या को फुसफुसाकर बतला दिया था । 'कल हम लोग गांव नानीजी से मिलने जाएंगे, तुम भी चलो न अहल्या'–बह अहल्या से लिपट गई। 'छोटी चाची भी तो वहीं पास के आश्रम में हैं, हाय कितनी खुश होंगी बेचारी, तुम्हें देखकर।'

आज तक स्नेह के जिस छिद्र को मल्लिका ने सावधानी से बन्द कर रख दिया था, वह पुराने नासूर की भांति अचानक खुल गया । ठीक ही तो कह रही थी बसन्ती। क्यों न वह अपनी भूली-बिसरी संन्यासिनी मां से एक बार चलकर मिल ले । तीन-चार दिन बाद तो वह कलकत्ता लौट ही जाएगी, फिर न जाने कब आना हो । जब उसने उसी दिन कर्नल से बसन्ती के साथ गांव जाने की बात छेड़ी तो कर्नल का चेहरा एकाएक लटक गया : 'सिली, चाइल्ड! [1] पहाड़ के गांव देखे भी हैं । एक ही दिन में ऊबकर रह जाएगी। ऊबड़-खाबड़ सड़कें, एकदम जंगली गांववाले, फिर वहां बाथरूम आदि की भी सुविधा नहीं रहती, जानती है? जंगल जाना पड़ेगा और पहाड़ के जंगल क्या खतरे से खाली होते हैं? तेरी तबीयत उचट गई है तो आई विल टेक यू टु नैनीताल फॉर ए चेंज![1] पर उस उजड़े से बिन्सर में भला क्या धरा है । कहीं से सुन लिया होगा कि नेहरू परिवार को वह स्थान बहुत प्रिय रहा है, यही न?' 'नहीं पापा, मैं असल में 'आश्रम' जाकर एक बार अम्मा से भी मिलना चाहती हूं।'

क्षण भर में कर्नल के चेहरे का रक्त जैसे पुत्री के उत्तर ने सोख लिया । अहल्या को भय होने लगा कि कहीं उनका ब्लडप्रेशर फिर न बढ़ उठे, पर

कर्नल ने अधजली सिगार की राख को ऐशट्रे में झाड़कर फिर कुछ नहीं कहा । वह आहल्या की ज़िद को जानता था । एक बार जो चढ़ गई वह सहज में उतरती नहीं थी और अहल्या भी बिना पापा के उत्तर की प्रतीक्षा किए अपने एयर बैग में सामान रखने लगी। रात को ताई ने बहुत बड़ी-सी बेंत की छापरी में मिष्ठान्न और पूड़ी-कचौड़ियां भरकर रख दीं । 'अम्मा के तो वैसी हालत रहे हैं, मद्धा से कुछ होने का नहीं, पूड़ियों का बासा ही धरे दे रही हूं, वही खाकर पानी पी लेना ।' बसन्ती ने अहल्या को बतलाया था कि उसकी वृद्धा नानी का दिमाग कुछ वर्षों से फिर गया था । मामा के कई बार अनुरोध करने पर भी वे अपनी पुरखों की देहरी छोड़ने को तैयार नहीं थीं, पागलपन के बीच भी गृह की ममता जीवित थी । बहुत दिनों की पुरानी बूढ़ी नौकरानी मद्धा और एक गोरखा चौकीदार के साथ ही नानी अकेली अपनी विराट हवेली में रहती थीं ।

---

1. 'ओह ! परमात्मा !
1. नादान बच्चा !
1. मैं हवा बदलने के लिए तुम्हें नैनीताल ले चलूंगा।

ग्यारह

बस में सीट रिजर्व हो चुकी थी । अहल्या बसन्ती और नये जीजा के बीच में बैठी थी कि अचानक उसकी दृष्टि सामने की सीट पर बैठे राजू पर पड़ी । उसे यह ध्यान ही नहीं रहा था कि राजू भी अपनी बूढ़ी दादी से मिलने गांव जा सकता था; अगर पहले पता होता तो वह कभी भी नहीं आती । मार्ग-भर, हंस-हंस नये जीजाजी को छेड़ने के सारे प्रोग्राम रेत में खड़े किए गए दुर्ग की भांति ढह पड़े । इस सामान्य से युवक के सामने वह कैसी अजीब ब्रीड़ा से संकुचित हो उठती थी।

'कहो हो सालीजी, एकदम ही चुपचाप बैठ गई, क्या अब अचानक अपनी पहाड़ी ग्राम-यात्रा पर पश्चात्ताप तो नहीं हो रहा है ।' परिहास-रसिक जीजा, बार-बार अपनी नवेली बहू की चूड़ियों भरी कलाई, शाल के भीतर ही भीतर मसले दे रहा था, यह अहल्या ने कनखियों से देख लिया ।

'चुप क्या हूं,' धीमे स्वर में वह बोली, 'उस दिन कन्यादान के कमरे में तीन घंटे तक अंगूठा पकड़कर भी संतोष नहीं हुआ क्या?'

'हो हो हो'–जीजाजी, सुन्दरी साली की मीठी ठिठोली से निहाल हो, गाड़ी के एक काल्पनिक झकोले का बहाना बनाकर अकारण ही, अपनी नवेली बहू के शरीर पर ढल पड़े और वह बेचारी संकोच से दूसरी ओर देह बचाती झुक गई।

'साली साहब, अब के तो हम कलकत्ता ज़रुर जाएंगे ।'

'सच कह रहे हैं जीजाजी! कब आएंगे भला, जून से पहले ही आइएगा' –अहल्या का स्वर उत्साह से हुमक उठा ।

'क्यों, क्या जून के बाद हमारे कलकत्ता आने पर कोई प्रतिबंध लग जाएगा,' जीजा ने कुछ तुनककर बड़े लाड़ से पूछा ।

'जून में पापा को अपने बिज़नेस टूर में स्वीडन जाना है, शायद मैं भी पापा के साथ चली आऊं ।' 'हाय अहल्या,' बसन्ती ने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए, 'तू छोटे कक्का के साथ मत जाना, हमारे पास आ जाना अहल्या, तब तक इन्हें मकान भी मिल जाएगा।' 'हां हां, ठीक ही तो है साली साहब । यहां सहज ही में कोई महरी भी नहीं मिलती, बसन्ती को भी सहारा हो जाएगा और महरी का अभाव तुम पूरा कर लोगी'–एक बार फिर अपनी उन्मुक्त सरल हास्य-लहरी से बस के विराट वपु को भूकम्प की भांति हिलाकर, जीजा बसन्ती की ओर झुक पड़े।

'छिः !' स्नेहमयी प्रताड़ना की दृष्टि से चार दिन के ताजे पति को फूल-गेंदे की-सी चोट मारकर बसन्ती हंस पड़ी : 'न जाने क्या-क्या बककर उस बेचारी को परेशान कर रहे हैं आप!'

मार्ग-भर के घुमावदार फेरे कुछ ही घंटों में पारकर वे बसन्ती के ननिहाल के गांव पहुंचे और बड़े उल्लास से, दूर चोटी पर बिखरे नन्हे-नन्हे मकानों के बीच, एक बड़ी-सी हवेली की ओर अंगुली दिखाकर बसन्ती बोली : 'देख अहल्या, वह रहा हमारा मकान, यहां से करीब एक मील और चढ़ना होगा ।'

'आस-पास कहीं कुली नहीं है क्या? धरणीधर ने फिर अहल्या को छेड़ा : 'उठाओ हो साली साहब, एक गठरी तुम और एक राजू, हम दोनों तो 'हनीमूनर'[1] हैं–आओ डार्लिंग,' कहते ही उसने बसन्ती की कलाई फिर पकड़ ली।

'छि:, देखो तो इन्हें-शरम भी नहीं आती, सामने ही बस का ड्राइवर चाय पी रहा है– बसन्ती ने झटककर हाथ छुड़ा लिया, ड्राइवर को उस नई जोड़ी की रासलीला देखने में बड़ा रस आ रहा था ।

'अच्छा जी, बस माफ करो, लो मैं ही उठाए चलता हूं।' एक भारी-सी टोकरी उसने उठाई, ऐयरबैग कम्बलरग देखते-देखते तीनों ही लाद-लूदकर चल दिए ।

बड़े-बड़े चीड़ के पेड़ों की बनी प्राकृतिक एवेन्यू के बीच चलना अहल्या को बड़ा भला लग रहा था । सरल स्कन्ध स्पर्श करती पहाड़ की शीतल बयार

उसे सुपारी, नारियल और मौलसिरी की सोना लुटाती बयार से भी मीठी लग रही थी । चारों ओर पर्वतमालाओं से घिरी होने पर भी वह एक विचित्र-सी घाटी थी, जिसके ओर-छोर पहाड़ी पारिजात, मदार और कुन्द-पुष्पों से ऐसे सुवासित हो रहे थे, जैसे कहीं अगरु चन्दन की ढेर सारी धूपबत्तियां जल रही हों । सीढ़ी से बने खेतों पर नई फसल का तारुण्य गदरा रहा था । छोटी-छोटी पथरीली छतों पर कहीं सोलह गजी काले लहंगे और रंग-बिरंगे दुपट्टे सूख रहे थे, कहीं स्तूपाकार सूखी सुनहरी घास के गट्ठों पर पड़ती अस्तगामी सूर्य की मन्द रश्मियां उन्हें तपे सोने-सा दमका रही थीं । आसपास के अलावों से उठती गोबर के धुएं से मिली, भीगी मिट्टी की सोंधी सुगन्ध से कुमाऊं की धरणी ने प्रवासिनी अहल्या का स्वागत कर वरण किया और अहल्या मुग्धा बनी झूम उठी। नि:शब्द इधर-उधर देखती, सरल ग्राम की अनुपम सुषमा को आंखों ही आंखों में पीती, वह दुर्गम चढ़ाई पार करती जा रही थी । 'बाप रे बाप, तुम्हारी ननिहाल है या तिब्बत के दलाई लामा का महल?' धरणीधर ने हांफकर हाथ का सामान दन्न से नीचे फेंक दिया और एक चट्टान पर बैठ गया : 'बैठो भई सब लोग, हमसे तो अब नहीं चला जाता ।'

राजू कुछ आगे बढ़ गया था, धरणीधर का कथन सुनकर हंसता हुआ लौट आया, सकुचाती अहल्या ने देखा, उसकी आंखों में एक दूधिया बचपनी मिठास थी । 'ठीक ही कहा आपने, हमारे दादाजी पहले तिब्बत ही में पहाड़ी ऊन का थोक व्यापार करते थे । वहीं के एक तिब्बती मठ का नक्शा उतारकर, उन्होंने इस मकान को बड़े शौक से बनवाया था ।' हाथ का बैग नीचे रखकर वह भी बसन्ती के पास बैठ गया । पास बैठी अहल्या ने फिर देखा, खाकी पैण्ट के कुछ उठ जाने से उसके पैरों की युगल टखनियां बताशे-सी सफेद लग रही थीं। बार-बार उस अपरिचित युवक के मोहक अवयव उसे किस गोरखधन्धे में फंसाए

लिए जा रहे थे, उससे उसे स्वयं झुंझलाहट हो रही थी, पर फिर भी वह पानी के तीव्र प्रवाह में बहते तिनके की-सी असहायता से, बही चली जा रही थी ।

'ऐसे कदम-कदम पर बैठोगे राजूदा, तब तो पहुंच चुके हम,' बसन्ती बोली और धूल झाड़ती उठ गई । 'देखते नहीं, अभी बद्री कक्का के मकानवाला मोड़ भी नहीं आया, चलो उठो ।'

बद्री कक्का के मकान का मोड़ पारकर जब वे आगे पहुंचे तो दिन ढल चुका था। बसन्ती के ननिहाल की विचित्र हवेली सन्ध्या के धुंधलके में गले तक डूब चुकी थी । वास्तव में, चौकोर, लम्बोतरे और बिना तराशे गए विचित्र आकार के पत्थरों से बनी एक ढालू चट्टान पर तिरछी खड़ी वह एक आलीशान इमारत थी–ऊंची-ऊंची जेल की-सी दीवारों पर उभरी छोटी-छोटी खिड़कियां हाथी की आंखों-सी ही बेमेल लग रही थीं । एक खिड़की के रेशमी पर्दे से मन्द रोशनी किसी काने की आंख की तरह बदसूरती से चमक रही थी। लोहे के द्वार को राजू ने बढ़कर खटखटाया और खटखटाते ही चर्र-मर्र शब्द के साथ पट खुल गए। लगता था उस जनहीन-सी दिखनेवाली हवेली का द्वार बहुत कम खुलता था । द्वार खुलते ही लालटेन की मन्द रोशनी में राजू, बसन्ती को देखकर बूढ़े नेपाली दरबान ने अपनी बत्तीसी खोल दी : 'वाह वाह, आमा आज तू खूब खुश हुन्या हों ।' उसके कंठस्वर में भी हवेली के द्वारों की भांति ही जंग लगा था । 'क्यों रे मानबहादुर, तू अभी मरा नहीं?'–राजू ने बड़े लाड़ से उसकी कुबड़ी पीठ थपथपाई।

'मरेगा कैसे? अभी हम हुजूर का शादी देखेगा, बच्चा खिलाएगा, जैसा हुजूर को खिलाया ।'

'तब तो मर चुका तू' राजू ने हंसकर कहा । मानबहादुर भी हंसता-हंसता लालटेन दिखाता उन्हें फिर एक संकरी-सी गैलरी से भीतर ले चला । अहल्या को न जाने कैसा भय-सा हो रहा था । बहुत वर्षों पहले वह एक बार मल्लिका मौसी के साथ लखनऊ के बेलीगारद का तहखाना देखने गई थी, ठीक वैसी ही सीलन और भयावने अंधकार की परिचित स्मृति ने उसे आतंकित कर दिया। लग रहा था, अभी-अभी कहीं से वैसे ही चमगादड़ों का दल उनके सिर के ऊपर मंडरा उठेगा, पर अचानक ही गैलरी की नीरस यात्रा समाप्त हो गई, गैलरी की दीवारों की बांहें धीरे-धीरे फैलती जा रही थीं । लग रहा था वे अब हवेली के किसी प्रकोष्ठ में पहुंच रहे थे। दीवारों पर चूने-गारे का कोई आडम्बर नहीं था, पिकासो के क्यूबिज़्म के-से सौन्दर्य का स्वामी वह महल एक विचित्र कला का सम्मिश्रण था–मोहनजोदड़ो की सभ्यता के विषय में वह पढ़ती ही आई थी, आज इतिहास के विस्मृत पन्ने जैसे जीवन्त होकर फड़फड़ा उठे । 'बजाई हो, दे खो को आछो!'

मानबहादुर ने अपनी नेपाली भाषा में हांक लगाई और उसकी गम्भीर हुंकार स्वयं प्रत्युत्तर बन, उसी की गूंज गहन गुहाद्वारों से टकराकर लौट आई । बहुत लाड़ उमड़ने पर ही वह मालकिन को अपनी भाषा में पुकार उठता था । 'बजाई' अर्थात् 'नानी' । उन्हें लेकर वह जिस गोल कमरे में पहुंचा, वह अपनी बनावट में संकरी गैलरी से एकदम ही भिन्न था । कमरे के अस्पष्ट धुंधलके में, एक बड़े-से जहाज़-से पलंग पर सन से बालों की एक वृद्धा

बैठी थी । उसके गले में एक बड़े-बड़े दानोंवाली सोने-मूंगे की मोहनमाला थी, सफेद बालों के नीचे उसका गोरा गोल-गप्पू-सा चेहरा ड्रेसडन की चीनी गुड़िया का-सा लग रहा था । आंखों की सफेद पलकों के नीचे नीली आंखें भी किसी मेम की-सी ही थीं । सहसा उन्मादग्रस्त आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं ।

'अरे, बदुरिया, देख क्या रहा है, शंख बजा,' कहकर वृद्धा ने बांहें फैला दीं । दौड़कर राजू और बसन्ती उससे लिपट गए और बजाई उन्हें झुक-झुककर ऐसे चूमने लगीं, जैसे दिन-भर बछड़े से बिछुड़ी गैया उसे चूम-चूमकर चाट रही हो ।

अहल्या और धरणीधर सकपकाए-से एक कोने ही में खड़े रहे। एक लम्बे पीतल के पानस में जलती घृतजोत रह-रहकर हवा में कांप रही थी और उसी कांपती लौ में वृद्धा नानी का तप्त कांचन वर्ण झुर्रियों में भी लपटें-सी मार रहा था। बसन्ती से वह सुन चुकी थी कि उसकी नानी अपने यौवनकाल में अपने सौन्दर्य के लिए पूरे कुमाऊं में प्रसिद्ध थीं । नेपाल के राजवंश में उनका जन्म हुआ था, किन्तु दासीपुत्री होने से भी उनका जीवन मां की भांति अभिशप्त होने से बच गया । बसन्ती के नाना बड़े रसिक प्रकृति के व्यक्ति थे । एक बार अपनी नेपाल-यात्रा में उनका परिचय नानी के परिवार से हो गया और उनके सौन्दर्य पर वे ऐसे रीझे कि कुमाऊं के समस्त महापंडितों की अवहेलना कर नानी को ब्याह लाए । उन्हें जातिच्युत कर दिया गया, इसी से वे अपनी नवेली बहू को लेकर, तिब्बत की प्रवास-यात्रा पर चले गए। कुछ साल पहले उनकी मृत्यु हो गई, तब ही से नानी को बीच-बीच में उन्माद और विस्मृति के दौरे पड़ने लगे । किन्तु आज सहसा उनकी विस्मृति दूर भाग गई थी । सबकी कुशल पूछते-पूछते नानी ने अचानक पूछा : 'क्यों री वसुली, तेरा दूल्हा क्यों नहीं आया?'

हंसती-हंसती बसन्ती ने नानी की गोदी से माथा उठाया : 'ये तो खड़े हैं ।'

'हाय राम, मैं मर गई । आओ हो जंवेज्यू (दामादजी), तुम भी किस कोने में छिपे रह गए? आओ आओ,' नानी ने अपने छोटे-छोटे हाथों की गुदगुदी हथेलियां फैला दीं ।

धरणीधर ने बढ़कर पैर छुए, जामाता की चिबुक स्पर्श कर नानी ने आशीर्वादों की झड़ी लगा दी : 'वाह, वाह, चन्दा की जोत, गुलाब का-सा फूल, जैसी मेरी वसुली, वैसा ही राजकुंवर-सा दूल्हा । जीरे, जीरे' (दीर्घायु हो) । ए कभी नेपाली भाषा में कभी पहाड़ी में आशीर्वाद देतीं, नानी सहसा तिब्बती भाषा का मंगलगीत गाने लगीं :

'इने' गै आसू जी हौंसू, नोगे मन्सा फलै लो
इन् ग नमजुंग रक्षिलौ, इंगै न्युगंठं सैदरलो।

'जंवेज्यू, समझे इसका अर्थ?' अपनी वैदूर्य मणि-सी नीली आंखों को चमकाती बजाई ने पूछा : 'हा-हा-हा, तुम क्या समझोगे? इसका अर्थ है : मेरी उमंग, आशा और तुम्हारी मनोकामना पूरी हो, मेरे इष्टदेव 'नमज्युंग' सबकी रक्षा करें और हमारी गृहदेवी 'न्युगंठं' सबको सहारा दें ।'

धरणीधर अवाक् देख रहा था, कौन कहता है ये पगली हैं? 'वसुली, मेरे सब गहने धरे हैं, आधे तेरे, आधे मेरे रजुवा की बहू के । मेरा 'च्युंग्च' (करेला के आकार का एक तिब्बती

गहना), मेरे कान के 'मुनड़े' तेरा और मेरा नाक का 'बीरा' चन्द्रहार सब तेरा और मेरा 'बल्डंग' (रुपयों की माला), मेरे 'नंग' (हाथ के तिब्बती कड़े), 'छकछयब' और 'द्विबा' (ब्रोच) मेरी राजू की बहू का ।'

एकाएक वसीयतनामे के बीच, बजाई की दृष्टि, कोने में दुबकी अहल्या पर पड़ी, 'वह कौन है? तीखे स्वर में उन्होंने पूछा, 'अरे आमा, यह तो छोटे कक्का की लड़की है, अहल्या । हाय, कैसी चुपचाप खड़ी रही तू, बसन्ती ने बढ़कर उसे आगे खींच लिया। अहल्या को अभी कुमाऊंनी ढंग से प्रणाम करना नहीं आया था । बंगाली ठप्पे से ठक से आमा के चरण-युगल स्पर्श कर उसने माथे से दोनों हाथ लगाए और आमा ने उसकी इस विचित्र मुद्रा पर मुग्ध होकर उसे गोदी में खींच लिया ।

'ऊरी ओ मद्धा,' वाष्यस्तम्भिक कण्ठ से वे बोलीं, 'तनिक पानस तो नज़दीक ला, राजू वसुली का मुंह तो रोज़ ही देखा है, अपनी इस नई चेली (पुत्री) का मुंह ठीक से देखूंगी । कल से फिर प्रदोष है, आज अच्छी तिथि है ।' आमा ने अपनी हथेलियों में अहल्या का चेहरा भर लिया । मद्धा सचमुच ही सात बत्तियों का जगमगाता पानस निकट ले आई। अहल्या का चेहरा लज्जा से लाल पड़ गया । वह ऐसे विचित्र प्रकार के स्नेह से परिचित नहीं थी । उसका सकपकाना देखकर बसन्ती जोर से ताली बजाकर हंस पड़ी । 'आहा,' आमा ने फिर विभिन्न भाषाओं में अनर्गल प्रलाप प्रारम्भ कर दिया, 'चन्दा की जोत, गुलाब का फूल, जैसा मेरा राजू वैसी बहू।'

एकाएक सब स्तब्ध हो गए। 'क्या बक रही हो आमा?' बसन्ती ने डपटकर परिस्थिति संभालने की चेष्टा की, 'राजूदा की अभी शादी कहां हुई? यह तो अपने कलकत्तेवाले छोटे कक्का की लड़की है, मेरे साथ घूमने आई है आमा ।'

'चल हट, मार थप्पड़ मुंह टेढ़ा कर दूंगी। हूं! कहती है राजूदा की शादी कहां हुई, तो तीस पैठ की किसकी शादी थी छोकरी? झुर्रियों पड़ा चेहरा तमतमा उठा।

'हाय राम, मैं कहां जाऊं,' खिलखिलाकर बसन्ती ने हंसी के मंजीरे-से बजा दिए : 'आमा री, वह तो मेरी शादी हुई ।'

'चल मुझे बना रही है, तेरी शादी में तौ पिछले साल मैं गई थी, हरामी साली! !' आमा का स्वर क्रमश: तीखा होता जा रहा था । मद्धा ने इशारे से बसन्ती को चुप रहने को कहा, ऐसे विस्मृति के दौरे पड़ने पर, मालकिन से तर्क करना व्यर्थ था।

'जाओ तुम सब बाहर, मुझे बनाते हैं, देखो तो ज़रा, कहती है राजू की शादी नहीं हुई– जाओ सब ।' कह सचमुच ही बजाई ने ऊपर तक चादर खींच ली और मुंह फेरकर लेट गई । बसन्ती पति और अहल्या के सामने कटकर रह गई । लगता था इधर ही आमा की अवस्था और बिगड़ गई थी । छि: छि:, अहल्या भी क्या कहती होगी? राजूदा न जाने कब पहले ही खिसक गए थे। मद्धा ने धीरे-से बसन्ती को ठसकाया : 'लली, दूसरे कमरे में चल, मैं चाय बनाकर लाती हूं। इन्हें बड़बड़ा लेने दो, थोड़ी देर में फिर ठीक हो जाएंगी ।' बसन्ती उठ खड़ी हुई और हाथ के इशारे से अहल्या और धरणीधर को बुलाकर जिस दूसरे कमरे में ले गई वह मकड़ी के जालों और धूल के अम्बार से पटा था ।

'क्या करूं, लली, मद्धा ने दो-तीन कुर्सियों की धूल झाड़कर आगे खींच दिया, 'देख ही रही हो, मालकिन की ऐसी हालत है, मैं अकेली जान हूं, कहां-कहां देखूं, क्या-क्या करूं? बहादुर से अब कुछ होता नहीं, मुझे भी लिवाने भतीजा कई बार आ चुका है, कहता है–चाची, अब तेरी उमर क्या नौकरी की रह गई है? जानती हूं लली, पर जहां सुख में मालकिन के साथ रही, क्या दुख में उन्हें छोड़ दूं? रजुवा के बाबू कई बार इन्हें लिवाने आए, पर मानती ही नहीं। एक यही कमरा तो रहने लायक रह गया है, इसी में तुम्हारा पलंग लगा दिया है । मैं चाय ले आऊं ।' हाथ का झाड़न कन्धे पर डालकर मद्धा चली गई । दो पलंग अहल्या और बसन्ती के लिए लगाकर मद्धा ने बहुत पुराना अखरोट का नक्काशीदार फायर स्क्रीन खींचकर दो मर्दाने पलंगों के लिए आड़ कर दी थी। बसन्ती ने उठकर दियासलाई के डिब्बे-सी खिड़कियां खोल दीं और हवा के सुमधुर झोंके से कमरा भर गया । प्रिमरोज़ की एक घूमती-घामती बेल पूरी खिड़की को घेरे थी। दीवार पर महारानी विक्टोरिया, जार्ज पंचम और नेपाल के सरकार के तीन विशाल तैलचित्र टंगे थे, एक ओर आमा और नानाजी की बड़ी-सी तस्वीर थी–मखमली पायदान पर अपने छोटे-छोटे पैर रखकर आमा ने साड़ी ऊंची उठाकर दोनों पैरों में पड़ी चांदी की पायजेबों को प्रत्येक कोण से दिखाने की चेष्टा की थी । मदीने की साड़ी पर लगी मखमली बेल की एक-एक गुलाब और पत्तियां तक स्पष्ट उतर आई थीं । नानी सचमुच ही परी-सी सुन्दरी लग रही थीं, पर कैसर की-सी मूंछों के बीच नानाजी के बंकिम स्मित ने पत्नी के सौन्दर्य पर भी विजय पा ली थी । द्वारों पर झूलते मखमली पर्दों को समय की चपेटों ने बुरी तरह क्षत-विक्षत कर डाला था । उनका रंग अब गहरे लाल से उतर फीका गुलाबी लगने लगा था, पर कहीं-कहीं पर उलटी और बखिया और तुरपन के बीच पर्दों का पूर्वयौवन, नानी के चम्पई रंग की भांति, अभी भी सुरक्षित था । एक कोने में बड़े-बड़े टूटे-फूटे जापानी फूलदान रखे थे, जिन पर धूल की कई परतों के बीच से एकआध चेरी झांकती दिख रही थी ।

'सबकुछ कितना बदल गया है,' एक लम्बी सांस खींचकर बसन्ती ने कहा, 'कभी सात-सात नौकर इन कमरों की धूल झाड़ते थकते थे और आज...,' बीच ही में आंधी की तरह राजू आ गया : 'जानती है वसुली– पिछवाड़े के आड़ू, सेब और आलूबुखारे के सारे पेड़ सूख गए, वही तो देखने गया था मैं–क्या आड़ू होते थे! एकदम बमगोला और आज ठूंठ खड़े हैं ।'

'मकान ही सूख गया तो क्या पेड़ नहीं सूखेंगे, खैर हटाओ भी राजूदा, मद्धा से कहो न, चाय जल्दी लाए,' बसन्ती दोनों पैर पलंग पर ही उठाकर बड़े आराम से बैठ गई । 'हां जी, तुम दोनों ने तो शरणार्थियों की तरह अपनी पुरानी जायदाद का ही रोना शुरू कर दिया है । न हो साली ज्यू, अब कुछ तार बदलो।'

जेब से सिगरेट निकालकर धरणीधर ने राजू की ओर बढ़ाया : 'यार, जब होते थे तुम्हारे औचर्ड में बमगोले-से आड़ तब तो हम थे नहीं, अब कुछ चाय-शाय पिलाओगे या बमगोलों की ही महिमा गाए जाओगे?'

मद्धा एक बड़े ऊंचे-से चांदी के पात्र में तिब्बती हरी चाय बनाकर ले आई । मक्खन, नमक और हरी चाय के विचित्र सम्मिश्रण को बकरी के दूध से गाढ़ा कर मद्धा ने छोटे-छोटे ताम्रकलशों में ढालकर सबको थमा दिया । एक अपरिचित सुगन्ध से कमरा भर गया ।

'क्या है, यार यह?' धरणीधर ने अरुचि से नाक चढ़ाकर पूछा ।

'चखकर देखो, अभी सारी थकान दूर हो जाएगी, यह तिब्बती चाय नहीं, मद्धा की बनाई अमृत की घूंट है ।'

बड़ी चेष्टा से अहल्या ने भी एक घूंट ली और घूंट के गले के नीचे उतरते ही एक अद्‌भुत स्फूर्ति से शरीर हल्का हो गया । 'मद्धा, बच्चे कहां गए सब, यहीं बुला दे,' आमा की चिड़चिड़ी तीखी आवाज़ से सब चौंक गए ।

'बुला ला सबको-सुना नहीं क्या कहा मैंने?' हाथ की चाय को खतम कर बसन्ती ने ही आमा की पुकार को शान्त किया : 'आ रहे हैं आमा, चाय पी रहे हैं सब।' 'नहीं चाय यहीं पी लेना!' चिड़चिड़ी, रूठी आवाज़ में आमा फिर भी चीखती ही रहीं । राजू उठकर बोला, 'चल न वसुली, मैं तो चाय वहीं पी लूंगा, मेरे लिए इसमें और बनाकर तू वहीं ले आना। उसके पीछे-पीछे बसन्ती, अहल्या और धरणीधर भी कमरे में पहुंचे, तो आमा, अपने पहाड़ी थुल्मे को सिर से लपेटकर, बैठी बड़बड़ा रही थीं । कुछ देर पहले उसके कल्पना के ताने-बाने को उलझाकर जो बसन्ती चली गई, उसके लिए उसने बसन्ती को अभी भी क्षमा नहीं किया था : 'कहता है राजू की शादी नहीं हुई, बस शादी एक इसी की हो सकती है और किसी की नहीं–कहना चाहती है कि आमा पागल है–मैं पागल हूं क्या?' आंखों में उन्माद की लाली उभर आई थी, पतले नथुने क्रोध से फड़फड़ाने लगे थे। राजू ने हंसकर बड़े लाड़ से अपना ताम्र कलश, दादी के मुंह के पास ले जाकर कहा : 'आमा, पीकर तो देख, कैसी बढ़िया बनी है?' और मनाई गई रूठी बालिका की भांति, आमा फिक् से हंस पड़ीं । एक क्षण में ही किसी कुशल बहुरूपिये ने जैसे अपना रूप बदल दिया : 'देखा हो जंवेज्यू, छोकरे ने मेरे होंठ ही जला दिए, क्या करूं–सब नौकर-चाकर मुए मेला देखने अल्मोड़ा चले गए। वसुली के नानाजी भी चल दिए शिकार को, नहीं तो तुम्हें बिन्सर घुमाते-फिराते ।' एक लम्बी सांस खींचकर आमा फिर चुप हो गईं । विस्मृत वैभव के युग की झांकी उनके स्मृति-पटल पर अभी भी वास्तविक रूप में उभर रही थी–इधर-उधर हाथ बांधे घूमते दरबान, बांदियां, अपनी घनी मूंछों को ऐंठ-ऐंठकर मुस्कराते वसुली के नाना आमा के उन्मादग्रस्त चित्त पर अभी भी मंडरा रहे थे ।

'ऐसा-वैसा है क्या हमारा बिन्सर? बारामण्डल का सितार कहते हैं इसे वसुली के नाना। कुमाऊं का कमिश्नर, नहीं तो यहीं हर गर्मी में अपनी कमिश्नरी भाड़ झोंकने लाता!'

वर्षों पूर्व बिन्सर ही कुमाऊं के कमिश्नर का समर सीट था, किन्तु धूल-गर्द के अम्बार से लदी आमा की हवेली ही तो अब उस युग का एकमात्र स्मृति-चिन्ह बची थी। 'वसुली! आमा फिर गरजीं।

'हां, आमा !'

'कल बहूरानी को कालबिश्ट की इष्ट पूजा को ले जाना, समझी।' बसन्ती एक अजीब चुप्पी से घिरी बैठी रही । घृतजोत की चार-पांच बत्तियां बुझ गई थीं । धीमे से प्रकाश में आमा के कल्पना-जगत् की बहूरानी बाहर भाग जाने को व्याकुल हो उठी । 'लली, खाना क्या बनेगा? थोड़ी-सी गुच्छी की सब्जी बनाकर तो मैंने रख दी है ।' मद्धा एक विचित्र-से द्वार को खोलकर न जाने कहां से प्रकट हो गई ।

'कुछ नहीं बनेगा, मद्धा, हमारे साथ पूड़ियां धरी हैं–पर कल सुबह हमें तड़के ही आश्रम जाना है, चाय तुम्हें भोर उठते ही बना देनी होगी । मैं चलूं आमा? खाना गरम कर उसी कमरे में खा लेंगे ।'

'नहीं,' आर्मी कमाण्डर का-सा कमाण्ड देकर, आमा तनकर बैठ गई, 'खाना हॉल में ही लगेगा, सुनती है मद्धा? डिनर सेट लगेगा, सेलर से सरकार की बढ़िया शैम्पेन निकाल, ले गुच्छा!' झन्न से आमा ने चांदी के गुच्छे को झनझनाकर पटक दिया । 'इब्राहिम खानसामे को डाक बंगले से बुलवाकर टर्की बनवा ले । डैनियल साहब के खानसामे से स्वीट पुडिंग बनवा लेना और मुर्गी के चूजों को सूप के लिए अभी से चढ़ा दे-मैं थोड़ी देर आराम कर लूं-जाओ तुम सब।' और फिर अपने थुल्मे की कफनी-सी लपेटकर आमा ने कछुए की भांति गर्दन भीतर कर ली। आमा को कम्बल में डुबकी मारते देख, बसन्ती चुपचाप खिसक गई और धीमे-धीमे पांव रखती अहल्या ने भी उसका अनुसरण किया ।

'बाप रे, बाप! आज लगता है आमा हॉल में डिनर खिलाकर ही मानेंगी !' बसन्ती हंसकर बोली, 'क्यों मद्धा, क्या हॉल की चाबी है इस गुच्छे में? खोलना ज़रा । अहल्या, हमारे नानाजी को राजपूत शैली के कुछ अनुपम चित्रों का 'कलेक्शन' उसी हॉल में पड़ा है । देखेंगे आप?' उसने अपनी गर्दन को एक झटका देकर धरणीधर से पूछा ।

'हां, हां, क्यों नहीं–पर इधर पेट भी कुछ विभिन्न शैली के चित्र मांग रहा है ।' राजू न जाने किधर खिसक गया था, बसन्ती गुच्छा लेकर फिर उनको एक संकरी सुरंग-सी गली में ले चली । कैसा भूल-भुलैयां महल था। बाप रे बाप ! मन ही मन सोचती, अहल्या अंधेरे में कभी जीजा से और कभी बसन्ती से टकराती बढ़ी जा रही थी । बहुत दिनों से न खोले जानेवाले कमरों में जो सीलन की तीव्र गन्ध भर जाती है वह द्वार खुलते ही ऐसे धमाके से बाहर निकली कि अहल्या ने नाक से रूमाल लगा लिया ।

'बाप रे, बाप-एकदम क्लोरोफार्म सुंघा दिया तुम्हारी बसन्ती ने साली साहब।' किन्तु बसन्ती, बिना एक शब्द कहे भीतर बढ़ गई । चट-चट कर उसने कई जोड़ा खिड़कियां खोल दीं । मकड़ी के ताने-बानों से जकड़े जाल, वातायन से आए झोंके से सहसा कांप उठे, और कई मकड़ियां त्रस्त होकर सर-सर कर ऊपर चढ़ गईं ।

एक लम्बी मेज़ पूरे कमरे की लम्बाई घेरकर मुर्दा-सी पड़ी थी । दीवारों पर टंगे विभिन्न राग-रागनियों के चित्रों पर ममता से हाथ फेरती बसन्ती की आंखें गीली हो आईं : देखिए, कितनी बढ़िया तस्वीरें हैं, यह जो तीसरा चित्र है इसे नानाजी किशनगढ़ से खरीदकर लाए थे, कैसा लगा?' धरणीधर को उसकी चित्र-प्रदर्शनी में कुछ विशेष रस नहीं आ रहा था; 'हम क्या जानें, भई,' झुंझलाहट से उसने कहा : 'हमने तो मुर्दों की ही चीर-फाड़ की है,

चित्रों की नहीं ।' 'छि:, न जाने क्या हैं आप तो, यह देखिए नानाजी के मारे शिकारों की टॉफी ।' दीवारों पर बड़े-बड़े सींगोंवाले बारहसिंगे, शेर और अरना भैंसों के सिर टंगे थे, जिनकी कांच की निर्जीव आंखों पर धूल की कई परतें जमी थीं । उस विचित्र कमरे के गतयौवन की कल्पना करती अहल्या खिड़की के पास पड़ी एक बड़ी-सी आरामकुर्सी पर धम-से बैठ गई। चारों ओर से खुली खिड़कियों से आते ठण्डी हवा के झोंके उसे बड़े भले लग रहे थे । अन्य कमरों की बन्द घुटन और घटाटोप अन्धकार के पश्चात्, वह खुला-खुला कमरा उसे एकदम ही ताज़े गुलदस्ते-सा लगा ।

'आज हम यहीं क्यों न सोएं बसन्ती–कितनी प्यारी-प्यारी हवा है।' खिड़की के जंगले से हाथ बढ़ाकर, उसने जंगलों पर लिपटी बेल की कपूर-पत्ती तोड़कर बालों में लगा ली ।

'हाय राम! यहां कैसे सोएंगे भला! कितने सालों से इस कमरे की सफाई नहीं हुई, चल अब खाना खा लें, यहां बिजली भी तो नहीं है । उस पर मिट्टी का तेल भी शायद सहज में नहीं मिलता । पता नहीं, राजूदा कहां चल दिए। उन्हें भी ढूंढ़कर लाना होगा ।' बसन्ती स्वयं ही घूम-घूमकर खुली खिड़कियां बन्द करती जा रही थी । 'जाएंगे कहां तुम्हारे राजूदा, उनकी तो पांचों अंगुलियां घी में हैं । है न सालीज्यू?' धरणीधर अहल्या के कान ही के पास झुककर फुसफुसाया । 'मतलब?' बसन्ती कुछ-कुछ समझ गई थी, पर एकदम ही भोली बनकर पूछ ही बैठी । 'मतलब क्या, रंग लगे न फिटकरी माल चोखा । तुम्हारी आमा क्या कम डिप्लोमेट हैं? चट मंगनी पट ब्याह रचा दिया और उस पर हमारी साली साहबा ऐसे शरमाने लगीं जैसे सचमुच ही नई बहू हों ।' और फिर अपने सरल हास्य से धरणीधर ने हॉल की धरणी कंपा दी ।

अहल्या का चेहरा लाल पड़ गया...अच्छा हुआ राजू वहां पर नहीं था, छि:, ऐसा भी क्या मज़ाक! जीजा भी हुआ तो क्या हो गया, परिचय तो सामान्य ही था ।...बसन्ती ने भांप ही लिया कि उसके पति का मज़ाक उसकी मेम-सी बहन को अच्छा नहीं लगा।

'छि:, इनकी बातों का ख्याल मत कर, जो मुंह में आया बकते रहते हैं, चल हम भीतर चलें, लीजिए, यह रही चाबी, अच्छी तरह दरवाज़े बन्द कर दीजिएगा, कुछ काम आपको भी करना चाहिए ।' चाबी का गुच्छा पटककर, वह अहल्या को खींचती बाहर चली गई । जिस कमरे में पलंग लगा था, वहीं पर खाने का प्रबन्ध कर, मद्धा पास की दुकान से दही लाने चली गई थी । पहले इन्हीं बच्चों के ननिहाल आने पर उन्हें कैसे-कैसे व्यंजन खाने का अभ्यास था । आज मालकिन ठीक होतीं, तो उन्हें साथ में लाई पूड़ियों का बासा थोड़े ही न खाने को मिलता! न जाने कहां से वह अचार, चटनी भी जुटा लाई थी। राजू कहीं से दो-तीन तीतर मार लाया था, उन्हीं को आग में बड़े उत्साह से भून-भूनकर मद्धा ने चांदी की तश्तरियां लगा दीं । खा-पीकर सब बैठे थे कि मद्धा बड़ी-सी दहकती अंगीठी में बांज़ के सूखे फूल ले आई । 'आमा क्या सो गई, मद्धा? बसन्ती ने फुसफुसाकर पूछा ।

'और क्या खुराक चढ़ा ली, फिर अब कल दस बजे तक कहां जग पाएंगी।' एक लम्बी सांस खींचकर, मद्धा चिमटे से ठूंठ के अंगारे उकेलने लगी। 'कितनी कोशिश कर दी लली। पर मुंह से लगी निगोड़ी कहीं छूटती है! उसने आमा का जिस खुराक की ओर संकेत

किया था, उसको समझकर बसन्ती पति के सामने कटकर रह गई । आमा को असल में एक तिब्बती नौकरानी ने अफीम की लत डाल दी। कुछ माफी मांगने के-से स्वर में बसन्ती ने कहा और समर्थन के लिए अपनी डरती आंखें राजू की ओर फेरीं, पर वह बिना कुछ कहे ही हाथ धोने के लिए उठ गया । आमा के विचित्र खर्राटे दीवारों को भेदकर उन तक पहुंच रहे थे। कुछ देर तक बातें करते-करते बसन्ती ने देखा कि अहल्या का हुंकारा स्वयं ही बन्द हो गया था। कैसी आश्चर्यजनक नींद थी अहल्या की! बोलते-बोलते ही ऐसे सो जाना तो बसन्ती ने उसका ही देखा था । अखरोट की लकड़ी के नक्काशीदार फायर स्क्रीन से उसके पति की पुष्ट बांह की झलक अस्पष्ट-सी दीख रही थी और बार-बार उस अस्पष्ट झलक की पुलक उसके मन-प्राण को उथला दे रही थी । नये पति से एक रात का बिछोह भी असह्य हो उठना बचपना नहीं तो और क्या था? वह देख रही थी कि उसका पति भी नई बहू और अपने बीच के साधारण व्यवधान की व्यथा से व्यथित हो बेचैन करवटें बदल रहा था । कैसा आश्चर्यजनक सम्बन्ध होता है पति-पत्नी का, जो चार दिन पहले एक-दूसरे से नितान्त अपरिचित थे, जिन्होंने सपने में भी एक-दूसरे को कभी नहीं देखा था वे ही अग्नि को साक्षी बनाते ही एकमन-प्राण हो उठे थे । कई बार बसन्ती के जी में आ रहा था कि वह दबे पैरों जाकर पति के पास लेट जाए, फिर गहन अन्धकार में उसका कल्पित दुःसाहस, उसके कपोलों को गुलाबी बना दे रहा था । छिः-छिः, इघर अहल्या लेटी थी और उधर राजूदा, ऐसी बेशर्मी भला क्या की जा सकती है? फिर वह चाहे जाकर पति के पार्श्व में सांस खींचकर लेटी रहे, धरणीधर क्या सांस खींचे लेटा रहेगा-बसन्ती को पाते ही उसकी सांस लोहार की धौंकनी-सी चलने लगती थी । और उतावले प्रणयी पति के नाना प्रणय-मधुर प्रसंगों का स्मरण करती बसन्ती भी सो गई । आंखें लगी हीं कि पास के घनद्रुमों पर भोर की पहाड़ी चिरैया चहकने लगी । वह उठकर खिड़की के पास खड़ी हो गई । कैसे मीठे-मीठे बोल होते हैं इन पहाड़ी चिड़ियों के । 'जुहों,' 'सिटौल,' 'घुघती' और 'तितुर'–एक-एक की परिचित पुकार की मिठास बसन्ती के कानों में वंशी-सी बजाने लगी। उसके पदचाप से मद्धा भी जगकर आ गई थी, उन्हें चाय पिलाकर उसने साथ का थर्मस भी भर दिया था ।

'मैं भी चलूं लली?' उसने बड़े उत्साह से पूछा।

'नहीं मद्धा, तुम यहीं बनी रहो, अामा के पास। आश्रम तक तो बड़ी तगड़ी चढ़ाई है, हम लोग तो शाम ही को लौट आएंगे जल्दी।'

---

1. सुहागरात मनानेवाले ।

बारह

जल्दी ही तीनों तैयार होकर घर से निकल पड़े, समतल मैदान के बीच करारी चढ़ाई सहसा उन्हें चुनौती-सी दे उठी। छोटी-छोटी पगडण्डियों पर सूखी फिसलती बांज़ की पत्तियों की तह-सी जमी थी । तीखी-तीखी 'पिरुल' को सुनहरी सूइयां चप्पलों के इर्द-गिर्द लिपटकर एड़ियों को छेदती जा रही थीं और अहल्या अपनी गुलाबी एड़ी से उन्हें निकालती बारम्बार पिछड़ जा रही थी । ऐसी करारी चढ़ाई से उसका कोई पूर्वपरिचय नहीं था, कहीं-कहीं पर मार्ग, पेड़ों की गहन पंक्ति से एकदम ही संकरा हो जाता था और कहीं प्रशस्त घाटी के बीच घूमती, बल खाती नटिनी-सी कोषी नदी किसी चतुरा नटिनी के-से ही मोहक अंगों की तोड़-मरोड़ से उसके चित्त को मुग्ध कर दे रही थी । कुली की पीठ पर टीन का फूलदार बक्स और नई करकराती दरी से बंधा बिस्तर लादकर दो पहाड़ी सिपाही शायद छुट्टियों में घर जा रहे थे । उनमें से एक लाल-लाल रत्ती-जड़ी, दुनाली पहाड़ी मुरली के रन्ध्रों में अपने क्लान्त श्वास के करुण-स्वर भर, अनोखी पहाड़ी स्वरलहरी से जंगल के ओर-छोर गुंजा रहा था। उसकी वंशी के स्वर में बिछोह की कैसी करुण व्यथा थी और सम्भावित मिलनबेला का कैसा मादक उल्लास था! उन्हें देखकर उसने मुरली बन्द कर जेब में डाल ली और बीड़ी सुलगाकर फूंकने लगा । दोनों ही पास की एक पगडण्डी से नीचे उतर गए, तो अहल्या ने देखा कि बसन्ती और धरणीधर उसे देखकर हंस रहे हैं ।

'क्यों हो साली ज्यू, उन्हीं सिपाहियों के साथ जाने का इरादा है क्या?'

और अहल्या भी हंस पड़ी, सचमुच ही तो वह बावली-सी उन्हीं के पीछे चली जा रही थी। 'हाय, सच, मुझे ध्यान ही नहीं रहा !' वह मुड़कर लौटने लगी ।

'क्यों नहीं, क्यों नहीं, राधा भी तो इसी वंशी की धुन के पीछे-पीछे घर-बार छोड़कर भाग गई थी ।'

'हां, और क्या,' बनावटी गुस्से से बसन्ती ने पति को धक्का दिया, 'सिपाही ही तो रह गया है मेरी बहन के लिए।'

'नहीं भई, होने को तो लपटन साब भी हैं, पर भई, अब हम कुछ नहीं कहेंगे, बसन्ती कहती है कि हम सस्ता मज़ाक करते हैं,' अपनी छड़ी से कंकड़ उछालता वह बहुत आगे बढ़ गया अपने साथी की ओर।

'यहीं कहीं पर एक झरना था, मुझे ऐसी याद पड़ रही है, या न राजूदा?' बसन्ती ने जोर से चीखकर पूछा । उसकी पुकार से राजू थमक गया। 'हां, यह रहा सामने के मोड़ पर, क्या प्यास लग गई तुझे?' हरी-हरी घास के बीच पहाड़ी झरने की क्षीण घारा टप-टप कर टपक रही थी। बसन्ती बड़े उत्साह से आगे बढ़ गई और मीठे चश्मे की कमज़ोर सूखी धार को देखकर उसका चेहरा लटक गया । 'छि:' यह तो एकदम ही सूख गया है, इससे भला

क्या प्यास बुझेगी?' 'रुक जा, मैं धार ठीक लगा देता हूं,' राजू ने मालू का बड़ा-सा पत्ता तोड़कर, सचमुच धारा के समस्त प्रवाह का ऐसा संकलन कर दिया कि पुष्ट जलाधार वेग से बह निकली । 'ले, अब पी, कितना पिएगी?' जेब से रूमाल निकालकर वह हाथ पोंछने लगा । पता जलधारा के वेग से कांप रहा था। 'आह कैसा मीठा पानी है। तू भी पिएगी, अहल्या?' परम तृप्ति से भीगे हाथों को मत्थे से लगाकर बसन्ती ने अभिषेक-सा किया।

'प्यास तो लगी है पर,' अहल्या सकुचा-सी गई ।

'कैसे पिऊं यही न? देख ऐसे,' बसन्ती ने उसके दोनों हाथों को अंजुलि बनाकर, उसे चश्मे के पास खींचकर रख दिया । अनाड़ी अन्दाज़ से पानी पीती, तृषाक्रान्ता अहल्या की हथेली से उछल-उछलकर जलधारा उसके पूरे चेहरे को भिगो रही थी । हंसती-हंसती अहल्या, खांसती, हथेली झाड़ती उठ गई, 'मुझसे नहीं पिया जाएगा भाई ।' पानी की नन्ही-नन्ही बूंदें उसकी पलकों और गालों पर मोती-सी उभर आई थीं । ब्लाउज़ से रूमाल निकालकर वह मुंह पोंछने लगी थी कि एक नवीन सत्य ने उसे मीठी-सी अनुभूति करा दी । धरणीधर के पीछे खड़ा राजू उसे एकटक देख रहा था । वह दृष्टि क्या रुसी, मोदी और रेक्सी, रौनेन की सौन्दर्य-स्तुतिपूर्ण दृष्टि नहीं थी? किन्तु जहां रुसी, रेक्सी और रौनेन की प्रशंसापूर्ण आंखें उसे एक विचित्र आतंक से आतंकित कर दिया करती थीं, इस दम्भी युवक की पैनी दृष्टि से वह सहमी क्यों नहीं? वह निश्चय ही दम्भी था, नहीं तो तुहिना भाभी की बहन, ताई की बाल्यसखी की भतीजी और भी बसन्ती की शादी में आई असंख्य कन्या-कुमारिकाएं सब क्या उसके लिए सामान्य ही थीं? जब भी वह उसकी ओर देखती वह बड़ी उदासीनता का आडम्बर रचाता दूसरी ओर देखने लगता । पुरुषों की स्तुतिजपार्चनवंदना का ही अहल्या को अभ्यास था । गौरमोहन बरुआ उसे 'प्रतिमा' कहा करते थे, 'आहा कैमोन मानिये छे आमार प्रतिमा के' (आहा, कैसी जंच रही है मेरी प्रतिमा), वे प्रायः ही उसे देखकर कहते। किन्तु आज तक वह यही सोचती थी कि वह राजू की दृष्टि में प्रस्तर-प्रतिमा मात्र ही है, अपनी विजय के उल्लास से मत्त होकर यह बड़े उल्लास से चढ़ाई चढ़ने लगी । आश्रम पहुंचने के कुछ पहले, पहाड़ की दुर्गम चढ़ाई, स्वयं ही किसी दुरूह पहेली की भांति सुलझ गई थी । सीधे चौरस मैदान के बीच एक पतला-सा मार्ग, किसी सूखी नदी के क्षीण कलेवर की भांति आश्रम तक चला गया था । पत्थर की ढालू छतों पर कुछ गेरुआ वसन सूत्र रहे थे, एक बड़ी-सी परात में आलुओं का पहाड़-सा लगाए, एक प्रौढ़ा वैष्णवी उन्हें छील-छीलकर टोकरी में रख रही थी। सिर मुंड़ाए एक बंगाली युवती-सी दिखती वैष्णवी, पत्थर के चौड़े-से चकले पर चन्दन घिसती, बड़ी ही मीठी आवाज़ में ज़ोर-ज़ोर से गा रही थी :

' बोलो हरि हरि बोलो,
हरि नामेर जप माला।'

निकट पहुंचने पर अहल्या ने देखा वह सांवली युवती नहीं, प्रौढ़ा थी, किन्तु उसके सुचिक्कन चेहरे पर शान्ति और संतोष की ऐसी अपूर्व आभा थी कि चेहरा किसी किशोरी का ही-सा लग रहा था। सहसा अहल्या का कलेजा धुकधुक करने लगा । यहीं कहीं अम्मा भी तो ऐसे ही सिर मुंड़ाए, अपने संसार की माया भुलाकर खो गई होंगी। पहले सन्दिग्ध

दृष्टि से उन्हें देखकर आलू छीलनेवाली वैष्णवी ने कीर्तनमत्त अपनी साथिन को ठसकाया । शान्त झील में ढेला मार देने पर जैसे मछलियां विचलित होकर एक ही स्थान पर जुट जाती हैं, कई मोटी दुबली वैष्णवियों के मुंड़े सिर, एकसाथ किसी गुप्त मन्त्रणा में से जुट गए । एक ही नहीं, दो-दो पुरुष और वह भी बिना किसी प्रकार की सूचना दिए। ‘ तोमरा बौशो, आमी देखछी गिये ’ (तुम लोग बैठो, मैं जाकर देखती हूं) कहकर हाथ का मोटा डण्डा संभाले वही प्रौढ़ा सांवली वैष्णवी आगे बढ़ आई-अहल्या ने देखा, उसकी ऊंची अगली सुगठित देह की गठन किसी पठान युवती की-सी ही थी।

स्पष्ट आंग्ल उच्चारण से उसने अंग्रेज़ी ही में पूछा : 'क्या काम है आप लोगों को? यह तो आश्रम है, पर्यटकों का पिकनिक स्पाट नहीं, बड़े ही रूखे कण्ठस्वर ने आगन्तुकों को चटाचट चांटे-से धर दिए। बसंती सहम-सी गई । ‘क्षमा कीजिएगा, हम यहां पिकनिक करने नहीं आए हैं, मुझे अपनी मां से मिलना है।" अहल्या का स्वर, उसकी रुखाई को चुनौती-सी। दे उठा।

'आपकी मां? हा हा हा,' वह प्रौढ़ा ज़ोर से हंसी । अहल्या ने देखा उसके बहुत-से दांतों पर सोने की कीलें जड़ी थीं, जो उसके मोती-सी दन्त-पंक्ति पर झकझक दहक रही थीं । ‘ कैसी मां? जानती हो नादान लड़की-यहां कोई किसी की मां और किसी की कोई पुत्री नहीं है ।' 'मुझे अपनी मां से मिलना है,' बच्ची की-सी ज़िद से अपने वाक्य को दुहराती अहल्या का चेहरा खीझ और क्लान्ति से लाल पड़ गया । ‘ अहा, इस आश्रम के प्रांगण में राग-द्वेष, काम-क्रोध सब उस धूनी में झोंककर प्रवेश मिलता है, गुस्सा थूक दे । आ चल, धूनी की भस्म दिलाकर तुम्हें आश्रम के भीतर ले चलूंगी, पर इन्हें' बड़ी विरक्ति और घृणा से राजू और धरणीधर की ओर अंगुली उठाकर वह बोली, ‘जाकर उस पेड़ के चबूतरे पर बैठने को कह दे, पुरुषों को हमारे आश्रम में नहीं आने दिया जाता ।’ अहल्या और बसन्ती को वह एक आंगन में जलती धूनी की ओर ले जाती, बिना धरणीधर की ओर देखे ही, उसे सम्बोधित कर बोली, ‘ आप लोग, सामने के मिहिल के पेड़ के नीचे बैठे, ये लोग दर्शन करके वहीं आ जाएंगी। वहां पर एक-दो बाबा लोग भोजन पा रहे हैं, इच्छा होने पर आप भी प्रसादी ग्रहण कर लें ।'

वह चली गई तो धरणीधर राजू का कन्धा थपथपाकर बोला : ‘ अब चलो मेरे यार, प्रसादी ही सही। बाप रे बाप! औरत है या तमंचा, साढ़े छै फुट से कार नहीं है । उस पर क्या अंग्रेज़ी बोलती है, तबीयत तर कर गई साली ।'

‘हां देख रहा था,’ राजू ने हंसकर कहा, 'तुम्हारी तो सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई थी। मिहिल के ऊंचे दरख्त के नीचे कई पत्थर जोड़-जाड़कर एक त्रिकोण-सा बना था । उसी पर दो पत्थरों पर तवा टिकाकर एक लंगोटिया बाबा रोटी सेंक रहे थे । दूसरे दुबले-पतले सींक-सी देहवाले बाबा राख में भुने गर्म आलुओं को भद्दी-भद्दी गालियां देते, बार-बार जलती अपनी अंगुलियों को चूमते-चाटते फिर गर्म आलुओं से उलझे जा रहे थे । ‘एस्साले कैसे गरमा रहे हैं । ठण्डा होने का नाम ही नहीं लेते । मार सालों की चमड़ी उधेड़ ।’

'तू क्यों गरमा रहा है, परमानन्द, ठण्डा होने दे ज़रा, फिर छीलना । अभी क्या जल्दी है, जा थोड़ा घी मांग ला माता लोगों से, तब साधू छककर भोजन पाएगा ।' घृत पकवान की कल्पना के बीच राजू और धरणीधर दाल-भात में मूसरचन्द-से आ गए, यह परमानन्द को सहन नहीं हुआ। 'हैं हैं, उधर ही राहो, उधर ही, बाबा लोगों की रसोई मत छूना, कौन जात हो? क्या काम है?' वह हाथ का गर्म आलू नीचे धरकर उठ गया था।

'कुछ नहीं, थोड़ा यहीं पर बैठकर सुस्ताएंगे, हमारे साथ की औरतें दर्शन को गई हैं,' राजू ने कहा और बड़े इत्मीनान से चबूतरे के एक कोने को रूमाल से झाड़कर बैठ गया । सकपकाया-सा धरणीधर परमानन्द के गुरु की गंजेड़ी लाल आंखों से बहुत डर गया था ।

'बैठो बच्चा, तुम भी बैठो,' गुरू ने कहा और फिर बड़े ज़ोर-से ' अलख' कहकर अपना चिमटा गाड़ दिया ।

'बाबा लोग चले हैं बदरी-केदार की यात्रा को, मांगते-मूंगते किसी से नहीं, किसी ने दे दिया, तो पा लिया, नहीं तो अलख-अलख। इस आश्रम की माता लोग बड़ी पवित्तर आत्मा हैं, बाबा लोगों का भण्डारा होता है यहीं पर साल में एक बार, बड़ा आनन्द आता है । हरिद्वार, प्रयागराज, चित्रकूट, नैमिषारण्य तक से बाबा लोग यहां पर चले आते हैं । तुम्हारे घर की माई लोग क्या बड़ी माताजी के दर्शन पाने आई हैं?' गुरु बाबा ने बालों से भरी अपनी काली भुजंग-सी जंघा पर चौताल का-सा ठेका दिया और पीठ सतरकर अपनी अंगारे-सी आंखें राजू के चेहरे पर टिका दीं । राजू को बाबा की खींचा-खींची कुछ पसन्द नहीं आई । इसी से वह उनके प्रश्न की अवहेलना-सी कर चुपचाप जूते की धूल झाड़ने लगा ।

गुरु बाबा ने हाथ के टिक्कड़ को दो-तीन बार पट-पट पटककर, राख झाड़ी और हंसकर बोले : ' बच्चा, तुम शायद हमें लंगोटिया सधुक्कड़ ही समझ बैठे हो । अभी-अभी भारत-साधु-समाज का भण्डार खाकर लौटे हैं, ऐसी खातिर हुई हमारी कि मन्त्रीजी ने हमें फूलों का हार पहनाया । हमने भाषण दिया, तो पूछो इस परमानन्द से कैसी तालियां बजी थीं ।'

' हा-हा-हा-हा,' कापालिक की-सी हंसी से वन गुंजाते गुरू महाराज अपनी महिमा के गुरुतर बोझ से स्वयं ही दुहरे हो गए, 'जा बेटा परमानन्द, माता लोग से थोड़ा घी मांग ला ।' परमानन्द थोड़ी देर में भीतर से एक पथरौटे में घी लेकर लौटा। गुरु महाराज ने घी गर्म किया, तो शुद्ध घी की सुगन्ध से धरणीधर के नथुने फड़कने लगे । भुने आलू घी में छौंककर बाबा ने रोटियां तर कीं और उनका अंबार लगाकर पालथी मार फिर अपनी जंघाएं ठोकीं । 'लो बच्चा, तुम भी प्रसादी छक लो।' धरणीधर को बड़ी ज़ोर से भूख लग आई थी। दो-दो रोटियों में आलू का भर्ता रखकर परमानन्द ने उन्हें थमा दिया। कहीं से वे हरी-हरी पहाड़ी मूली भी ले आए थे। गुरु महाराज ने रोटियों में से कुछ उठाकर परमानन्द को दीं और कचर-कचर मूलियां चबाते, रोटियों के बड़े-बड़े निवाले मुंह में ठूंसते, कौर मुंह में ही धरे बोले : 'वाह, क्या बढ़िया भर्ता बनाया है, क्यों बच्चा?"

राजू की गतिविधि से, बाबाजी शायद प्रसन्न नहीं थे, इसी से उनके प्रत्येक प्रश्न और उत्तर का माध्यम धरणीधर ही बन रहा था । 'हां बाबाजी, बहुत बढ़िया बना है। मान गए कि

आपके हाथ में रस है ।' धरणीधर को एक ही रोटी से तृप्ति हो गई थी। 'हा-हा-हा-हा,' गुरु बाबा फिर ज़ोर से हंसे, 'ये परमानन्द तो तीनों प्रकार से लंगड़ा है। लंगड़े तीन प्रकार के होते हैं जानते हो,' स्वर को गम्भीर बनाकर गुरु बाबा ने अपनी झाड़-झंखाड़-सी जटा की एक लट पीछे फेंककर कहा : 'देह पंगु, सुमति पंगु और कर्म पंगु–पैर तो इसका लंगड़ा है ही, पर बुद्धि का भी लंगड़ा है । न इससे रोटी बनती हैं, न सब्ज़ी, क्यों रे परमिया है न ठीक?'

परमानन्द ने शायद पूरी रोटी ही मुख में ढूंस रखी थी, जिससे उसकी दोनों भावनाहीन आंखें फटी पड़ रही थीं और चपटी भैंस की-सी नाक के नथुने फैल गए थे । ' ही-ही-ही-ही,' वह हंसने लगा।

राजू एक ही रोटी खाकर उठ गया और पास बनी एक समाधि के शिलालेख को पढ़ने लगा।

'तुम्हारा मित्र है क्या?' गुरु बाबा ने धरणीधर के पास कान ले जाकर सटा लिया।

' न, जी हां, मित्र भी है, और इनकी बहन मुझे ब्याही है,' धरणीधर कहकर सहसा बसन्ती के नामोल्लेख के साथ ही सजग होकर इधर-उधर देखने लगा । बसंती और अहल्या को गए बड़ी देर हो गई थी।

'बड़ा दम्भी लौंडा है,' बाबा दूर खड़े राजू की ओर देखकर स्वयं बड़बड़ाते जा रहे थे ।

'नहीं, बाबाजी, ऐसी बात नहीं है, उसकी आदत ही कम बोलने की है ।'

तेरह

धरणीधर मुड़-मुड़कर इधर-उधर देखने लगा । अहल्या, बसन्ती का कहीं पता नहीं था। बंगाली वैष्णवी उन दोनों को लेकर भीतर गई तो कई एक-से गेरुआ वसनों का बुन्देलखण्डी कछौटा-सा कसे, वैष्णवियां मिलीं। । उनके कार्यरत शान्त चेहरों पर किसी प्रकार की भी जिज्ञासा नहीं उभरी । एक वृद्धा वैष्णवी रामायण पढ़ रही थी। उसके पोपले मुख में शायद एक भी दांत नहीं था, किन्तु दन्तविहीन मुख से कण्ठ का माधुर्य तनिक भी नहीं क्षीण हो पाया था। 'ये लोग आई हैं बड़ी मां के दर्शन करने को,' बंगाली वैष्णवी ने बढ़कर रामायण-पाठ करती वृद्धा से कहा । 'मंगल को मां के दर्शन नहीं होते। इनसे कह दो बुध या शुक्र को आएं ।' वह फिर चौपाइयां पढ़ने लगी ।

' नहीं, पर ये तो बड़ी दूर से आई हैं, और बंगाली वैष्णवी ने वृद्धा के कान के ही पास जाकर कुछ कहा।

' मां तो आनन्दमूर्च्छा में हैं, न हो तो थोड़ा-सा द्वार खोलकर दर्शन करा दें । उनके ध्यान में तो व्याघात का प्रश्न नहीं उठता, पर ध्यान रखना, भीतर न जाएं ।

बंगाली वैष्णवी ने दोनों को इशारे से बुलाया और फिर एक दर्रे से आश्रम के सीमान्त पर ले चली । 'देखो बेटी,' यह कुछ दूर चलकर थमक गई और अपनी चौड़ी कमर पर दोनों लम्बे-लम्बे हाथ टिकाकर अहल्या की ओर मुंह कर बोली : 'बड़ी मां तीन दिन से आनन्दमूर्च्छा में हैं। उन्हें न अपने वस्त्रों का ध्यान रहता है और न आसपास का। तुम्हें किवाड़ के ओट से ही दर्शन कर लौट आना होगा, धीरे से, समझीं? आओ चलो मेरे साथ,' बिल्ली के-से दबे पंजे रखती वह बढ़ गई। दो लकड़ी के मोटे-मोटे द्वार बन्द थे, उन पर जड़ी लोहे की बड़ी कीलें, द्वार के कुण्डों की ही भांति ढीली-ढीली होकर लटक आई थीं। वैष्णवी ने द्वार धीरे से खोला । अहल्या के दोनों पैर कांप रहे थे। अपने हृदय की धड़कन को वह बेबस-सी एक हाथ से दबा रही थी। बसन्ती बार-बार कनखियों से उसी की ओर देख रही थी और वह पसीने से तर अपने छोटे रूमाल का हाथ ही हाथ में गोला बनाती एक ही जगह पर खड़ी थी ।

'आगे बढ़ो–वह रहीं बड़ी मां।' सामने एक विशाल संगमरमर की मूर्ति धरी थी। गुरु की प्रस्तर महिमा के चरणों पर बैठी थी ध्यानमग्ना नन्दी। मूर्ति की अडिग भव्यता से टक्कर लेती हुई वह भी एक अचला मूर्ति-सी ही लग रही थी। स्फटिक-सा गौर वर्ण, कमरे की घृतज्योति की आभा में दपदप दमक रहा था। दोनों आंखें बन्द थीं। चेहरे पर विकार, हर्ष, विषाद, चिन्ता, आवेग की एक भी रेखा नहीं थी। न वह किसी की पत्नी थी, न बहन, न किसी की चाची थी, न मां। आनन्द के किसी सूत्र को पकड़कर, वह स्वर्ग के सिंहासन पर बैठी थी। न अब पुत्री का वियोग था, न पति की अवहेलना । मल्लिका भी आकर उसके

चरणों पर पड़ती, तो वह क्षमादान दे सकती थी। कैसी अद्‌भुत शान्ति थी चेहरे पर, जैसे जयपुर के कुशल कारीगरों ने कोई सुन्दर देवी की मूर्ति गढ़कर स्थापित कर दी हो–अहल्या कभी मां की ओर देखती, कभी उसके गुरुदेव की मूर्ति की ओर । पद्मासन लगाकर बैठे गुरुदेव की भव्य श्वेत दाढ़ी, मुंदी आंखें, कन्धे तक बिखरे श्वेत केश और सरलस्मिति के बीच चेहरे का अविचलित गाम्भीर्य–सबकुछ कलाकार ने ऐसे जीवन्त रच दिए कि लगता था मूर्ति अभी-अभी बोल पड़ेगी ।

' अम्मा ' कहकर वह मां की गोद में लौटने को व्याकुल हो उठी । मल्लिका का मातृत्व क्षण-भर में ही व्यर्थ हो उठा । जिसने जन्म दिया था, उस जननी के साक्षात्कार ने उसे पल-भर में ही फिर बचपन की अहली बना दिया । आज तक उसके बाल्यकाल के पट पर लिखे उस मां के चित्र को स्पष्ट कर दिया, जो बार-बार उसे गोदी में चिपटाकर चूमती थी, जिसकी स्मृति उसकी सदा सूजी लाल आंखों तक ही सीमित थी, जिसके शरीर की सुगन्ध की स्मृति को मल्लिका मौसी के विदेशी सेण्ट की महक ने दबाकर दूर ठेल दिया था। वह क्षण-भर को भूल गई कि बसन्ती और वैष्णवी भी उसके पास ही खड़ी हैं। दोनों आंखों से बहती अश्रुधारा को पोंछने का प्रयास किए बिना ही, वह सहसा स्वयं ही अपनी सिसकियों से चौंक पड़ी । 'अब चलो बेटी,' वैष्णवी ने उसे धीरे से खींचा। वह चुपचाप सिर झुकाए आंखें पोंछने लगी । इतने वर्षों बाद मिली स्नेहमयी जननी को छोड़कर जाने के लिए वह किसी भी प्रकार अपने विद्रोही चित्त से समझौता नहीं कर पा रही थी–इससे तो वह न आई होती !

'चल अहल्या, अभी हमें घर भी तो पहुंचना है,' बसन्ती धीरे से उसका हाथ पकड़कर बाहर खींच ले गई ।

'कितनी सुन्दर हो गई है काखी–ऐसी तो पहले भी नहीं थी,' कहते ही बसन्ती झेंप-सी गई । पर कह वह ठीक ही रही थी । नन्दी के चेहरे पर जिस अनोखी सौन्दर्य-सुषमा का सहसा आविर्भाव हो गया था, उसका पहले सचमुच ही कोई चिन्ह नहीं था ।

'अहल्या, तुझे क्या काखी की याद थी ?' कुछ सकुचाकर बसन्ती ने धीरे से पूछा । पीछे-पीछे वैष्णवी आ रही थी।

बिना कुछ उत्तर दिए ही अहल्या ने सिर झुका लिया । बसन्ती समझ गई कि आत्मग्लानि से क्षुब्ध अहल्या, उस विषय के उल्लेख से ही विषादमयी हो रही है । एक बार पूरे आश्रम की परिक्रमा-सी कर वे तीनों फिर उसी कमरे में पहुंच गई, जहां रामायण पाठ हो रहा था–रामायण पाठ समाप्त हो चुका था, और एक बड़ी-सी चटाई बिछाकर एक नाटी, मोटी चीनियां चेहरे की वैष्णवी कांसे की थालियों को पोंछ रही थी ।

'हिरणमयी दीदी,' उसने बंगाली वैष्णवी से पूछा, 'आपका खाना भी क्या यहीं लगेगा?' ' नहीं, आज एकादशी है, मैं क्या तेरे लिए खाना खाकर अपनी तिथि भ्रष्ट करूंगी? जा इन लोगों के लिए, जो कुछ चौके में बना है ले आ, तुम दोनों बैठो बेटी–थोड़ा-बहुत खा-पीकर विश्राम करो, फिर जाना । मैं जाकर देखती हूं कि तुम्हारे साथ आए पुरुषों को भी कुछ मिला या नहीं ।' हिरणमयी देखने में जितनी रूखी लगती थी, वाणी उसकी उतनी ही

मीठी थी । अहल्या और बसन्ती चटाई पर बैठ गई । हिरणमयी उठकर बाहर देखने चली गई थी । कमरे की मिट्टीपुती दीवारों से अभी भी कच्ची मिट्टी और गोबर की खुशबू आ रही थी । लोहे के धूपदान की गुग्गल जलकर राख हो गई थी, पर फिर भी कमरा उसकी मृत सुगन्ध से तर था। आश्रम की शान्ति, एक मोटी चादर की तरह उस कमरे में फैली थी ।

'अहा, कैसी शान्ति है यहां। अहल्या, जी में आ रहा है। आज यहीं रह जाएं, है न?' बसन्ती ने अहल्या को ऐसे गहरे सोच में डूबते आज ही देखा या ।

वह बिना कुछ कहे अपने लम्बे-लम्बे नाखूनों को बार-बार देख रही थी, निराभरण तापसी जननी के वैराग्य ने, श्रृंगारिका अहल्या को गहरी उदासी में डुबा दिया था। अपनी रेशमी साड़ी, बड़े यत्न से तीखे मैनीक्युरर्ड नाखून सब उसे डंक-सा दे रहे थे। उसके जी में भी तो यही आ रहा था, वह अब कलकत्ता लौटकर जाए ही नहीं ।

हंसती-हंसती हिरणमयी चाबी का एक गुच्छा हिलाती धम से एक खिड़की खोलकर कूद पड़ी, तो दोनों चौंक गई। 'हा-हा-हा-हा', ज़ोर से हिरणमयी हंसी और उसके दांतों की सोने की कीलें, असंख्य बल्बों-सी चमक उठीं, 'ओरे बाबा, तुम लोग डर गई क्या? मैं तो देखने गई थी कि तुम्हारे साथ के पुरुषों ने कुछ खाया कि नहीं, सो खा-पीकर एक तो लेट गया है, दूसरा गांजे की दम लगा रहा है, ओरे बाबा कैमोन छेले!' (अरे बाप रे, कैसा लड़का है।) बसन्ती मुंह झुकाकर हंसने लगी। वह समझ गई कि दम लगानेवाला धरणीधर ही रहा होगा। प्रत्येक नये स्वाद को चखने का उसका सदा ऐसा ही उत्साह रहता है, ' लो, तुम लोग थोड़ा खा लो, फिर मैं यहीं पर एक चटाई डाल देती हूं, बड़े स्नेह से उसने चीनियां चेहरेवाली वैष्णवी के हाथ से दोनों थाल थाम लिए। बसन्ती को बड़ी भूख लग आई थी। थाली में मोटी-मोटी लाल सिंकी रोटियां थीं। उन्हीं पर एक-एक डली मक्खन की धरी थी, दो-तीन उबली सब्ज़ियां थीं और दो बड़े-बड़े कांसे के कटोरों में गरम दूध था ।

'छौंकी, भुनी सब्ज़ियां तो हमारे चौके में बनती नहीं, बेटी,' हिरणमयी ने थालियां आगे सरका दीं, 'जो कुछ आश्रम में उगता है, वही हमारा भोजन है और आश्रम की गऊ माता की ही स्नेह प्रसादी यह दूध है, लो, लो खाओ न! घर में भला ऐसा संकोच होता है, फिर तुम तो हमारी बेटी हो,' बड़े स्नेह से अहल्या की ठुड्डी छूकर उसने चूमा और एक लम्बी सांस ली।

अहल्या जान गई कि उस तापसी को अम्मा के अभिशप्त जीवन का पूरा इतिहास पता है–गहरी वेदना से उसकी दोनों आंखें छलछला उठीं। शायद हिरणमयी ने देख लिया। 'दुख क्यों करती है बेटी, तेरे किसी जन्म के पुण्य थे जो ऐसी सती की कोख में तेरा जन्म हुआ और यह भी अच्छा हुआ कि तुम आज आ गई, दिन-रात बड़ी मां मूर्च्छा में रहती हैं, कब समाधि ले लें क्या ठीक?' हिरणमयी उदास दृष्टि से बाहर देखने लगी।

'हिरणमयी दीदी, बाहर के बाबू लोग दीदी लोगों को बुलाने के लिए कह रहे हैं, चीनियां चेहरेवाली वैष्णवी ने अपनी बन्दगोभी-सा गोल चेहरा खिड़की से दिखाकर कहा।

'ओह, उठो अहल्या, सचमुच ही तो देर हो गई है । अभी तो कितनी दूर जाना है हमें ।' साड़ी की भांजें हाथ से ठीक करती बसन्ती हड़बड़ाकर उठ गई । अहल्या भी उठ गई, तो

बड़े स्नेह से उसकी पीठ थपथपाकर हिरणमयी ने कहा : 'कभी-कभी यहां आती रहना बेटी, तुम्हारी बहन की तो शादी हो गई है, इसी से उस पर हमारा उतना जोर नहीं रहा, पर तुम तो अभी स्वतन्त्र हो न?'

फीकी उदास दृष्टि का मूक उत्तर देकर अहल्या ने दोनों हाथ जोड़ दिए। उस पुण्यारण्यविहारिणी वैष्णवी को छोड़कर जाने में उसे कैसी व्यथा हो रही थी, वह कैसे कहती । बसन्ती चली जाएगी और उसे फिर एक बार पापा के संसार में जाकर घुल-मिल जाना होगा। । 'आपने हमारे लिए आज कितना कष्ट किया, कैसे धन्यवाद दूं' अहल्या ने कहा और अपनी पुष्ट बांहों में उसे भरकर हिरणमयी ने उसका माथा चूम लिया । 'ईश्वर तुम्हें सुखी रखें-कैसी ही विपत्ति पड़े, ईश्वर सबको सहने की शक्ति देता है बेटी, ईश्वर को मत भुलाना, वही नाम तेरा सम्बल बनेगा ।' ऐसी करुण दृष्टि से हिरणमयी बार-बार उसे देखती जा रही थी, जैसे उसके चेहरे के चारों ओर मंडराते विपत्ति के किसी अदृश्य बादल को उसने स्पष्ट देख लिया हो। । बसन्ती आश्चर्य से उस रहस्यमयी तापसी को देख रही थी, कैसी विपत्ति का उल्लेख कर रही थी वह। । अहल्या पिता की लाखों की सम्पत्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी, उस पर सौन्दर्य सम्राज्ञी का यौवन क्या कभी व्यर्थ रह सकता था?

बाहर काले बादलों ने न जाने किस अरण्य से आकर पूरे आकाश को घेर लिया था, पर्वत-माला को घने कुहरे ने निगल लिया था और हल्की-हल्की बूंदें पड़ने लगी थीं। ।

' ऐसे में क्या तुम्हारा जाना ठीक होगा बेटी, न हो तो आश्रम की अतिथिशाला खुलवा दूं?' हिरणमयी ने चिन्तित दृष्टि से आकाश को देखा।

'नहीं, नहीं, हम जल्दी निकल ही जाएंगे दीदी,' बसन्ती अहल्या का हाथ पकड़कर बाहर निकल आई ।

धरणीधर व्याकुल होकर पास ही चक्कर लगा रहा था । 'बाप रे बाप ! ! घर लौटने का भी ध्यान है या नहीं? देखा नहीं, कैसे काले बादल हैं, हद हो तुम दोनों, मैंने तो समझा तुमने भी वैराग्य ले लिया। । अब चलो जल्दी। ' नई-नई पत्नी पर रौब जमाना, धरणीधर को बड़ा अच्छा लग रहा था, वह भी उतनी सारी वैष्णवियों के सामने ! 'अभी-अभी तो हम लोगों ने खाया । कौन-सी ऐसी अबेर हो गई । उतार ही उतार तो है,' बसन्ती ने पति को भीनी-सी झिड़की दी, 'और राजूदा कहां गए भला ?'

'तुम्हारे राजूदा भी तो हैं एक सनकी, बड़ी देर जब होने लगी और तीनतीन बार बुलाने पर भी जब तुम नहीं आई, तो बौखलाकर चले गए। वह तो घर पहुंचते ही होंगे—अब ज़रा जल्दी करो, नहीं तो पहुंच नहीं पाएंगे ।'

चौदह

तीनों बढ़कर मिहिल के वृक्ष के पास पहुंचे, तो गुरू बाबा ने देख लिया। 'अच्छा, बिना बाबा से राम-राम किए ही चल दिए बच्चा ?'

'नहीं महाराज, ऐसा भला हो सकता है, सोचा इन लोगों को भी आपके दर्शन करा दूं। यह मेरी पत्नी है बसन्ती और यह मेरी साली अहल्या ।' बसन्ती ने झुककर बाबा के पैर छुए, पर अहल्या हाथ जोड़कर कुछ दूर ही खड़ी रही । लाल-लाल गंजेड़ी आंखों की धूर्त चावनी उसे कुछ जंची नहीं । बाबाजी के वैरागी चरण सुन्दरी बसन्ती के मनोज करों के स्पर्श से पुलकित हो उठे । वर्षों की दबाई वासना जाग्रत हो उठी, 'बैठो, बैठो, अभी क्या जल्दी है, बेटा परमानन्द, हमारा वह फोटूवाला अखबार निकालकर भाई लोगों को दिखा जरा, जो भारत साधुसमाज के जलसे में... ।' बीच ही में धूर्त बाबा की बात काटकर बड़ी रुखाई से अहल्या बोली : 'जीजाजी, चलिए न, अभी तो आप घर पहुंचने की जल्दी मचा रहे थे, मैं तो चल रही हूं,' कहती वह तेज़ी से निकल गई । बाबा का स्वर उसके कानों तक पहुंचा, 'ला बेटी बसन्ती, ज़रा हाथ देखूं तेरा–राजरानी की रेखा है आह आहा !'

कौन ऐसी स्त्री होती है, जो अपने हाथ की रेखाओं का भविष्य सुन के चौकन्नी नहीं हो उठती।

झुंझलाकर अहल्या कई पगडण्डियां कूदती-फांदती चली ही गई। बसन्ती वहीं से कहती जा रही थी : 'धीरे-धीरे जाना, हम अभी आ गए अहल्या, झरने के पास रुक जाना, अच्छा ?'

पर अहल्या रुकती कहां? झरना था ही नहीं — चारों ओर अर्जुन, मंदार और अंयार के वृक्षों से घिरी अहल्या, गहन अरण्य में खोकर रह गई थी। 'बसन्ती, जीजाजी,' वह बार-बार पुकारती पगडण्डियों के गोरखधन्धे में छटपटाकर रह जाती थी । उसकी व्यर्थ पुकार उसी तक लौटकर आ रही थी, गिरिकन्दराएं उसे उसी के स्वर में चिढ़ाती जा रही थीं : 'बसन्ती— जीजाजी–बसन्ती–जीजाजी! !'

अनजाने मार्ग की दुरूह ज्यामिति की एक रेखा भी जानी-पहचानी नहीं थी । वह निश्चय ही भूल में किसी दूसरी ही पगडण्डी को फांद गई थी। अब क्या करे, क्या लौट जाए? पर लौटेगी कहां, लौटने के लिए भी तो कई अपरिचित पगडण्डियां जहरीली नागिन-सी टेढ़ी-मेढ़ी कुण्डली मारे उसे डंसने को बढ़ी आ रही थीं । शत योजन विस्तीर्ण उस गहन वन का अन्धकार बढ़ता जा रहा था । पहाड़ी हवा न जाने किस सुदूर एवैलेंस पर अपनी छुरी की धार तेज़ कर उसकी हड्डियां रेत रही थी। सहसा किसी की पदध्वनि से भीगी पत्तियां भी चरमरा उठीं । कहीं-कहीं से झींगुर की ध्वनि आ रही थी शायद, किन्तु किसी का कण्ठ-स्वर ही था : 'बच्चा परमानन्द, एक भी गोली तूने साग में धर दी होती, तो शिकार न छिटकता

— वैसे तो साली दूसरी छोकरी ही तमंचा थी । यहीं से एक पहाड़ी छोकरी को ले जाकर मैंने हैदराबाद में सात हज़ार में बेचा था।'

'धीरे-धीरे बाबा, दीवारों के भी कान होते हैं,' धूर्त शिष्य का कण्ठ-स्वर एकदम ही करीब आ गया था । एक कंटीली हिंसालू की झाड़ी के पीछे डुबकी मारकर अहल्या तिरछी हो गई, उसका धाड़फाड़ धड़कता कलेजा मुंह को आ रहा था । ठण्ड और भय से कांपती देह चेतना खो रही थी ।

'अबे जा बे मुर्गी के, यहां कहां दीवारें घरी हैं । पर बच्चा, आज उन दो-दो परियों ने हमारी तबीयत बिगाड़ दी — एक भी मिल जाती... ।' और फिर बाबा की अवाच्य भद्दी कल्पना जंगली हिरनी-सी कुलांचें लेती मुखर हो उठी । अहल्या के दोनों गाल अंगारे से दहकते फटे पड़ रहे थे।

'हा-हा हा-हा, हो-हो-हो,' गुरु-शिष्य का अश्लील वार्तालाप उनके भयानक अट्टहास से भी अधिक भयावना था । कांटों से भरी झाड़ी की कंटीली पकड़ से अहल्या की दोनों हथेलियां लहूलुहान हो गई थीं । भय उसकी पकड़ को धीमी किए दे रहा था। प्राणपण से वह उस झाड़ी को पकड़े जा रही थी, किन्तु गुरु-शिष्य के बढ़ते कदमों के साथ-साथ उसका हाथ फिसलता जा रहा था । लगता था अब गिरी, अब गिरी, ज़रा-सा चूकी तो वह धड़धड़ाती उन्हीं कदमों पर जा गिरेगी।

विपत्ति के क्षण में मनुष्य विधाता के अस्तित्व को कैसे स्वयं ही जान लेता है । भूख लगने पर नवजात शिशु क्या जन्मदायिनी के स्तन को स्वयं ही नहीं ढूंढ़ लेता? वन के अन्धकार और हृदय के भय को चीरकर आश्रम की वैष्णवियों का समवेत कण्ठ-स्वर उसके कानों में स्वयं ही गूंजने लगा : 'श्री रामचन्द्राय नमः, रामभद्राय नमः, सीतारामाय नमः,' वह क्षण-भर को भूल गई कि दो-दो पाखण्डी विकराल महादानव-से बाबा उसी की ओर बढ़े आ रहे हैं । उसके सामने तो लकड़ी के बने चौखटे कर टिकाई बड़ी-सी रामायण धरी थी और नम्रमुखी वैष्णवियों के साथ वह भी अमृतस्वरूपी जाप में डूब गई थी । श्री रामचन्द्राय नमः, रामभद्राय नमः, सीतारामाय नमः ! कदम बढ़ते-बढ़ते आए और उसकी हरी साड़ी के छिटके आंचल को भी वन की हरीतिमा के धोखे में दबाते-कुचलते आगे बढ़ते-बढ़ते शून्य में विलीन हो गए ।

पन्द्रह

पसीने से तर अहल्या की चेतना जागरित हुई । भय से उसे अपनी पीड़ा का भी ध्यान नहीं रहा था । अब दोनों हथेलियों में कंटीले हिंसालू के असंख्य कांटे शूल-से चुभोने लगे । उसने एक उभरी चट्टान का सहारा लिया और नीचे झांका तो सिर चकरा गया — भयानक खाई को क्या वह पहले नहीं देख सकी थी? और क्या देखा होता तो ऐसे निर्भय, निस्संशय होकर लटक सकती । पहाड़ी बकरियां जैसे चट्टानों की तीखी धार पर अपनी देह को साधकर खड़ी हो जाती हैं वैसे ही वह भी कांपती खड़ी थी । एक बार उसने बड़े साहस से फिर नीचे झांककर देखा । खाई के नीचे किसी गाय या भैंस का कंकाल पड़ा था, उसी की भांति जंगल में भटक गई गाय ने उसी चट्टान से फिसलकर जान गंवाई होगी । 'ओफ !' वह सिर से पैर तक सिहर उठी, ज़रा भी पांव चूका होता, तो उसकी हड्डियां भी नीचे बिखरी होती । वह धीरे-धीरे नीचे उतरी। सामने की कामेत और नन्दादेवी की चोटियों से बादल हट गए थे। आकाश धुलकर उजला नीला छिटक आया था । सन्ध्या की धूमिल छाया चारों ओर अपनी कूंची फेर रही थी। अहल्या कुछ सोच नहीं पा रही थी। आगे जाने का प्रश्न ही नहीं उठता या । किसी भी मोड़ पर, उन विकराल दानवों से उसकी मुठभेड़ की सम्भावना हो सकती थी, तो क्या पीछे उन्हीं पगडण्डियों से लौट चले?

पत्तों की चरमर फिर हुई । अहल्या भय की उस अन्तिम अवस्था को पहुंच गई थी, जब आंखों की पुतलियां फैल जाती हैं । मानव-हृदय अपनी धड़कन रोककर भाग्य के किसी भी प्रहार के लिए अपने को प्रस्तुत कर लेता है । न वह हिल-डुल रही थी, न पहले की तरह इधर-उधर छिपने के लिए किसी चट्टान के संधान का उपक्रम ही कर रही थी। पत्तियों की चरमराहट बढ़ती आई । वन की अभेद्य स्थिरता को भेदकर राजू खड़ा था। पानी की बूंदों ने उसके सदा बने-संवरे बालों को दराबी की तरह चपटा कर दिया-था । कन्धे से झूलता बैग भी पानी से भीगकर चू रहा था, हाथ में किसी पेड़ की बनाई टहनी की छड़ी थी, जिससे लम्बी-लम्बी घास हटाता वह एकदम ही अहल्या से सटकर खड़ा हो गया ।

'मेरा ख्याल ठीक ही था, मैं जानता था कि आप पगडण्डियों के चौराहे ही पर उलझ गई होंगी, बसन्ती और धरणीधर को जाते मैंने बहुत पहले देख लिया था । मैं एक चट्टान पर बैठा था, उन्हें कई आवाज़ें दीं, पर उन्होंने सुना ही नहीं । जब आपको उनके साथ नहीं देखा तो बड़ी देर तक रुका रहा, फिर समझ गया कि आप अवश्य ही कहीं भटक गई हैं — बाप रे बाप, क्या चोट लग गई है हाथ में ?'

अहल्या की दोनों हथेलियों के अंजलिगत रक्त को देखकर राजू और निकट आकर झुककर देखने लगा।

रक्त से सनी दोनों हथेलियों से ही मुंह ढांपकर अहल्या सिसकने लगी । अभी तक अविचलित साहस से वह अपने को किसी लौह अंकुश से साधे थी, राजू को देखते ही वह अपने को रोक न पाई । आज तक वह इस युवक की एक-एक बात के लिए तरसकर रह गई थी । कल वह चला जाएगा और आज वह इतने स्नेह से उसकी कुशल पूछ बैठेगा वह भी ऐसे विकट क्षण में, जब उसका चित्त जीवन के जन्म-मरण की पेंगें लेकर दौर्बल्य से अभी भी कांप रहा था, वह क्या जानती थी?

कुछ पीछे खिसककर राजू चुप खड़ा रह गया, ऐसे क्षणों में क्या किया जाता है वह विवेकहीन युवक एकदम ही नहीं जानता था, आंसुओं से वह बहुत डरता था । वह रोने क्यों लगी, क्या उसने कुछ गलत बात कह दी ? अहल्या थोड़ी देर तक सिसकती रही; फिर स्वयं ही तटस्थ होकर उसने आंखें पोंछ लीं? देखिए, अंधेरा बढ़ता जा रहा है । अभी हम लोग नहीं चलेंगे तो शायद मैं भी आपको मार्ग नहीं दिखा पाऊंगा — चलेंगी क्या ?'

अहल्या की झुंझलाहट बढ़ती जा रही थी, क्या यह आदमी पत्थर का बना है? सिवाय रूखी-सूखी बातों के क्या इसके पास कुछ भी नहीं है? वह उठ गई । राजू फिर अपनी छड़ी से लम्बी घास हटाता उसी मार्ग से आगे जाने लगा, जिससे कुछ देर पहले दोनों धूर्त साधु उतर गए थे, 'नहीं, मैं इस रास्ते से नहीं जाऊंगी,' अहल्या का स्वर दृढ़ था, और वह सचमुच ही खड़ी हो गई, एक डग भी नहीं बढ़ी।

'वाह, क्यों? रास्ता तो बस एक यही है।' राजू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा । पेड़ों की घनी पंक्ति पीछे छूट गई थी। एक लम्बे चीड़ के वृक्ष की छितरी पत्तियों को चीरकर मुट्ठी-भर उजाला अहल्या के क्लान्त चेहरे पर उतर आया था । राजू की अवज्ञापूर्ण दृष्टि ने गिरगिट का-सा रंग बदल लिया था। अहल्या के सूखे अधरों से झांकती दाड़िमदन्त पंक्ति के जादू से पत्थर भी पिघल जाता, वह तो मनुष्य ही था । अहल्या पहले कुछ देर तक असमंजस में खड़ी रही, फिर उसने उन दोनों पाखण्डी गुरु-चेले की बात बता ही दी । उनका उल्लेख करते समय उसे अनायास ही उनके अश्लील वार्तालाप का स्मरण हो गया । कभी उसका चेहरा उसी लज्जा से लाल पड़ता जाता था और कभी उसी भय से सफेद-कली-सी खिलती, मुरझाती अहल्या, कहीं-कहीं पर गुरु बाबा की अश्लील भाषा को भी काटना-छांटना तक भूल जाती थी। 'बदमाश उचक्का कह रहा था कि मुझे ले जाकर कहीं बेचने पर वह मालामाल हो जाता, क्रोध से वह सचमुच ही कांप रही थी । उसकी बात सुनकर कभी न हंसनेवाला राजू ठठाकर हंस पड़ा : 'तो इसमें इतना गुस्सा क्यों आ गया आपको ? बात तो ठीक ही कही उसने ।' अहल्या का चेहरा तमतमाया देख राजू सिटपिटा गया कि क्या कह गया वह ! फौजी बिरादरी का हास-परिहास कहीं किसी सभ्य महिला के 'सामने दुहराया जाता है?

'क्षमा कीजिएगा, जस्ट ए स्लिप आफ टंग, आप घबड़ाइए नहीं, पहले तो वे दोनों हमें मिलेंगे ही नहीं, और अगर मिल भी गए, तो मैं निबट लूंगा ।' अहल्या चुपचाप उसके पीछे चल रही थी, वह कभी उसे छोड़कर ऐसे निकल जा रहा था, जैसे भूल ही गया हो कि कोई उसके पीछे भी है, क्या साथ चलने में छूत लगेगी? कुढ़ती, भुन्नाई अहल्या जान-बूझकर

पिछड़ गई, शायद मुड़कर फिर उसे लेने आए ? पर उसकी आशा व्यर्थ ही रही । अंधेरा इतना बढ़ गया था कि अहल्या को मार्ग भी नहीं सूझ रहा था, तिस पर हथेली में चुभे कांटे पके फोड़ों से दुखने लगे थे । मार्ग में पड़े एक बड़े-से पत्थर से ठोकर खाकर वह लड़खड़ाकर गिर पड़ी । 'ओफ,' एक हल्की-सी चीख दबाने का उसने कोई प्रयास नहीं किया ।

'अरे, चोट तो नहीं लगी ?' राजू का स्वर बहुत पास था ।

'नहीं,' रूखे स्वर में उत्तर देकर वह फिर चलने को उद्यत हुई ।

'लीजिए, आप इसे पकड़ लीजिए, यह पगडण्डी बड़ी ऊबड़-खाबड़ है ।' बढ़ाकर हाथ की टहनी अहल्या को थमा, राजू फिर चलने लगा। टहनी का दूसरा सिरा वह स्वयं थामे था । हाथ पकड़कर ले चलने में क्या इनकी फौजी अफसरी छोटी हो जाती? मन ही मन अहल्या जली-भुनी जा रही थी, पर सिवाय टहनी पकड़ने के और कोई चारा नहीं था। सूचिभेद्य अन्धकार को चीरते दोनों निःशब्द बढ़ते जा रहे थे, न जाने कितने पेड़, लताएं और झरने पीछे छोड़ते, वे काफी दूर पहुंचे कि एक टिमटिमाती रोशनी का आश्वासन मिला । 'जनार्दन पन्त की चाय की दुकान आ गई । यहां चाय पीकर, फिर तो समझिए कि पहुंच ही गए ।' अहल्या निरुत्तर चलती रही, इस आदमी को रूखी बातों का ही प्रश्रय मिलना चाहिए ।

छोटी-सी दुकान की छत बड़े-बड़े पत्थरों की बनी थी, उसी पर एक गोल चिमनी इंजन का-सा धुआं छोड़ रही थी। द्वार पर चीड़ के तख्ते लगाकर बूढ़ा जनार्दन शायद दुकान बन्द करने जा रहा था । राजू को पहले दूर से पहचान नहीं पाया । निकट आने पर अपने पोपले मुख की महिमा को हंसी से उद्‌भासित कर दोनों हाथ जोड़कर बोला, 'वाह लालज्यू, बड़ी अबेर कर दी आज, कब आए? आमा कैसी हैं? यह कौन हैं, बसन्ती लाली ?'

'नहीं पणज्यू, बसन्ती की बहन है। हम लोग आश्रम गए थे । बसन्ती और धरणीधर भी थे — बसन्ती की शादी हो गई है न, उसी के पति हैं धरणीधर ।' 'क्यों नहीं लला, क्यों नहीं होगी शादी भला ! पर शादी-ब्याह में भला इस

बूढ़े दुकानदार की किसे याद आती ! वह तो जब तुम दोनों छोटे थे,

कितनी बार इन्हीं कन्धों पर चढ़ाकर नन्दादेवी का डोला दिखाया है ।' बूढ़ा बड़े अपनत्व से बोलता जा रहा था, इसी रास्ते तो लली गई होंगी। रास्ते में अपने कुंवरजी को हमें भी दिखा जातीं, तो क्या अंधेर हो जाता? वह तो तुम अपनी घरवाली के साथ आज इधर से आ पड़े, सो मेरे धन्य भाग ! आओ-आओ, आज तुम्हारी बहूजी के लिए अपनी लिपटन की नई चाय का डिब्बा खोलूंगा ।' बूढ़े की भूल धारणा का खण्डन किए बिना ही राजू दुकान के भीतर चला गया ।

'आओ, बहूजी, तुम क्यों बाहर खड़ी हो ?' जनार्दन बड़े उत्साह से धुएं से काली पड़ी अपनी दुकान की एकमात्र बेंच को ज़ोर-ज़ोर से झाड़ने लगा, 'मैं बहूजी नहीं हूं,' अहल्या ने झल्लाकर कहा, पर उसका झल्लाना व्यर्थ गया । बूढ़ा कान से कम ही नहीं सुनता था,

एकदम वज्र बहरा था । 'नई-नई बहूजी आज पहली बार पेरी दुकान में आई हो, साक्षात् लक्ष्मीजी पधारी हैं, राम-सीता को आज एकसाथ बिठाकर आंखें ठण्डी करूंगा। हां, और क्या ?' सूखी लकड़ियों का ईधन अपने गोल चूल्हे में धधकाकर बूढ़े ने काली किटली चढ़ा दी। आहल्या खीझकर बेंच पर बैठ गई । छि:, न जाने कैसी आफत में पड़ गई थी वह। कांटों से छिदी हथेलियां सूज गई थीं । वह उन्हें ही उजाले में फिराकर कांटे निकालने लगी । राजू अपने भीगे झोले को एक खूंटी में टांग रहा था। उसने शायद अहल्या की सूजी हथेलियां देख लीं। 'इतनी खरोंचें कैसे लग गई? अरे ये तो कांटे चुभे हैं, देखूं,' उसी के पास बैठकर राजू ने उसकी दोनों हथेलियां थाम लीं। पहली बार उसका स्पर्श पाकर अहल्या झिझकने लगी, पर वह बिना किसी झिझक के बड़े मनोयोग से एक-एक कांटे को निकालता जा रहा था ।

'ओहो, बहूज्यू, किस कांटे की झाड़ी में गिर पड़ीं तुम, राम-राम ! ठीक से निकाल देना लला, ये साले बड़े विषेले कांटे होते हैं...,' बूढ़ा भी झुककर कांटे निकालने लगा– एकदम ही विवश-सी हो अहल्या सिर झुकाकर बैठ गई । कांटे निकालकर बूढ़े ने एक हरा-हरा मलहम लाकर लगा दिया और दुखती हथेलियों में अनोखी ठण्डक आ गई । चाय के गिलासों में चाय की सधी धार को गटपटाता जनार्दन भट्ठी में लकड़ियां झोंकता जा रहा था । 'इतनी अबेर कहां जाओगे लला! एक थुल्मा धरा है, पुआल का गद्दा भी पड़ा है, मियां-बीवी यहीं सो जाओ, कल सुबह चले जाना ।'

'नहीं, नहीं, हम अभी जाएंगे,' उसके प्रस्ताव मात्र से ही अहल्या सिहरकर भाग उठने को उतावली हो उठी।

'बैठिए भी, बकने दीजिए न उसे । उसके कहने से ही हम यहां नहीं रुक जाते । धीरे-धीरे भी चलेंगी, तो भी हम नौ बजे तक पहुंच ही जाएंगे ।' टीन के बड़े, कालिख से काले कनस्तरों में कांच लगे थे, जिनमें न जाने कितने दिन के बासी बन और बिस्कुट धरे थे। हाथ डालकर जनार्दन दो-तीन निकालकर बोला : 'लो, लला, ये खाओगे?'

'नहीं, जनार्दन,' हाथ से इशारा कर वह चाय पीने लगा । ठण्ड से अहल्या कांप रही थी, थकान और सर्दी के बीच उसे चाय का गिलास, गर्म पानी की थैली की-सी गर्मी दे रहा था । बार-बार वह दोनों हथेलियों के बीच गर्म गिलास को घुमाकर पीती जा रही थी।

चाय पीकर राजू ने जेब से एक पांच का नोट जनार्दन को थमा दिया । वह अपनी बोरी की गद्दी उठाकर मुट्ठी पर रेज़गारी से चवन्नी, अठन्नियां बीन रहा था कि हंसकर राजू बाहर निकल आया । 'रहने दो जनार्दन, रेज़गारी नहीं चाहिए ।'

आश्चर्य से जनार्दन की कीचड़ भरी आंखें बाहर निकल आईं, 'दो गिलास चाय के पांच रुपये? नहीं, नहीं, बाप रे बाप, ऐसी ठग-विद्या उपर-भर नहीं करी लला, अब जब ये हाड़ चिता में चटखने को तैयार हैं, तब क्या गू खा लूं? राम-राम, लो यह रहे चार रुपये बारह आने।'

'नहीं, जनार्दन, यह चाय का हिसाब नहीं है, बहुत पहले तुमने मेरे लिए एक गुलेल बनाई थी, याद है न? तब तुम्हीं ने तो कहा था कि लला जब बड़े हो जाओगे, तो इसके पांच

रुपये दे जाना-समझे?'

चीखकर उसकी सन्दर्भ-सहित व्याख्या, बूढ़े के कानों को चीरकर शायद उस तक पहुंच गई । 'हो-हो-हो,' वह जोर से हंसता जा रहा था और उसी हंसी के बीच, अहल्या को चलने के लिए कहकर राजू फिर बढ़ गया।

थोड़ी दूर चलने पर ही उन्हें आमा की हवेली की अस्पष्ट रोशनी दीखने लगी । मानबहादुर शायद उन्हीं को ढूंढ़ने लालटेन लेकर निकल गया था। बहुत दूर जाने तक भी जब उनका कोई पता नहीं लगा, तो वह निराश होकर लौट रहा था, उनके पैरों की आवाज़ सुनकर अपनी कुबड़ी पीठ को सतर करने का प्रयत्न कर वह हंसता हुआ बढ़ आया । 'कहां-कहां ढूंढ़ा आप लोगों को, कहीं चला गया था हुजूर?'

'जहन्नुम में,' कहता हुआ राजू अहल्या को पीछे ही छोड़ धड़धड़ाता आगे बढ़ गया। अहल्या की आंखों में अपमान के आंसू छलक आए, उसका सहवास क्या उसे ऐसा ही अप्रिय लगा होगा? बसन्ती और धरणीधर दोनों ही भागते गेट तक आ गए । 'कहां छूट गई थी तू, मेरी तो फिकर के मारे जान ही सूख गई,' बसन्ती उससे लिपट गई, जैसे वह बरसों बिछुड़ी अहल्या हो। 'हां, हो सालीज्यू, हम भी तुम्हारे विरह में आधे हो गए, पर तुम तो मजे से हनीमून मना रही होंगी ।'

'शरम नहीं आती आपको, जब देखो तब अपनी शहनाई छेड़ देते हैं । इतना थककर आई है बेचारी, हाय राम ! यह हाय में क्या हो गया?' जनार्दन के विचित्र हरे मलहम के लेप ने हथेली की खरोंचों पर ठण्डक तो पहुंचाई थी, पर रक्त के साथ वह भी सूख गया था और जितनी चोट लगी थी, उससे कहीं अधिक दिखने लगी थी। '

'कुछ नहीं, खरोंचें लग गई थीं,' अहल्या ने हथेली पीछे कर ली।

'देखूं-देखूं।' धरणीधर उसकी दोनों हथेलियां पकड़कर उसे कमरे के उजाले में खींच ले गया । राजू हाथ-मुंह धोकर तौलिये से रगड़-रगड़कर पोंछ रहा था, उसे देखते ही अहल्या फिर झल्ला उठी, 'छोड़िए, जीजाजी, कुछ भी नहीं हुआ, हल्की खरोंच है, कल तक ठीक हो जाएगी ।' धरणीधर डॉक्टरी मनोयोग से उसकी हथेलियां देखे जा रहा था । कितने दिनों बाद तो सुन्दरी साली की हथेलियां पकड़ में आई हैं और कहती हो छोड़ दो, जाओ जरा मेरा बैग तो ले आओ, उसमें कहीं डेटोल की शीशी पड़ी है, रुई भी ले आना ।' रुई से हाथ की खरोंचों को धो-पोंछकर धरणीधर ने पट्टी बांध दी।

'खाना मंगवाओ जी, अब तो आंतें बुलबुला रही हैं-अभी तक सालीज्यू की चिन्ता ने भूख-प्यास सब भुला दी थी।'

'मैं कुछ नहीं खाऊंगी जीजाजी, आप लोग खाइए। बिलकुल भूख नहीं है । मैं तो चलकर सोती हूं।' वह उठकर बगल के कमरे में चली गई । उसके जाते ही बसन्ती ने धरणीधर को चीरकर रख दिया, 'आपने उसे नाराज़ कर दिया । जब देखो, तब उसे ही छेड़े जाते हैं, राजूदा को भी कभी बड़ा बेढब गुस्सा आता है । भगवान के लिए अब कोई ऐसा मज़ाक मत कर बैठिएगा,' वह सहसा गिड़गिड़ाने लगी। 'देखेंगे, भई, वायदा हम नहीं कर

सकते, एक ही शर्त पर कर सकते हैं, कहकर नवेली पत्नी को छेड़ता वह उसके मुंह के पास ही अपना मुंह ले आया ।

'छिः-छिः, राजूदा आमा के कमरे में गए हैं, आते ही होंगे । शरम-लाज क्या कुछ नहीं है आपको! !' पति को जबरन पीछे ठेलती वह उठ गई । 'एक बार अहल्या को बुलाकर लाती हूं। देखूं, क्या कर रही है?'

सोलह

अहल्या पलंग पर लेटी, दोनों पट्टी बंधी हथेलियां छाती पर धरे, छत को देख रही थी। बसन्ती को देखकर बैठ गई । 'हाय, थोड़ा तो खा ले अहल्या, मद्धा ने तीन-तीन सब्जियां बनाई हैं। क्या तबीयत ठीक नहीं है? तू भाग क्यों गई बता तो? त्रिकालदर्शी बाबा थे अहल्या—सच! तू रुकी होती तो तेरा भी हाथ देखते !' वह उसके पास बैठकर उसकी चूड़ियां सहलाती बोलती जा रही थी । बोलने में उसके मुंह में बार-बार थूक भर जाता था और रसीले ओंठ और भी रसीले लगने लगते थे। 'क्या बताया तेरे बाबा ने?' अहल्या ने फीकी मुस्कराहट के बीच पूछा ।

'कहते थे- !' वह लाज से गुलाबी पड़ गई। इधर-उधर देखती वह धीरे से बोली, 'कहते थे मेरे तीन बेटे होंगे ।' 'मुझसे भी उन्होंने कुछ कहा जानती है,' और गम्भीर होकर अहल्या एक ही सांस में उन धूर्त पाखण्डियों की सारी बातें बतला गई । बसन्ती स्तब्ध होकर पत्थर की बुत बन गई, एक ही पल में उसकी श्रद्धा का मन्दिर ढह गया–तीन-तीन किलकते पुत्रों का सुस्वप्न एकाएक दु:स्वप्न मात्र बनकर रह गया । इसी बीच मद्धा उन्हें खाने के लिए बुलाने आई और बड़े यत्न से उन्हें खिलाकर बोली : ' आमा जग गई हैं, एक बार उस कमरे में भी हो आना, वैसे आज गुमशुम ही बैठी हैं, कभी-कभी मालकिन ऐसी ही गुमशुम बनी घण्टों बैठी रहती हैं ।'

बसन्ती, राजू और धरणीधर ही गए, अहल्या थकान का बहाना बनाकर सो गई ।

'अहल्या,' एक बार बसन्ती ने निकट आकर धीरे से कहा, 'सो गई है और नींद भी ऐसी है, इस लड़की की बाप रे बाप-एकदम ही घोड़ा बेचकर सोती है,' वह बड़बड़ाई । थोड़ी देर तक धरणीधर बेसुरी लय में गुनगुनाकर स्वयं ही चुप हो गया ।

खिड़की से आती सूर्य की प्रखर किरणों की चकाचौंध से अहल्या की आंखें खुलीं, तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठी । पास के तीनों पलंग खाली थे, खाली ही नहीं उनके बिस्तर फिर से लगाकर पलंगपोशों की एक-एक शिकन ऐसी दुरुस्त थी कि लगता था उन पर सोनेवाले बहुत पहले ही उठ गए हैं। अहल्या कम्बल फेंककर खिड़की के पास खड़ी हो गई । आज तक क्या उसकी किसी पर्वत-यात्रा ने उसके चित्त को ऐसे अनुपम आह्लाद से भर दिया था?

'हाय तुम कब उठीं? अभी-अभी मैंने मद्धा को देखने भेजा, तो लौटकर बोली — वहां तो ऐसे सो रही है कि नगाड़े बजाकर भी शायद नहीं जगेगी,' दोनों हाथ एक-दूसरे से रगड़कर वह सूखा आटा निकाल रही थी ।

'तूने मुझे क्यों नहीं जगाया, सुबह ही सुबह यह क्या बनाकर आई हो ?' 'हाय राम! अब सुबह धरी है, दस बज गए । राजूदा को नौ बजे की बस पकड़नी थी । उन्हीं के लिए

नाश्ता बनाया । तुझे ऐसी गहरी नींद आई थी कि उठाने में कसक लगी, फिर मद्धा तो मदद कर ही रही थी । तू भी हाथ-मुंह धो ले । ये भी आते ही होंगे, राजू भैया को बस-स्टैण्ड तक पहुंचाने गए हैं,' बसन्ती फिर चली गई।

हाथ-मुंह धोकर उसने हाथ की पट्टियां खोल दीं, पिछली रात का कोई भी स्मृति-चिहन वह नहीं रहने देगी। एक-एक कर उसने बैग में इधर-उधर फैली चीजें रख दीं । एक थाल में नमकीन पूड़ियां और हल्दी से पीले छौंके आलुओं की खुशबू से कमरा तर करती हंसती-हंसती बसन्ती आ गई। पीछे-पीछे पसीना पोंछती मद्धा थी ।

'आ, चटपट नाश्ता कर लें। ये तो अब आएंगे नहीं, नाश्ता करके गए हैं; कह रहे थे कि ठीक समय पर तुम लोग बस-स्टैण्ड पर पहुंच जाना । चाय पीकर मैं तुझे इष्ट के मन्दिर दिखाने ले चलूंगी ।' अहल्या को भूख नहीं थी, पर बसन्ती के चटखारे ले-लेकर खाने का ढंग ऐसा था कि उसकी भी भूख जग गई। 'आमा तो खुराक पाकर फिर सो गई, अब तो जगेंगी नहीं। मानबहादुर हमारे बैग ले चलेगा, मन्दिर से ही हम नीचे उतर जाएंगी ।' अहल्या को किसी प्रकार का उत्साह नहीं रह गया था, पर वह अनमनी-सी तैयार होने लगी। आमा अफीम की पिनक में पड़ी थीं, इसलिए उनसे विदा लेने का प्रश्न ही नहीं उठता, बसन्ती ही अकेली उनके पैर छूने चली गई, अहल्या चीजों को बटोरकर बैग में रख रही थी कि उसे बिजली का-सा झटका लगा । राजू उसकी एक जासूसी पुस्तक पढ़ रहा था और शायद वहीं भूल गया था; अहल्या उसे उठाकर रखने लगी कि पट से उसके पन्नों से रेक्सी का उसके नाम आया एक कार्ड नीचे गिर पड़ा। अहल्या का कलेजा धकधक कर उठा—छि:-छि:, क्या सोचता होगा वह कि उसके मित्र ऐसे ही निर्लज्ज और बेहया हैं। रेक्सी ने उसे अल्मोड़े के पते पर ही वह कार्ड भेजा था, उसमें अहल्या का ही एक पेंसिल स्केच बना था और उसके नीचे लिखा था—'माई लव ।' छि:-छि:, राजू उसे रेक्सी की प्रेयसी ही समझे चला गया था—अहल्या ने कार्ड को लिफाफे में डालकर ही उस पुस्तक के भीतर रख दिया था और फिर वह विवाह की हड़बड़ी में उसके विषय में सबकुछ भूल गई थी । कार्ड के टुकड़े-टुकड़े कर अहल्या ने खिड़की के बाहर फेंक दिया था । बसन्ती उसे बुलाने आई तो वह बैग लिए तैयार थी।

एक सुरंग के भीतर होकर वह उनके इष्ट के मन्दिर में पहुंची । काल-भैरव की प्राचीन मूर्ति मन्दिर के ही अनुरूप थी । देव-प्रतिमा के सामने ही एक छोटी-सी बावड़ी थी, जिसके ऊपर नाशपाती का एक ऊंचा दरख्त मन्दिर के पूरे अहाते को घेरे खड़ा था । कुछ सूखी पत्तियां बावड़ी के हरे-से पानी में कागज की छोटी-छोटी नावों की मंथरगति से तिर रही थीं। थैली में से निकालकर बसन्ती ने नारियल, सिन्दूर, सुपारी, वस्त्र चढ़ाकर अहल्या को भी कुछ पुष्प थमाए : 'ले तू भी चढ़ा दे, बड़े वरदायी हैं, जो भी मांगो वही दे देते हैं ।' फिर वह आंखें मूंदकर न जाने किस मनोकामना की पूर्ति के लिए आंचल फैलाकर खड़ी हो गई ।

'कैसी सरल श्रद्धा है इसकी और कैसा अटल विश्वास !' अहल्या सोच रही थी, वह स्वयं हाथ के फूल हाथ ही में लिए कालभैरव की मूर्ति की ही अचल भंगिमा में खड़ी थी। काश, वह भी बसन्ती के-से सरल विश्वास से कुछ मांग सकती !

बसन्ती माथा टेककर उठी, तो अहल्या हाथ में व्यर्थ पुष्पांजलि लिए खड़ी ही थी। ‘अरे, फूल चढ़ाती क्यों नहीं? चौंककर पसीने से कुम्हलाए फूल चढ़ाकर अहल्या बाहर आ गई । बसन्ती मार्ग भर चिड़िया-सी चहकती रही। बस-स्टैण्ड पर बस उन्हीं का इन्तज़ार कर रही थी। उनके बैठते ही छूट गई ।

सत्तरह

जब वे अल्मोड़ा पहुंचे तो अंधेरा हो गया था । ताई बासी पूड़ियों का अम्बार लगाए बांट रही थीं । पुत्री-जामाता को देखकर सुभद्रा हाथ का काम छोड़कर उठ गई । 'कैसा लगा हमारा गांव ?' हंसकर उसने पूछा । 'गांव क्या, अच्छा-खासा शहर है, हमें तो बहुत बढ़िया लगा, बल्कि लौट आने को जी नहीं कर रहा था।' कर्नल अखबार की ओट लगाए ही बैठा रहा । अहल्या को पहली बार पिता की कठोर मुद्रा देखकर भय हुआ । क्या मन ही मन जान गए थे कि वह अम्मा से मिल आई है? 'राजू तो मरा चला गया,' सुभद्रा धरणीधर से कह रही थी, 'बहुतेरा रोका कि कल बहनोई के संग चले जाना । आज की तो उसकी छुट्टी भी थी, पर माना ही नहीं, बाप की ही सनक चढ़े है लौंडे को ।' 'अच्छा, राजूदा चला गया? कितना झूठा है,' बसन्ती मां के पास ही बैठ गई, 'मुझसे कह रहा था, अल्मोड़े में एक-दो काम हैं । ड्राइक्लीनर के यहां कुछ कपड़े पड़े हैं, अलां हैं फलां हैं, इसी से पहली बस से जा रहा हूं और क्या तुहिना भाभी भी चली गई अम्मा ?'

'और क्या? सब चली गई । आजकल की बहुएं क्या अपने मर्दो को छोड़कर रही हैं? वह तो हमारा ही जमाना था,' कह एक लम्बी सांस खींचकर सुभद्रा ने कर्नल की ओर दृष्टिपात कर अपना शब्दबेधी बाण ताना, 'अहल्या मिल आई अपनी अम्मा से ?' आवाज़ फुसफुसाहट की ही थी, किन्तु ऐसी फुसफुसाहट थी जो कभी अस्पष्ट नहीं रहती। कर्नल अखबार लेकर बाहर चला गया ।

'हां अम्मा, काखी इतनी सुन्दर लग रही थीं, अब क्या कहूं ! पर आंखें बन्द थीं, ध्यान में थीं, इसी से उन्होंने अहल्या को नहीं देखा।' 'ऐसा भी क्या ध्यान ! मरी देख तो लेती बिटिया को। क्या पत्थर का कलेजा था?" अहल्या इसी बीच भीतर खिसक गई। सुभद्रा फिर फुसफुसाई, 'हद है इतने बरसों में बिटिया मिली और मरी ध्यान लगा के बैठी रही । ऐसे ही तो तिरिया-चरित्तर दिखावे थी तेरी काखी, मरद भी क्या करै !' बसन्ती के सम्मुख काखी का पवित्र शान्त चेहरा आ गया, वह मां की टीका-टिप्पणी में कोई भाग न ले सकी । दूसरे दिन वह धरणीधर के साथ विदा हो गई, तो अहल्या को सारा घर काट खाने लगा । भाभियां भी चली गई थीं । ताई की बकवास से उसके सिर में दर्द होने लगा था । उधर पापा का मूड़ बिगड़ता ही जा रहा था। बिगड़ने का कारण भी वह जानती थी। इधर-उधर जाकर शायद कुछ थोड़ी-बहुत खुराक जुटा भी लेते होंगे, पर रात को सोने से पहले जिस नियमित खुराक का उन्हें अभ्यास था, वह न मिलने से वे चिड़चिड़ा उठे थे ।

'पापा !' वह रात को कर्नल की कुर्सी के पीछे जाकर खड़ी हो गई । 'क्या है बेटी,' कर्नल का कण्ठ-स्वर आश्चर्यजनक रूप से ठण्डा था । 'पापा, चलिए अब कलकत्ता लौट चलें। मेरी तबीयत यहां से उचट गई है ।' अहल्या का गला भारी हो गया । 'क्यों, कहा था

न मैंने,' कुर्सी अहल्या की ओर मोड़कर कर्नल ने हंसकर कहा : 'अल्मोड़ा का नशा भंग के रसीले नशे की ही तरह उतर जाता है। तेरी तबीयत नहीं लगती, तो कल प्रोग्राम बनाएंगे ।'

'नहीं पापा, अब प्रोग्राम-वोग्राम कुछ नहीं, कल ही चल दीजिए ।' 'पगली लड़की, कल शनीचर है, शादी के घर से पहाड़ में शनीचर-मंगल के दिन अतिथियों को विदा नहीं किया जाता ।'

'भाड़ में जाय आपका पहाड़,' वह पैर पटकती अपने कमरे में जाकर बिना खाए-पिए ही सो गई ।

दूसरे दिन ताई के बहुत रोकने पर भी अहल्या ने जाने की तैयारियां कर लीं। वह सचमुच ही कलकत्ता पहुंचने के लिए छटपटाने लगी। पहले पहुंचते ही दौलत को फोन करेगी; अमिता तो पास ही रहती थी, उसके कमरे में बिजली जली देखकर स्वयं भागती आएगी । फिर तीनों मिलकर बैठेगी तो वह अपनी पर्वत-यात्रा के रोचक संस्मरण सुनाएगी । वह सोच रही थी : अब क्या फिर कभी पहाड़ आना होगा? क्या पता एक बार फिर आना पड़े ? जिस अभिप्राय से पापा उसे लेकर आए थे, वह तो सिद्ध नहीं हुआ था, वह मन ही मन कई उधेड़बुनों में उलझती जा रही थी कि कर्नल स्वयं उपस्थित हो गया : 'बेटी, मेरे साथ थोड़ा बाज़ार करने चलना होगा तुम्हें । चटपट तैयार हो लो, बहुत-सी चीजें ले जानी होंगी।' अहल्या आश्चर्य से कर्नल की ओर देखकर फिक से हंस दी, 'आप भी, पापा, बस बच्चों की-सी बातें करते हैं । भला इस सड़ी-सी बाज़ार में आपको क्या मिलेगा? उलटे बांस बरेली को ! जा रहे हैं आप कलकत्ता और शापिंग करेंगे अल्मोड़ा ! आखिर लेंगे क्या— पहाड़ी मिठाई ?'

अहल्या को स्वयं पहाड़ की खोये की गहरे कत्थई रंग की सफेद पोश्ता चिपकाई बाल मिठाई और हरे-हरे पत्तों में पान के बीड़े के आकार की सिंघौड़ी बहुत पसन्द थीं, पर आज वह जान-बूझकर पापा को चिढ़ाने पर तुली थी । 'एक दिन समझेगी बेटी, पहाड़ के अनोखे मोह की कैफियत को। मैं तो सोचता हूं कि एक प्रवासी आई.सी.एस. भी पहाड़ छोड़गा तो उसके साथ इन पहाड़ी तोहफों की एक पोटली अवश्य होगी । अच्छा, अब तू देर मत कर ।'

अहल्या कोट डालकर कर्नल के साथ बाज़ार को चल दी । पीछे-पीछे हाथ में एक बड़ी-सी टोकरी लिए भौनिया था। कल को बाप-बेटी की शानदार जोड़ी चली जाएगी, सोचकर वह बहुत उदास था, मेम-सी गोरी-चिट्टी अहल्या के उदार उत्कोच ने उसे उसका दासानुदास बना दिया था । अल्मोड़ा के बाज़ार का आरम्भ और अन्त आख्योपन्यास की भांति कई परतों में बढ़ता जा रहा था । पत्थर के ऊंचे-नीचे ढलान पर चढ़ती-उतरती अहल्या कभी स्केट-सा करने लगती और कभी अप्रत्याशित चढ़ाई से हांफकर कर्नल से पिछड़ जाती । प्रत्येक दुकान का अपना निराला ही व्यक्तित्व था। कहीं पर छोटी-छोटी दुकानों में कपड़े के रंग-बिरंगे थान चुन रखे थे, न उनमें नायलौन या डैकरीन बेचते कलकत्ते के भड़कीले सेल्समैन थे, न जगमगाती बत्तियां । रंग-बिरंगी छींटें और फूलदार नैपाली ढाक के थान जिनके लाल, पीले और हरे फूल शायद उस दिन की प्रतीक्षा में थे जब कोई पर्वतीय सुन्दरी, उनका लहंगा सिलाकर अपने उस पहाड़ी मग्ज़ीदार लहंगे के घुमेरों को घुमा-

घुमाकर उनका अस्तित्व धन्य कर देगी । एक ओर तम्बाकू के पिण्डों का पहाड़ लगाए कई छोटी-छोटी दुकानें थीं, जिनके दमदार कड़वे तम्बाकू की खुशबू से अल्मोड़ा की बाज़ार के ओर-छोर महक रहे थे । कहीं घुरड़, कांकड़ और चीते की खाल लटकाए सुर्ख-सुर्ख गालोंवाले सुदर्शन शाह, 'आओ गुरु, आओ गुरु,' कहते शुतुर्मुर्ग के अण्डे के आकार के कागजी अखरोट बेच रहे थे, उनका कहना था कि गुलाब का फूल भी उनके अखरोटों के नाजुक छिलके को तोड़ सकता है । कुछ शाहजी की अवधी नवाब की-सी दूधिया सूरत और कुछ उनके कहने के अनोखे ढंग से कर्नल उनकी दुकान पर खड़ा हो गया, 'अच्छा, क्या सचमुच ही गुलाब का फूल भी इन्हें तोड़ देगा दिदी ?' भौनिया ऐसी अद्‌भुत बात आज ही सुन रहा था, किसी गतयौवना के ढलते यौवन की भांति ढलती अपनी हाफ पैण्ट को छाती तक खींचकर उसने अहल्या से पूछ लिया ।

'हां जी हां, कागज़ी हैं कागज़ी ! कल ही दो बोरे अस्कोट से मंगवाए हैं । कितने दे दूं सरकार ? बड़े सस्ते लगा दूंगा, चार रुपये सेर !' सुदर्शन शाह तराजू की उलझी डोर ठीक कर रहे थे कि किसी अनुभवी जौहरी की भांति भौनिया ने एक अखरोट को उठाकर दन्न से बाज़ार की पथरीली सड़क पर दे मारा । गेंद की तरह उछलता अखरोट बिना टूटे ही अपने नाजुक छिलकों का विज्ञापन व्यर्थ कर गया ।

'एकदम काठी अखरोट है साला, चलो दिदी, दूसरी दुकान में बिहारी शाह ढाई रुपये सेर देता है ।' भौनिया पैण्ट संभालता आगे बढ़ गया, उसके पीछे सुदर्शन शाह की चुनी गालियों के तीरों की बौछार बड़ी देर तक आती रही। अखरोट लेकर कर्नल को.कई परिचित बन्धु-बान्धवों की भीड़ ने घेर लिया । अहल्या को मन ही मन पापा पर झुंझलाहट आने लगी । हद होते हैं ये पहाड़ी रिश्तेदार । क्या निगोड़ों की आंखें नहीं थीं, जो उसे सड़क के कोने में अकेली खड़ी देखकर भी कर्नल को बातों में बांधते जा रहे थे। बड़ी देर तक बातें चलती रहीं और फिर अहल्या को अकेली खड़ी देख, कर्नल उनको स्वयं ही विदा देकर आ गया । 'सॉरी, बेटी, तुम्हें बड़ी देर तक इन्तज़ार करना पड़ा, पर बहुत-से बचपन के साथी मिल गए थे ।' अहल्या बिना कुछ कहे ही चलती जा रही थी। मन ही मन कर्नल के प्रति झुंझलाहट चेहरे पर भी उभर आई थी, इसी से कर्नल भी जल्दी-जल्दी बाज़ार का सौदा निपटाकर घर लौट आया। सुभद्रा घुटनों तक साड़ी समेटे अपनी मुद्‌गर-सी टांगों में तेल की मालिश कर रही थी। उन्हें देखकर अचकचाकर उसने साड़ी नीचे खींच दी और हंसकर बोली : 'मिठाई लाए हो देवर? मीठा मुंह कराओ तो एक खुशखबरी दूं। ।'

'वाह ! मिठाई, यह लो,' कहकर कर्नल ने पूरी टोकरी सुभद्रा को थमा दी । 'शिरोमणिजी आए थे,' सुभ्रदा देवर के पास ही खिसककर फुसफुसाई । कौन होंगे यह? अहल्या भीतर कमरे में दीवार से कान सटाकर ही कर्नल और ताई की बातें सुनने लगी। 'सच कह रही हो ? क्या कुछ कह भी गए ?' 'हां हां जी, कहेंगे क्यों नहीं, एक बार तो जी में आ रहा था, खूब कस-कसके सुनाऊं शिरुआ के बच्चे को, कि क्यूं जी देवरजी अब कहां गया चार पुश्तों का रिश्ता, पर फिर सोचा जैसी मेरी बेटी, वैसी तुम्हारी, चलो एक नहीं, तो दूसरी ही सही । अरे लला, सुभद्रा ने भी दुनिया देखी है,' ताई का स्वर क्रमशः झुंझलाहट

और क्रोध से तीखा होता जा रहा था, 'यह कोई चार महीने हुए इन्हीं शिरोमणि का लड़का आई.ए.एस. में आया, तो हमने भी बसन्ती की कुण्डली भेजी थी, तो खोटे सिक्के-सी फेर दी, बोले : बोज्यू, राम-राम, ऐसा रिश्ता सुनने से भी पाप लगता है, अभी तो हमारे बीच चार ही पुश्तें हुई हैं ।—बसन्ती का मामा हुआ सर्वेश्वर, हम भी भइया चुप रहे, पर आज कहां गया वह रिश्ता! जैसी बसन्ती वैसी अहल्या ।' कर्नल को सुभद्रा की यही आदत नापसन्द थी, हर मीठी शर्बती घूंट में वह विष अवश्य टपका देती थी ।

'अच्छा, रिश्ता तो ऐसा कुछ नहीं है। अगर है भी, तो अब यह सब कौन मानता है! क्यों नहीं देवर ! वही कहने आए थे कि उन्हें इस रिश्ते में कोई आपत्ति नहीं है । जाने से पहले ही कन्या को वे टीका कर जाएंगे । अब- तुम जानो,' कहकर सुभद्रा तेल की कटोरी लेकर उठ गई ।

अहल्या सबकुछ सुनकर स्तब्ध थी। बरामदे की काठ की रेलिंग पर उसकी मुट्ठी की पकड़ ऐसी कड़ी हो गई कि अंगुलियां दुखने लगीं । पहाड़ आकर पापा ने उसे भी पहाड़ की भेड़-बकरियां ही समझ लिया । जहां चाहे हांक दिया–देख लेगी वह भी !

'ठीक है, मैं एक बार उनके यहां हो ही आऊं । कल तो फिर सुबह ही जाना होगा', कहता कर्नल शायद अपना स्वेटर धरने भीतर आया। बरामदे की रेलिंग को छोड़कर अहल्या सीधी खड़ी हो गई । 'अब आपको इस समय कहीं नहीं जाना होगा पापा, किसके यहां जाने को कह रहे हैं आप?' कर्नल अवाक् रह गया। अहल्या के दोनों नथुने क्रोध से फड़क रहे थे, लगता था वह किसी प्रकार से अपने को संयत किए खड़ी है ।

'क्यों, क्या मैं कलकत्ता से यहां बसन्ती की शादी के लिए ही आया था?' कर्नल का रक्तचाप, शत्रु की भांति उसके सिर पर चढ़ा आ रहा था । चलने से पहले मार्ग-भर क्या वह अहल्या को समझाता नहीं आया था; अपने ही समाज में विवाह करने की इच्छा क्या बार-बार अहल्या ने पिता के सामने नहीं दुहराई थी? तब क्या कलकत्ता के किसी छोकरे ने तो उसका दिमाग नहीं फिरा दिया? मल्लिका ने उसे फिरंगी रेक्सी के लिए सावधान तो कई बार किया था ।

'शिरोमणि कुमाऊं के सिरमौर हैं, जानती है लड़की, अब के कर्नल का स्वर पिता का नहीं जूट-पटसन के लखपती व्यवसायी का था; 'आई.ए.एस. लड़के पहाड़ में क्या सहज में मिलते हैं? उस पर बाप की नैनीताल में तीन-तीन कोठियां हैं। नाना ने डर्बी की लौटरी जीती थी, देखने में लड़का जरा सांवला है, पर ऐसे ठसके का है कि अब तक तेरह लड़कियां नापसन्द कर चुका है, जिनमें से तीनों के बाप एस.पी. थे।

'ठीक है, किया करें पापा, मुझे उसकी पसन्द-नापसन्द से कुछ लेना-देना नहीं–पर मुझे अभी विवाह ही नहीं करना है,' पिता-पुत्री का वार्तालाप सुभद्रा शायद कहीं से कान लगाकर सुन रही थी, एकाएक वह हंसती-हंसती भीतर आ गई, 'पढ़ी-लिखी लड़की है न लल्ला, इसी से इतना मीनमेष निकाल रही है, क्यों, क्या कहीं और लड़का-वड़का तो नहीं छांट धरा है हमारी भतीजी ने,' स्वर को जितना ही मिठास में घोलकर प्रस्तुत किया गया था, उसकी उतनी ही कड़वाहट से अहल्या तिलमिला गई । तुहिना के ज़हर-बुझे तीर वह

बड़े धैर्य से सहती आई थी, पर आज उससे चुप नहीं रहा गया, 'कोई लड़का पसन्द ही किया होगा, तो क्या आपको बताना जरूरी है, ताई ।'

सुभद्रा का चेहरा अपमान से लाल पड़ गया। नन्दी की बित्ते-भर की छोकरी उसी के घर में उसका अपमान कर गई । चुप रहना उसका स्वभाव नहीं था; आंखों पर आंचल धरकर वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी । 'कौन कहेगा इसी अहल्या को मैंने कैसे लाड़ से पाला होगा–आज मेरे मुंह लग रही है–मेरा क्या? कर ले किसी मुसलमान, किरिस्तान से शादी । बाप का नाम उजागर कर–हमारा क्या?' हतप्रभ-सा कर्नल इधर-उधर देखने लगा : 'क्या कह रही हो, तुम, देखो तो सही, पास ही कृपालदत्तजी का मकान है। अहल्या, ताई से माफी मांग! बच्ची है भाभी, इसे माफ कर दो..!' कर्नल सचमुच ही गिड़गिड़ाने लगा। 'मैं कौन होती हूं माफ करनेवाली! दीनदरिद्र पहाड़ी ताई से भला तुम्हारी मेम-सी बेटी माफी मांगेगी!' सुभद्रा स्वर के आरोह-अवरोह रचाती रोती रही । उस दिन रात को बाप-बेटी भूखे ही सो गए, दूसरे ही दिन प्रात:काल अहल्या ताई से मिलने गई, तो उसका चेहरा लटका ही था, बिना कुछ कहे ही रोली का तिलक खींचकर सुभद्रा ने उसे एक दस का नोट थमा दिया और स्वर को व्यंग्य की सान में तीखा कर बोली : 'माफ करना हमारी कही-सुनी, पढ़ी-लिखी होती तुम्हारी नई अम्मा की तरह तो शायद तुम्हें मना भी लेती।'

अहल्या ने दस का नोट थाली पर ही रख दिया और आंखों के आंसू रोकती भुनभुनाती बाहर निकल आई । कैसा उत्साह था पहाड़ आने का ! पर आज सब उत्साह ठण्डा पढ़ गया, पर्वतीय समाज ने उसे दूध की मक्खी की भांति निकालकर फेंक दिया था । अब क्या वह फिर कभी पहाड़ आ सकेगी?

पापा उस पर बहुत नाराज़ हो गए थे, मार्ग-भर बिना एक शब्द बोले ही यात्रा सम्पन्न हुई । कलकत्ता पहुंचते ही अहल्या पहाड़ की सारी कड़वाहट भूल गई। ताई के वज्र-कठोर वाक्यों की चुभन के बीच बसन्ती की स्मृति सारी कसक मिटा देती–उसकी सरल आकृति, भोली मस्तानी आंखों का स्नेह, धरणीधर की निष्पाप ठिठोलियां और उन्मादिनी आमा का चीनी गुड़िया-सा चेहरा, सब बार-बार किसी रोचक डाक्युमेण्टरी की भांति उसकी आंखों में तैरने लगते । इन सबके बीच न चाहने पर भी उसे एक और चेहरे की स्मृति विह्वल कर देती–जिस व्यक्ति ने उसे तनिक भी प्रश्रय देने की चेष्टा नहीं की, जिसके अजेय पौरुष को उसका सौन्दर्य केवल एक-दो बार ही व्यर्थ-सी चुनौती देकर, हारकर रह गया। उसके प्रति उसके खिंचाव की क्या व्याख्या हो सकती थी। फिर पर्वतीय समाज के विकट चक्रव्यूह में फंसकर वह क्या स्वेच्छा से ही प्राण गंवा सकेगी?

रात-भर की उधेड़-बुनों के बीच, उसने सुबह उठते ही मल्लिका के यहां जाने का प्रोग्राम बना लिया । आते ही फोन भी किया था, पर बड़ी देर तक घण्टी बजती रही थी–क्या पता माशी कहीं चली गई हों ।

बड़े तड़के ही उसकी आंखें खुल गई, इतने दिन बाहर रहने पर भी कमरे की व्यवस्था में कोई त्रुटि नहीं आई थी। खिड़की के कांच चमक रहे थे। पीतल के स्विच में घिस-घिसकर

ब्रासो किया गया था। फूलदान में ताजी लिली महक रही थी । जाने के दिन जल्दी में वह जूड़े के कुछ कांटे मेज़ पर छोड़ गई थी, अब भी वैसे ही बिखरे पड़े थे ।

अठारह

'ओ मा दीदीमनी, तूमी जे रोगा होये एशेछो मा गो की चेहारा होयेछे-शाट शाट (ओ मा दीदीमनी, तुम तो दुबली होकर आई हो, अरे कैसा चेहरा हो गया है, हाय-हाय)!'

ननीबाला चाय की ट्रे लेकर खड़ी रह गई। 'कहां दुबली हुई हूं नोनी, ला चाय बना दे जल्दी, मुझे अभी माशी से मिलने जाना है ।'

'हां जी, लो अब मिलेंगे न माशी से! है कहां जो मिलोगी,' ननीबाला का स्याह चेहरा म्लान हो गया-वह अहल्या की सबसे मुंहलगी नौकरानी थी। उसकी मां मल्लिका को मालिश करने आती थी, उसी के साथ ननीबाला को देखकर अहल्या बड़े आग्रह से अपने साथ ले आई थी, तब से वह उसी के साथ थी। उसके काले रंग के भारी बादल ने ही उसके विवाहाकाश को अब तक आच्छादित कर रखा था, किन्तु उसकी बड़ी-बड़ी आंखों और शरीर की पुष्ट गठन ने बंगले के कई भृत्यगणों को विवेकभ्रष्ट कर दिया था। उसका पिता नापित था, इसी से पिता के कुल के सब गुण उसमें वर्तमान थे । वह बंगले पर के नौकरों की चुगली लगा, कइयों को निकाल चुकी थी।

'क्यों क्या हुआ नोनी, क्या माशी को कुछ हो गया?' अहल्या हड़बड़ाकर उठ बैठी।

'हूं, उन्हें होगा भला क्या!' पूरी बात की पुड़िया एकसाथ खोलना ननीबाला को पसन्द नहीं था, वह फिर चुप हो गई।

अहल्या ने खीझकर उसे झकझोर दिया : 'कहती क्यों नहीं अभागी? बोल न?'

'तुम्हारे मेशो (मौसा) नहीं रहे और क्या–सुना उस दिन सास-बहू में खूब लड़ाई हुई । लड़-झगड़कर बहूजी सिनेमा देखने चली गई । जब लौटीं तो अर्थी तैयार हो रही थी । पूरे कलकत्ता में ऐसा हल्ला मचा, खूब थुड़ी-थुड़ी हुई कि पूछो मत ! दूसरे ही दिन सुबह से बहूजी गायब हो गईं। कोई कहता है हुगली में कूद गई, कोई कहता है किसी के साथ भाग गई, वह तो अच्छा हुआ साहब आ गए, नहीं तो... !' वह फिर चुप हो गई ।

'नहीं तो क्या?'

'अरे, यही कि सोनपाड़ा की बहूजी कह रही थीं, नोनी, हो न हो तेरे साहब के पास ही भाग गई हैं । अब चलूं दीदी, साहब के कमरे में भी तो चाय पहुंचानी है–अरे एक खबर तो तुम्हें देना ही भूल गई, तुम्हारा वह फिरंगी दोस्त था न, दीदीमनी 'राक्खोस' (राक्षस) ।' ननीबाला की रेक्सी पर विशेष कृपा थी, अपने घोर कृष्णवर्ण की पीड़ा को वह रेक्सी के फिरंगी सफेद रंग की तुलना में अत्यन्त तुच्छ पाकर अपनी सारी कुढ़न उसे 'राक्खोस' नाम से पुकारकर मिटाती। 'तो क्या हुआ उसे? क्या वह भी हुगली में कूद गया?' अहल्या खीझती जा रही थी ।

'आहा, दीदीमनी, कूदें उसके दुश्मन! उसने तो दौलत दीदी से ब्याह जो रचा लिया । ऐसा सुन्दर लग रहा था दीदी, काली पारसी टोपी लगाए दौलत दीदी के साथ घूमने जा रहा था, ऐसी कलेजे में छुरी लगे हमारे! आहा रे-आमरी दीदी लायक जोड़ी थी और कहां मुआ गया ब्याह करने।'

अहल्या उसकी बात सुनते ही दौलत को फोन करने भागी । खूब कोरी-कोरी सुनाएगी दौलत को! ऐसे लुक-छिपकर भला ब्याह रचाया जाता है, क्या उसके पहाड़ से लौटने तक रुका नहीं गया उससे?

फोन करने पर पता चला कि रेक्सी-दौलत हनीमून मनाने कश्मीर चले गए हैं। उसका कण्ठ-स्वर सुनकर रुसी की गहर से रूंधी आवाज़ अहल्या को कर्णकटु लगी। 'अच्छा रुसी सो लांग! फिर बातें होंगी,' कहकर उसने रिसीवर ठांय से पटक दिया । नहा-धोकर उसने साड़ी बदली और अमिता दत्त को बिना फोन किए ही उसके घर की ओर चल दी । क्या पता फोन करने पर पता लगेगा कि उसने भी चटपट शादी रचा ली है! अमिता के फ्लैट के निचले भाग में एक लंगड़ा सिंधी बूढ़ा विधुर रहता था। उसकी न्यू मार्केट में दालमोठ की बहुत छोटी-सी एक दुकान थी। वह भी अहल्या का अनन्य उपासक था । कई बार बड़े-बड़े कागज़ के ठोंगों में वह उसके लिए विशेष रूप से तैयार की कई दालमोठ भेजा करता था। आज वह कार से उतरी तो सिंधी बूढ़ा कहीं नहीं था। द्वार पर ताला पड़ा था, पर अमिता की खिड़की के खुले पट देखकर वह आश्वस्त होकर सीढ़ियां चढ़ गई–धीरे-धीरे सीढ़ियों पर बिल्ली के-से पंजे रखती वह ऊपर चढ़ी, आज अमिता को वह खूब छका देगी ।

कमरे में पहुंचकर उसने देखा अमिता एक उपन्यास के ऊपर औंधी होकर पढ़ने में ऐसी दत्तचित्त थी कि अहल्या की साड़ी की खसखस भी नहीं सुन पाई । उसके लम्बे काले बाल उसकी सांवली नंगी पीठ पर इधर-उधर बिखरे थे । उमस से तंग आकर उसने ब्लाउज़ खोलकर दूर फेंक दिया था और दोनों लम्बी-लम्बी टांगों को ऊपर उठाकर दोनों एड़ियों के मंजीरे-से बजा रही थी । उसकी दोनों कुहनियां पलंग पर टिकी थीं और बंगाली 'पाशबालिश' (गावतकिया) को आराम से टेक लगाए वह पढ़ती ही जा रही थी।

'बाप रे बाप, क्या भंग चढ़ाकर बैठी होगी,' अहल्या ने कहा, तो वह बुरी तरह चौंक पड़ी और उसे देखते ही उठकर गले से लिपट गई ।

'ओ मा की मेये! तुई कबे ऐली गो?'

(हाय मां, कैसी लड़की है यह! कब आई भला?)

'पहले एक गिलास पानी तो पिला । पहाड़ से आई हूं, ज़रा ठण्डा पानी लाना, समझी !'

आंचल से नग्न पीठ को ढांपती अमिता भागकर कांसे के चौकोर गिलास में पानी ले आई और उसे एकटक देखती रही । 'भला क्या देख रही है ऐसे, मोटी हो गई हूं न!' 'न भई, मोटी कहां हुई हो ! देख रही हूं कि पहाड़ के पानी ने सोने को और निखार दिया है– क्या कुछ कस्तूरी-चन्दन का लेप करती रही है वहां?'

‘हां जी, हां, कस्तूरी-चन्दन न और कुछ । बाज़ आई ऐसी पहाड़ यात्रा से, मैं तो यहां आने को छटपटा रही थी, पर दौलत को तो देख! न चिट्ठी, न पत्री । न होता तो निमन्त्रण का एक ‘फार्मल’-सा कार्ड ही भेज देती ।’

‘बड़ी लम्बी बात है, तू सुस्ता तो, सब बताती हूं-तू एक मिनट बैठ तो, मैं चट से नहा लूं, मां गई हैं कृष्णनगर, माशी के लड़के का ब्याह है न! बाबूजी भी चले गए, घर एकदम ‘फांका’ (खाली), इसी से आजकल इंग्लिश ब्रंच करके स्कूल चली जाती हूं, अच्छा हुआ आज छुट्टी थी, नहीं तो मैं कहां मिलती-तू बैठ, मैं अभी आई ।' और अपने शरीर पर मले सरसों के तेल को रगड़ती अमिता चली गई । अहल्या उसकी गावतकिया पर ही सिर धरकर लेट गई–कितनी क्लान्त हो गई थी वह! जी में आ रहा था, दिन-भर यहीं पड़ी-पड़ी अमिता की मीठी चरपरी बातें सुनती रहे, पर घर जाकर पापा के खाने-पीने की भी तो व्यवस्था करनी होगी। कल तो दिन-भर अमिता फिर मिलेगी नहीं, कितनी देर तक उसे स्कूल में रहना पड़ेगा क्या पता! अमिता ने एक अन्ध-बधिर स्कूल में नौकरी कर ली थी और अहल्या को लगता था, उस नौकरी ने अमिता का हुलिया ही बदल दिया था । जो अमिता कलकत्ते-भर के स्कैण्डल का लेखा-जोखा रखती थी–कौन किसके साथ भाग गई, कौन शीघ्र ही भागनेवाली है, किसका अफेयर किसके साथ चल रहा है, यह सब अमिता ही रस ले-लेकर अपनी सखियों को सुनाया करती थी, पर इधर वह एकदम ही उदासीन हो गई थी।

‘अपने अन्धे और बधिर छात्र-छात्राओं की भांति क्या तू भी अन्ध-बधिर होती जा रही है अमिता?’ दौलत ने पूछा था, तो उसकी सदाबहार बड़ी आंखों में आंसू छलक आए थे।

‘क्या पता, शायद तुम ठीक कह रही हो,' कहकर वह उठ गई थी ।

अमिता नहाकर लौटी तो उसके चन्दन के साबुन की सुगन्ध से कमरा महक उठा। भीगे बालों के जूड़े को निचोड़-निचोड़कर वह पानी बाहर फेंकती जा रही थी, फिर भी पानी की असंख्य बूंदें, उसकी पीठ को भिगो रही थीं ।

‘हां, तो चल, पहले कुछ खा लिया जाए।’

‘ओ रे मंगला, हमारा खाना ले आ यहीं, दो प्लेट लाना, समझा?”

पलंग पर ही अखबार बिछाकर उसने दो प्लेटें धर दीं, कटी डबलरोटी, दो उबले अण्डे और सार्डिन मछली का खुला टिन लेकर मंगला सबकुछ करीने से सजा गया ।

‘नहीं, अमिता, मैं तो घर ही जाकर खाऊंगी, पापा अकेले हैं, एक तो वैसे ही उनका मूड कुछ ऑफ है ।’

‘अरे, चल भी, थोड़ा-सा खाकर क्या फिर घर नहीं खा पाएगी । यह सार्डिन तो खा, तेरा सिन्धी बूढ़ा ही दे गया था कल । सुनेगा तूने भी यह मछली खाई तो कल और दो टिन भेज देगा।"

अहल्या ने हंसकर तीन छोटी-छोटी मछलियां लेकर, दो स्लाइस डबलरोटी के बीच धर मींच दीं और एक गस्सा लेकर पूछा : ‘आज दिखा नहीं, बोर है कहां?’

'होना कहां! न्यू मार्केट में डण्डी मारकर तेरे सपने देख रहा होगा-सुबह उठते-उठते ही पूछता था, 'मिस दत्ता, आ रही हैं आपकी सखी?' जी में आता था पिच से थूक दूं साले की गंजी चांद पर! यह मुंह और मसूर की दाल! अभी हाल ही में बड़ी पोती आई थी, यही कोई हमारी-तुम्हारी उम्र की होगी ।'

'सच?'

'और क्या – पर ऐसा बदमाश है ससुरा, आधी रात तक सिनेमा के गाने गाता है ।'

'मछली भी उसी की खा रही है और निन्दा भी उसी की ।'

अहल्या ने मीठी झिड़की दी, 'आय हाय! बड़ा मोह है 'लंगड़' पर, कहो तो फोन कर दूं ।' अमिता ने कई छोटी-छोटी मछलियों को भुरता-सा बनाकर एकसाथ मुंह में ठूंस लिया ।

बड़ी देर तक हल्की-हल्की गपशप से अहल्या का चित्त हल्का हो गया । दौलत-रेक्सी का विवाह बिना किसी आडम्बर के ही कैसे हुआ–सब अमिता ने बता दिया । मल्लिका मौसी को लेकर बड़ी गन्दी-गन्दी बातें चल पड़ी थीं, इसी से सबकुछ छोड़-छाड़कर रात ही वे कहीं चली गई ।

अहल्या मल्लिका का प्रसंग छिड़ते ही उदास हो गई । एक-एक कर उसकी आंखों के सामने मल्लिका की वात्सल्यपूर्ण हंसी, बड़ी-बड़ी लाल डोरीदार आंखें, लम्बी-लम्बी अंगुलियां सब आ गई। पहाड़ से लौटते ही कलकत्ता कितना बदल गया था ! 'और समीर? उसको क्या हुआ? डनलपवाली नौकरी नहीं मिली?' अहल्या ने प्रसंग बदलने की चेष्टा की, अमिता स्वयं बात बदलने की चेष्टा करने लगती थी।

'उसे डनलप की नौकरी मिल गई,' एकाएक सलज्ज संकुचित दृष्टि झुकाकर अमिता हाथ के मोटे उपन्यास को निरर्थक ही खोलने और बन्द करने लगी। 'उसके मामा असम में मन्त्री थे न? उन्होंने चेष्टा करके दिलवा दी, और इसी महीने की पच्चीस तारीख को उसी से मेरा विवाह हो रहा है अहल्या...' अमिता का स्वर, बुझते दीये की लौ की भांति कांपने लगा, ' तू जानती ही है, मां-बाबूजी सब दिन-रात मुझे कोंचते रहते थे, बंगाल में कन्या को क्या सहज ही में वर जुट जाता है? फिर मैं भी अपने कौमार्य से ऊबती जा रही थी, अभी तो ठीक है अहल्या... ।' वह किसी गम्भीर दार्शनिक की-सी दलीलें पेश करती जा रही थी, 'चौबीस साल की मैं हो गई हूं–जब स्कूल में अपनी सह-अध्यापिकाओं को देखती हूं, तो उबकाई आने लगती है। चिड़चिड़ी कुंजड़ियों की तरह या तो लड़ती रहेंगी या फिर दुनिया-भर के स्कैण्डल लेकर उलझी रहेंगी। क्या पता एक दिन शायद हम भी ऐसी ही फ्रस्ट्रेटेड (कुण्ठित) ओल्ड मेड्स बन जाएं !'

अहल्या चुपचाप उसकी बातें सुन रही थी।

'एक दिन हमारी-तुम्हारी यही लटें सफेद पड़ने लगेंगी ।' अपने भीगे केश अंगुली में उलझाकर अमिता छल्ले-से बनाने लगी : 'अङ्गं गलितं पलितं केशम्–फिर न हमारी प्रशंसा होगी, न हमारी अभ्यर्थना! हमारा स्थान लेंगी नई-नवेली षोडशियां । उन तनूदरी सुन्दरियों को देखकर हम वैसे ही जल-भुनकर राख हो जाएंगी, जैसे मिस मल्लिक, मिस मुकर्जी

कालेज में हमें देखकर हुआ करती थीं । कोई सुन्दर-सा लड़का किसी किशोरी से हंस-बोल लेगा, तो हम कुढ़ी-मरी जाएंगी ।'

'छिः क्या सब पचड़ा लेकर बैठ गई है, अमिता ।' अहल्या उठकर साड़ी की तह ठीक करने लगी । 'सोचा था पल भर तेरे पास बैठकर ताज़गी आएगी, पर तू तो आज एकदम हेड मिस्ट्रेस की-सी बातें करने लगी-समीर मिले तो मेरी ओर से बधाई दे देना, अब चलती हूं।'

'हाय, अभी नहीं अहल्या,' उसके दोनों हाथ खींचकर अमिता ने उसे जबरन पलंग पर बिठा दिया । 'अच्छा माफ कर, अब कुछ नहीं कहूंगी–न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्! चाय पीकर जाना, ऐसी भी क्या जल्दी है भला–आज समीर ने भी यहीं आकर चाय पीने को कहा है, फिर मेट्रो में बड़ी अच्छी पिक्चर लगी है ।'

'नहीं, अमिता, पापा बहुत बिगड़ेंगे, मैं चलूंगी ही भई, न हो तो तू ही कल आना, वहीं तेरे लिए तेरा ब्रंच तैयार रखूंगी, ड्राइवर से कहूंगी–तुझे स्कूल छोड़ आएगा ।'

अमिता उसे कार तक छोड़ गई और घर लौट जाने का स्मरण आते ही अहल्या का चित्त खिन्न हो गया ।

कार से उतरकर वह कर्नल के कमरे की ही ओर मुड़ गई, एक मेज़ पर 'कर्नल का दाढ़ी बनाने का सामान बिखरा था, ब्रश पर लगी ताज़ी झाग देखकर लग रहा था कर्नल अभी-अभी उठकर गया है ।

'बाप रे दीदीमनी, कहां रही इतनी बेला?' अहल्या चुप रही ।

'साहब तो खूब नाराज़ होकर आफ़िस गए हैं, बिना पूछे ही तुम कार लेकर क्यों चली गई भला!'

अहल्या बिना कुछ उत्तर दिए ही चप्पल ज़ोर-ज़ोर से पटकाती अपने कमरे में जाकर बिस्तर पर धम से लेट गई ।

'दीदीमनी ओ दीदी', धीमे से फुसफुसाकर ननीबाला उसके सिरहाने न जाने कब आकर खड़ी हो गई ।

'साहब लौट आए हैं और तुम्हें बुला रहे हैं ।'

'जा कह दे, मेरे सिर में दर्द है। मैं नहीं आऊंगी।'

'नहीं, नहीं, दीदीमनी लोक्खीटी (लक्ष्मी बहन) उठो, जाओ, साहब को कैसा मोटा गुस्सा आता है फिर जानती हो न–उठो दीदी–साहब ने सुबह से कुछ खाया भी नहीं, खाली एक प्याला चाय पीकर ही चले गए थे ।'

अहल्या हड़बड़ाकर उठ बैठी। वह तो अमिता के यहां सार्डिन मछली, डबलरोटी, सन्देश कितना-कुछ खा आई है और पापा बेचारे भूखे ही चले गए। 'ज़रा भी मानसिक अशान्ति से कभी भी उन्हें पक्षाघात का दौरा पड़ सकता है बेटी,' मल्लिका मौसी ने एक दिन उससे कहा था । 'तुम कहां चली गई मौसी, और गुरु की प्रस्तर-मूर्ति के चरणों पर

ध्यानमग्ना बैठी अम्मा के प्रति उसका सारा क्रोध उमड़ पड़ा, 'क्या अम्मा का कुछ कर्तव्य नहीं है? उसने अकेली अहल्या पर ही सबकुछ क्यों छोड़ दिया? पैरों में उलटी-सीधी चप्पल डालकर वह कर्नल के कमरे की ओर चल दी ।

कर्नल मुंह में सिगार दाबे अखबार देख रहा था । दाढ़ी बनाकर चेहरे का रुग्ण-रूखा भाव चला गया था । अहल्या को देखते ही हाथ का अखबार नीचे रखकर मुस्कराकर बोला : 'कहां चली गई थी, बेटी?' पिता के अप्रत्याशित स्नेह से पगे स्वर से अहल्या आश्वस्त होकर मोढ़ा खींचकर बैठ गई । खिड़की के धानी, रेशमी पदों से रंगीन रोशनी का ताना-बाना कमरे में फैल गया था । एक हाथ से पिता के पलंगपोश की शिकनें दूर करती अहल्या अखबारों को समेटने लगी ।

'कहीं नहीं, पापा, अमिता से मिलने गई थी, सर्जन दत्ता तो बाहर गए हुए हैं, बेचारी अकेली है आजकल ।'

'अरे, तो उसे यहीं क्यों नहीं बुला लेतीं तुम? अकेली हो, जी बहला रहेगा । मुझे तो शायद कल-परसों तक मलाया जाना पड़ेगा, तुम यहां अकेली कैसे रहोगी?'' ,

पिता-पुत्री के बीच पहाड़-यात्रा ने जो आकस्मिक मनमुटाव का घेरा खींच दिया था, वह स्वयं ही एकाएक हट गया ।

'क्यों, मलाया तो आप पिछले महीने ही गए थे पापा?'

'इधर फिर जाना है। देख तो रही हो देश की स्थिति, क्या बड़ी सुविधा की है! आज की खबर सुनी नहीं? चीनियों का उत्पात सहज में ही शान्त नहीं होगा ।' अहल्या के हाथ के अखबार कांप गए, उसे किसकी चिन्ता ने विचलित कर दिया, वह स्वयं ही नहीं समझ पाई।

'बहुत बुरे दिन आ रहे हैं अहल्या, अपने को हर आपत्तिकालीन सम्भावना के लिए तैयार रखना होगा ।'

कर्नल ने पाइप का एक लम्बा कश खींचा । पिता-पुत्री की मन्त्रणा के बीच सहसा पर्दा खोलकर गौरमोहन बरुआ खड़े हो गए ।

'अरे, काका बाबू, आप कहां से आ गए, पापा तो कह रहे थे आप तेजपुर चले गए हैं ।'

अपने स्थूल शरीर को आरामकुर्सी पर धम से रखकर हांफते-हांफते गौरमोहन बरुआ रेशमी रूमाल से पसीना पोंछने लगे।

'बताता हूं, बेटी, अभी बताता हूं, पहले थकान तो मिटाने दे । बाप रे, तुम्हारे नन्दी की सीढ़ियां हैं या चीन की दीवार।'

'काका बाबू, मैं शरबत ले आती हूं। थोड़ा पीकर ठण्डाइए तब बातें करिएगा ।'

'अरे, नहीं, शरबत-वरबत नहीं पिऊंगा । बेटी, तू बैठ, इतने दिनों बाद लक्ष्मी बिटिया मिली है, आंखें ठण्डी करूं, आहा!'

अहल्या का हाथ खींचकर गौरमोहन बाबू ने पास ही बिठा लिया और बड़े स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरने लगे। 'क्यों पाण्डे, आज की खबर सुनी कुछ? इसी से तो तेजपुर

नहीं गया । क्या. होगा कुछ समझ में नहीं आ रहा है। एक तो ज़मीदारी वैसे ही चौपट कर दी सरकार ने, अब रही-सही कसर चीनी ससुर पूरी करेगा । इसी से तो रात-भर सो भी नहीं पाया । सुना, हमारी ज़मीन पर बैरक बन गए हैं।'

गौरमोहन बरुआ असम के गण्यमान्य ज़मीदारों में से थे। लाट साहब तो उनके यहां शिकार का कैम्प लगा महीनों पड़े रहते थे, उस पर गौरमोहन बरुआ अन्य जमीदारों की भांति ऐयाश भी नहीं थे, पढ़े-लिखे गुणी ज़मीदार बरुआ बाबू का पूरे असम में विशेष दबदबा था ।

'तुम्हारा क्या ख्याल है, यह चीनी कुछ और उत्पात मचाएगा?'

'जिस तरह से हमारी फौज को रौंदता जंगली हाथी की तरह बढ़ा आ रहा है उससे तो यही लग रहा है ।'

अहल्या फिर चौकन्नी हो गई : राजू भी तो नेफा में है, उंह है तो हुआ करे, उसका क्या, उस दम्भी युवक को थोड़ा सबक भी मिलेगा । छिः-छिः, कितनी नीच है वह! पिता और गौरमोहन की बातों का रुख, उनके मलाया के कारोबार की ओर मुड़ गया, तो वह उठकर अपने कमरे में चली गई। कितना काम पड़ा था। धोबी को बुलवाकर कितने सारे कपड़े देने थे । पापा के सूटों का अम्बार लगाकर ननीबाला उसके बिस्तर पर पटक गई थी, उन्हें धूप दिखानी थी। गोल कमरे की छत पर की टंकी न जाने कहां से चूने लगी थी, कीमती कालीन पर पानी के धब्बे पड़ गए थे, उन्हें छुटाना था–उस पर पापा ने यह खबर सुना दी ।

एक-एक कर काम निबटाते-निबटाते दिन ही डूब गया । ननीबाला ने चाय मेज़ पर लगाई : 'साहब तो बाहर चले गए दीदी, आपसे कह गए हैं खाना खा लीजिएगा, उन्हें लौटने में अबेर होगी ।'

चाय-पीकर अहल्या ने अपनी पहाड़-यात्रा का बक्सा खोला, गुड़ी-मुड़ी करी साड़ियां, पार्सल-से बनाए ब्लाउज़ और अधभीगे तौलिए निकाल-निकालकर वह ज़मीन पर डालने लगी, 'छिः कितना कबाड़ जमा हो गया था । कुछ दिन और पहाड़ रहना पड़ता, तो आफत हो जाती ।' कपड़ों के बीच छट से छिटककर वही जासूसी किताब नीचे गिर पड़ी, जिसे राजू पढ़ता रहा था और जिसके बीच रेक्सी का बनाया स्केच निकला था । चीजें फैली की फैली रह गई । क्या सोचा होगा राजू ने –जब वह गहन वन-कन्दरा में, कांटों से छिदी हथेलियों की पीड़ा से बेचैन, जानलेवा चट्टान पर खड़ी थर-थर कांप रही थी? कैसे वह बीहड़ वन को चीरता खड़ा हो गया था! कैसी बच्चे की-सी मीठी हंसी थी और झकझक करते कैसे मोती-से सफेद दांत, प्रशस्त ललाट पर भीगे बालों का गुच्छा अंगूर के गुच्छे की तरह कैसे झूल रहा था! एक बार अंधकारपूर्ण संकरे मार्ग से जब वह उसे टहनी का सिरा थमाए किसी अन्धी अपाहिज की भांति खींचे ले जा रहा था, तो वह एकदम ही निकट जाकर उससे टकरा पड़ी थी। आज भी उस क्षणिक स्पर्श की माया उससे भुलाए नहीं भूल रही थी । एक बार उसने अपने पिता के वैभव का साम्राज्य दिखाने को वह मन ही मन ललक उठी। क्या तब भी उस दम्भी युवक का चित्त नहीं डोलेगा?

‘उठो तो दीदीमनी, मैं कपड़े लगा देती हूं, तुम आराम करो, किस-किस साड़ी में स्त्री होगी, किसे ड्राई-क्लीन करने देना होगा, बस यही बता देना ।' ननीबाला ने आकर उसके कपड़ों की फैली हाट-सी समेट ली।

थककर अहल्या पलंग पर लेटी ही थी कि कर्नल हड़बड़ाकर स्वयं ही आ गया, ‘बेटी, चीनियों ने हमला कर ही दिया । अभी भी खबर आ रही है, चलो जल्दी!’

उन्नीस

अहल्या गिरती-पड़ती पिता के पीछे चली । रेडियो पर चीनियों के क्रूर हमले का समाचार आ रहा था : 'हमारे फौजी अफसर और जवानों का हौसला बहुत बढ़ा हुआ है,' रेडियो कह रहा था और फिर नित्य ही बाप-बेटी रेडियो से सटकर हृदय-विदारक समाचार सुनते–एक-एक कर चौकियों के गिरने का समाचार, कुमाऊं के वीर-जवानों के बलि के बकरे-से कटने की खबरें दोनों को स्तब्ध कर देतीं–देश-भर में देखते-देखते मातम छा गया । गौरमोहन बाबू नित्य नवीन समाचार लेकर आते । 'लद्दाख और नेफा में रक्त की नदियां बहने लगी हैं पाण्डे, अब क्या होगा?' वे पूछते । उनका बड़ा पुत्र ब्रिगेडियर था, मंझला मेजर और छोटा स्क्वैड्रन लीडर था । तीनों कहां हैं मुझे यह भी पता नहीं है, बेटी,' वे अहल्या से कहते और उनकी आंखें भर आतीं । अहल्या गौरमोहन और कर्नल के स्वभाव के परिवर्तन पर आश्चर्यचकित थी । दोनों पीना-पिलाना तक भूलकर रह गए थे, न अब मलाया के कारोबार की चर्चा होती, न व्यापार और राजनीति के 'स्कैण्डल्स ' की । दौलत और रेक्सी अपना हनीमून आधा की मनाकर कलकत्ता लौट आए थे । उनके आने का समाचार पाकर अहल्या मिलने जाने की सोच रही थी कि दोनों स्वयं ही आ गए।

दौलत को देखकर अहल्या दंग रह गई । क्या विवाह के कुछ ही दिन किसी को इतना भी बदल सकते हैं! शरीर की एक-एक रेखा पुष्ट होकर उभर आई थी । आंखों में अनोखे रस का सागर छलकने लगा था । रंग और भी निखर आया था और चेहरे पर कैसी अलौकिक तृप्ति की सुषमा थी। जैसे उसे जो कुछ अलभ्य था सब एकसाथ ही मिल गया हो। और रेक्सी! वह तो सकुचाया-सा द्वार पर ही खड़ा रहा। 'हेल्लो एल्या!' कहकर दोनों एड़ियां एक-दूसरे से सटाकर किसी फौजी अफसर की तरह सतर हो गया ।

अहल्या ने दौलत को खींचकर पलंग पर बिठा लिया, 'ओह दौलत, तू कितनी सुन्दर हो गई है–क्या कश्मीर ने कोई जादू तो नहीं कर दिया तुझ पर ?'

'वाह, क्या मैं इतनी बदसूरत थी कि जादुई छड़ी फेरनी पड़ती,' हंसकर दौलत ने अपने तरुण फिरंगी पति की सुविधा का ध्यान रखते हुए अंग्रेज़ी में कहा । रेक्सी ने कनखियों से अहल्या की ओर देखा और सहमकर फिर पत्नी पर आंखें टिका लीं । अहल्या और दौलत आसपास सटकर बैठी थीं । दौलत के प्लैटिनम के हीरे जड़े कंगन को सहलाती अहल्या उठ गई, 'तुम दोनों बैठो! मैं पापा को बुला लाऊं । आते ही तुम्हें पूछ रहे थे । आप क्या लेंगी, चाय या कॉफी?–कॉफी ही लाती हूं, रेक्सी को बहुत पसन्द है न!' उसने रेक्सी की ओर देखकर कहा । उस सुन्दरी के सम्मुख रेक्सी सदा मोमबत्ती की भांति ही पिघल जाता था, क्या नक्शा था और कैसी कर्णचुम्बी रसीली आंखें! उस सुन्दरी के हाथ से छिटक जाने का उसे जीवन भर पश्चाताप रहेगा ।

थोड़ी देर में कर्नल को लेकर अहल्या आ गई। 'हेल्लो चिल्ड्रेन, कांग्रेचुलेशन्स,' कर्नल ने बड़े स्नेह से दोनों की पीठ थपथपाई, 'ममी कैसी हैं दौलत?'–' ठीक हैं पापा, अब उन्हें बम्बई के कैंसर अस्पताल में रख दिया है न !'

'हाय रे, सच?' अहल्या फिर आकर दौलत के पास बैठ गई, 'रुसी ने मुझे कुछ नहीं बतलाया। '

'क्या तुम रुसी से मिली थीं?' दौलत ने बड़ी उत्सुकता से पूछा । भाई की अहल्या के प्रति अनोखी ममता को वह मन ही मन जानती थी।

'नहीं, एक दिन फोन ही पर बातें हुई थीं । मैं तो बस अमिता से ही मिल पाई। फिर तो इस चीनी हमले ने ऐसा चित्त उदास कर दिया कि किसी से मिलने-मिलाने को भी जी नहीं करता ।'

अहमद ट्रे में क्रीम, कॉफी और चीज़ के खारी बिस्कुट लाकर धर गया ।

'अहमद, फ्रिज में कालोजाम घरे हैं । जल्दी से प्लेट में ले आओ, साहब को बहुत पसन्द हैं ।' अहल्या फिर रेक्सी की ओर देखकर मुस्कराई और उसकी हर मुस्कराहट के साथ रेक्सी कमरे के गुदगुदे कालीन में धंसता गया । उसे कलकत्ते की कालोजाम मिठाई बहुत पसन्द है, यह भी अहल्या को अब तक याद है।

बड़ी देर तक गपशप चलती रही और दोनों को बाहर तक पहुंचाकर अहल्या कमरे में लौटी तो चित्त की उदासी दूर हो गई थी। कलकत्ता एक बार फिर पुराना कलकत्ता लगने लगा था।

इधर कई दिनों से अहल्या के मन में एक और उलझन पैदा हो गई थी–बहुत दिन पूर्व उसने हंसी-हंसी ही में अपनी मदर प्रोविंशियल को एक चिट्ठी में लिख दिया था कि यदि कभी उनके स्कूल में किसी अध्यापिका का स्थान रिक्त हो तो उसका ध्यान रखें, वह घर बैठे-बैठे ऊब गई है । पहाड़ से लौटते ही उसे मदर का पत्र मिला था, अपनी प्राक्तन छात्रा को अध्यापिका- रूप में देखने में उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी, उनके कन्वेण्ट में स्थान रिक्त न होने पर भी जब भी वह आएगी स्थान की सृष्टि हो जाएगी, वह अब कब आ रही है, शीघ्र लिखें। अहल्या कई बार साहस कर पिता के सामने अपना प्रस्ताव रखने भी गई, किन्तु फिर सहमकर लौट आई थी । वह पिता के दम्भी स्वभाव को जानती थी, इतने बड़े उद्योगपति की पुत्री किसी स्कूल में नौकरी करे, वह कभी भी उस प्रस्ताव पर मनन करने के लिए तैयार नहीं होंगे । किन्तु वह पिता को कैसे समझाए कि नौकरी केवल पैसे के लिए ही तो नहीं की जाती, उसकी सब सखियों का विवाह को चुका है, या फिर होनेवाला है । आखिर वह करेगी क्या? विवाह का प्रश्न ही नहीं उठता था, पहाड़ की रूढ़ियों की कठोर ज़ंजीरों में वह अपने को नहीं बांध सकेगी, एक-दो बार कर्नल ने फिर उसी आई.ए.एस. लड़के की बात छेड़ी थी और वह भड़ककर उठ गई थी।

एक दिन वह साहस कर पिता के पास अपना प्रस्ताव लेकर पहुंच ही गई । कर्नल अपने जूते का फीता बांध रहा था । उसके प्रस्ताव को सुनकर चौंक गया, 'कहती क्या है लड़की? नौकरी करेगी! ऐसे पिता की पुत्री होकर! नहीं, रिडिक्युलस!' स्वर को यथाशक्ति

कठोर कर उसने कहा : 'ऐसा फितूर तुम्हें कब से सूझा! हद है, क्या तुम्हें नौकरी करने के लिए पढ़ाया !'

अहल्या ने चेहरा लटका लिया । बड़े लाड़ से उसकी पीठ थपथपाकर कर्नल उसे समझाने लगा, 'पगली कहीं की! अगर मुझे किसी चीज़ से चिढ़ है तो बस इसी से। लड़कियों ने जहां नौकरी की कि बस समझो मार ली अपने पैरों में कुल्हाड़ी । यह बात नहीं है कि मैं प्यूरिटन हूं, पर मेरी बात मानो, बेटी। एक बार नौकरी करके फिर सहज ही में नौकरी की ममता नहीं छूटती और वह ममता कभी बढ़ते-बढ़ते पति और परिवार की ममता को भी दबोच लेती है। अब अपनी नौशी को लो, इदरीस की लड़की। कैसी प्यारी भोली-भाली लड़की थी! तेरे साथ ही तो सीनियर केम्ब्रिज किया था उसने ।'

'तो क्या हो गया उसे, पापा? कितनी खुश है, कितने बड़े-बड़े लोगों से मिलती रहती है। अभी-अभी अपनी तनख्वाह से पैसे बचाकर फ्रिज खरीदा है, कितना प्यारा फ्लैट लिया है, ठाट से आज़ाद रहती है ।'

'हा-हा-हा', कर्नल ठठाकर हंसा, 'फ्रिज और फ्लैट के मापदण्ड से ही तुम लोग क्या दूसरे की सुख-समृद्धि नापती हो? पगली लड़की–जिसकी जितनी ही सजी-संवरी ज़िदगी होगी, उतनी ही उलझनें और अशान्ति से भरा उसका व्यक्तिगत जीवन होगा। मेरी इस बात को गांठ बांध ले। अब बता भला क्या पड़ी इदरीस को कि लौंडिया से नौकरी करवाता?' कर्नल का स्वर तीखा हो उठा, 'बाप डी.आई.जी. है और बेटी रिसेप्शनिस्ट है । अजब हुलिया है। बाल देखो तो लड़कों की तरह कटे, सिगरेट फूंक रही है, सिगरेट ही नहीं, मुझे तो लगता है लड़की पीने भी लगी है । भोली सूरत अब सड़क के किसी आवारा छोकरे की-सी दिखने लगी है... । मैंने तो इदरीस से कहा भी था कि कोई अच्छा लड़का देखकर शादी कर डाले, पर सुना राजी नहीं होती । तभी तो कह रहा हूं, एक बार नौकरी करोगी, तो फिर नौशी की तरह हाथ से निकल जाओगी ।' 'पर आप यह समझने की कोशिश तो कीजिए पापा, कि मैं नौशी की तरह रिसेप्शनिस्ट बनने को नहीं कह रही हूं–मैं उस कन्वेण्ट में पढ़ाने के लिए जा रही हूं, जहां आप कितने विश्वास से मुझे उतनी दूर छोड़ आए थे।'

पुत्री के तर्क से कर्नल को चुप रहना पड़ा | अपने आने की सूचना का तार देकर अहल्या लौटी, तो कर्नल ने जान लिया कि अब अहल्या को संसार की कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती । ट्रेन में अकेली बैठी पुत्री को देखकर कर्नल का जी उमड़ आया । इतनी दूर जाने पर क्या वह अभागे पिता की चिन्ताओं के विषय में कभी सोच पाएगी? घर लौटने पर कर्नल अपने व्यवसाय की उलझनों में क्षण-भर को अहल्या को भूल गया, पर रात को खाने की बड़ी मेज़ पर सामने की खाली कुर्सी देखकर वह फिर अनमना हो गया–नाना तर्क-वितर्कों से उसने अपने चित्त को समझाया, कौन पिता अपनी पुत्री को सदा अपने प्रांगण में ही हंसते-खेलते देख सकता है । एक न एक दिन तो उसे जाना ही होगा, फिर मदर के सौग्य, शान्त स्वभाव के साये में अहल्या की ओर से उसे निश्चित ही रहना चाहिए।

बीस

ऊटी के कॉन्वेण्ट में कोई स्थान रिक्त नहीं था, इसी से अहल्या की नियुक्ति बंगलौर के एक कॉन्वेण्ट में कर दी गई । लाल-लाल छत के छोटे-से बंगले में उसके रहने की ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी गई थी कि वह अपने विराट उदधि-से गृह की ममता को भी भूल गई । एक छोटे-से कमरे में स्प्रिंग की सफेद इनैमल की गई पलंग था, उस पर ऊंचे-ऊंचे गद्दों पर आइरिश लिनन की चादर पर सफेद पिलो का जोड़ा धरा था। कमरे में साज-सज्जा न होने पर भी अनोखा आकर्षण था, खिड़की पर एक विचित्र-सी छींट के फूलदार आधे परदे थे । आधे खुले भाग से दक्षिणी वायु के मीठे झोंके कमरे को भर देते थे। बरामदे की रेलिंग पर चढ़ी प्रिमरोज़ की बेल देखकर अहल्या को अल्मोड़े के सीमान्त का एक और जंगला याद हो आया । जिसकी खिड़की खोलते ही लाल-गुलाबी प्रिमरोज़ स्नेही आत्मीयों की भांति कमरे में धंस आते थे। बसन्ती की ननिहाल की प्रिमरोज़ लता से कैसा विचित्र सामंजस्य था इस दक्षिणी लता का।

दीवार पर नैपोलियन का बड़ा-सा चित्र टंगा था, दूसरी ओर सन्त मरियम और ईसा के बड़े से बड़े चित्र थे । पास ही एक छोटे-से कमरे में डोरीन नाम की दक्षिणी आया भी रहती थी, जो कमरा झाड़ने-बुहारने, पानी लाने आदि के छोटे-मोटे काम कर दिया करती थी । खाने की व्यवस्था मदर ने शिक्षिकाओं के मेस में कर दी थी । छोटे-से बंगले में ही नहीं, कॉन्वेण्ट के पूरे अहाते में एक अद्‌भुत शान्ति थी।

अहल्या को आठवीं-नवीं कक्षाओं की छात्राओं को पढ़ाना था और कुछ छोटी कक्षाओं को भी । पूरे स्कूल में उसे छोड़कर कोई भी भारतीय मिस नहीं थी, इसी से उसे पहले दिन कुछ-कुछ भय-सा हुआ । अपने जूड़े को विशेष परिश्रम से बांधकर उसने सफेद कश्मीरी सिल्क की साड़ी पहनी। अमिता कहा करती थी कि सफेद साड़ी में वह ईरान की मलिका-सी लगती है-कानों में हीरे के सफेद कर्णफूल, उसके उत्तेजित लाल गालों को और भी रक्तिम दिखा रहे थे । क्लास में पहुंचते ही नवीं कक्षा की छात्राएं 'गुड मार्निंग मिस' कहकर खड़ी हो गई। अहिल्या ने हंसकर अपनी छात्राओं के ठसकेदार दल को देखा। नीली सर्ज़ की स्कर्ट और चमकते सफेद ब्लाउज में उनके गोरे, सांवले, ताम्रमुखी चेहरे दमक रहे थे । उनकी प्रशंसापूर्ण दृष्टि देखकर अहल्या को सन्तोष हुआ ।

मदर उसे पहले ही बता चुकी थी कि नवीं कक्षा कभी भी उसका सिरदर्द बन सकती थी, पिछले साल केम्ब्रिज की पढ़ी मिस कृष्णन को उसी कक्षा ने चुटकियों में उड़ा दिया था । उसके बाद पंजाब की मिस चड्ढ़ा को, जो अपनी हर साड़ी के साथ का मैचिंग लिपस्टिक लगाकर क्लास में आती थीं, इसी कक्षा की उद्दण्ड छात्राओं ने तीन महीने में भगा दिया था । 'तुम्हारे अनुशासन की ही हमें परीक्षा लेनी है, इसी से तुम्हें सबसे प्रॉबलम कक्षा दी जा रही

है,' मदर ने हंसकर कहा था। सचमुच ही नवीं कक्षा मधुमक्खियों का छत्ता थी और उस छत्ते की रानी थी ललिता गणेशन । सत्रह वर्ष की ललिता का रंग एकदम स्याह था, आंखों में अदम्य साहस और चुनौती का कुछ ऐसा भाव था कि अपनी कक्षा की आइरिश, जापानी और अंग्रेज़ लड़कियों की एकछत्र निरंकुश सम्राज्ञी थी। जब अहल्या कुछ प्रश्न पूछती, वह दुष्टता से मुस्कराती, हाथ उठाती और टेढ़े-सीधे उत्तर देकर अहल्या को उकसाने की भरपूर चेष्टा करती । लड़की वास्तव में अभद्र थी । एक बार अहल्या ने उसे कक्षा में बोलने के लिए सज़ा दी, तो वह किसी भी प्रकार उसका आदेश मानने को तत्पर न हुई । अहल्या जान गई कि उस लातों के भूत को बातों से ही मनाना होगा। धीरे-धीरे बड़ी कुशलता से अहल्या ने उसका विश्वास खरीद लिया । मूल्य कुछ महंगा ही पड़ा, कितनी सारी स्कूल गर्ल पत्रिकाएं, इनिड ब्लाइटन की मोटी-पतली पुस्तकें, नटीज, चाकलेट और देश-विदेशों के टिकट। लड़की का पारिवारिक जीवन अनेक कुण्ठाओं का शिकार था । पिता ऊटी के अनेक चाय-कॉफी बागानों के प्रभु थे, मां अपने बगीचे की देख-भाल करने कभी ऊटी जाती थी, कभी नीलगिरि! दोनों बच्चे बोर्डिंग स्कूल में पढ़ते थे। ललिता अपने छोटे भाई को प्राणों से भी अधिक चाहती थी, बोर्डिग स्कूल में ही पिकनिक करते समय वह अपने सहपाठियों के साथ एक झील में तैरता डूबा गया था । ललिता उसे देख भी नहीं पाई थी। घर जाने को उसका जी नहीं चाहता था । ममी और पापा बहुत कम साथ रहते थे । उसके पिता को अधिकतर चाय बागानों का दौरा करना होता था । ममी के मैनेजर कृष्णा नम्बूद्री को देखकर उसका शरीर जल उठता था; उसका छोटा भाई कहता था कि बड़ा होने पर वह नई बन्दूक लेगा और पहला शिकार बनेगा कृष्णा नम्बूद्री !

'वाह, भला ऐसी भी क्या चिढ़ थी उस बेचारे से ।' अहल्या ने एक दिन उससे पूछा ।

'आप नहीं जानतीं, मिस, वह कितना दुष्ट है, पापा से कहता है 'फैटी' ।'

'और ममी से?' अहल्या को उस लड़की की बातों में बड़ा रस आ रहा था ।

'ओह, ममी से वह कुछ नहीं कहता, असल में ममी उसे बहुत पसन्द करती हैं ।'

अहल्या को लड़की के अभद्र व्यवहार की कुंजी मिल गई, अपने कुण्ठा-ग्रस्त पारिवारिक जीवन की भड़ास को वह स्कूल में ही निकालती थी ।

'अच्छा, भला उतनी सुन्दर मिस कृष्णन को तुमने क्यों परेशान किया?' अहल्या ने हंसकर पूछा ।

'आपने क्या देखा है उनको?' बड़े उत्साह से ललिता अपनी बड़ी-बड़ी पुतलियां घुमाती बोली । 'हां, देखा तो होगा ही, मि. देवराजन से उनका विवाह हो गया है, सामने के फ्लैट में तो रहती हैं, जानती हैं, मिस, उनके बेबी होने वाला है, इतना बड़ा पेट हो गया है, लगता है गैस का गुब्बारा हे...' हो-हो कर वह अपनी बातों में स्वयं ही मगन हो उठी, 'जानती हैं, मैं उससे क्यों चिढ़ती थी? उसकी सूरत बिल्कुल मि. नम्बूद्री से मिलती थी इसी से ।' मदर की आहट पाने से ललिता खिड़की से कूदकर छू हो गई । रेवरेण्ड मदर से वह 'रेवी' कहकर पीठ पीछे खूब खिल्ली उड़ाती थी, पर मदर का रौब उसे सहमा हो देता था ।

कुछ ही दिन पहले बिना अनुमति लिए बाजार जाने पर, मदर ने अपने चमड़े के बेंत से उसकी पीठ छीलकर रख दी थी।

'मुझे बड़ी खुशी है, अहल्या,' मदर ने आकर उसकी पीठ थपथपाकर

कहा, 'तुमने हमारे स्कूल की खूंखार शेरनी को भी जीत लिया है-मुझे पूरा विश्वास है कि तुम बहुत दिनों तक हमारे कॉन्वेण्ट को अपना सहयोग देती रहोगी ।'

पर अहल्या का मन धीरे-धीरे उखड़ता जा रहा था, वह जिस समाज में रहकर बड़ी हुई थी, उसका मोह सहज में ही छूटने का नहीं था । स्कूल की लड़कियों के बीच अनुशासन और मर्यादा के बंधन स्वयं ढीले पड़ते जा रहे थे। सफेद-चिट्टे लबादों में, प्रस्तर प्रतिमाओं-सी घूमती जर्मन मदर, कॉन्वेण्ट स्कूल की ऊंची-ऊंची जेल-सी दीवारें और जर्मनी से आए विराट घण्टे की डरावनी घण्टियां उसे मनहूस घेरे में घेरने लगी थीं । बाहर जाना बहुत ही कम होता था । सप्ताह में एक दिन, बोर्डिंग की लड़कियों की कतार को अपने अनुशासन में साधकर उसे बंगलौर के अंग्रेज़ बाज़ार, 'साउथ परेड' तक ले जाना होता था। वही नपे-तुले कदमों को रखती, उसके स्कूल की टुकड़ी टाफी, चाकलेट और अल्लम-गल्लम खरीदकर लौट आती । कभी-कभी वह उन्हें किसी दुकान में छोड़कर साउथ परेड के कोने में स्थित एक छोटे-से मिल्क बार में जा बैठती । काउंटर पर खड़ी सुनहले बालों और सुनहरी मुस्कानवाली एक अंग्रेज़ युवती उसे पहचानकर अपनी मोती-सी झकझक बतीसी दिखा देती । छोटे-से मिल्क बार का आइसक्रीम पूरे बंगलौर में प्रसिद्ध था। एक ही बड़ा-सा गोल कमरा था, जिसमें बड़ी तरतीब से आड़ी-तिरछी कई मेज़ें सधी थीं । अपना चौकोर ब्रीफकेसनुमा बटुआ मेज़ पर रखकर अहल्या एक सण्डी स्पेशल का आर्डर देती, या फिर 'थ्री इन वन' गुलाबीं हरे और हल्के पीले रंग के रुई से आइसक्रीम का । आइसक्रीम का बालनुमा ऊंचा गुब्बार और उस पर तिरछा टिका गुलाबी पारदर्शी बिस्कुट देखकर अहल्या को अपने बचपन की याद ताज़ी हो जाती । क्षण-भर को वह महसूस करने लगती कि वह फिर नन्हीं अहल्या बन गई है, जब मल्लिका मौसी अपने दामी सेण्ट की सुगन्धि से कलकत्ते के प्रसिद्ध रेस्तरां को गमकाती उसे ऐसी ही आइसक्रीम खिलाने ले जाती थीं । जब से वह अपनी जिद से बंगलौर चली आई थी, पापा की एक भी चिट्ठी नहीं आई थी। गौरमोहन बरुआ ने एक पत्र लिखकर उसकी खूब भर्त्सना की थी कि अकेले पिता को छोड़कर जाना उसका एकदम ही बचपना था । सीमान्त युद्ध के बुरे-बुरे समाचार नित्य ही सुनने को मिलते थे । एक चिट्ठी बसन्ती की भी आई थी । वह अपने पति के साथ ससुराल से लखनऊ चली आई थी । पूरे पत्र में उसने अपनी नई गृहस्थी की ही महिमा का पाठ किया था। बार-बार अहल्या को स्नेहपूर्ण निमन्त्रण दिया था कि एक बार वह उस सड़े-से कलकत्ते का मोह त्यागकर लखनऊ चली आए।

लखनऊ, जहां के जादू में बसन्ती स्वयं गले तक डूबकर मधुर डुबकियां खा रही थी, जहां के अमीनाबाद की नुक्कड़ की चाट खाकर अहल्या चटखारे लेती रहेगी, जहां की कुल्फी का स्वाद वह जीवन-भर नहीं भूल पाएगी, जहां की छोटी-छोटी दुकानों में वह नई से

नई डिज़ाइन की साड़ियां देखकर बस देखती ही रहेगी, और फिर स्वयं धरणीधर ने अपनी प्रिय सुन्दरी साली के विरह को आवश्यकता से अधिक स्पष्ट कर लिख मारा था कि अहल्या निराले में उसकी रसीली चिट्ठी पढ़ने पर लाल पड़ गई । दो-तीन बार चिट्ठी को पढ़कर भी उसका जी नहीं भरा, साथ ही एक निराशा से उसका चित्त म्लान हो गया । कहीं भी राजू का उल्लेख नहीं था; भोली बसन्ती को तो ध्यान भी नहीं रहा होगा, किन्तु धरणीधर जीजा तो ऐसे भोले नहीं थे । अहल्या ने बसन्ती को लम्बी-सी चिट्ठी लिखी, जिसमें उसने अपनी नई नौकरी और कलकत्ता छोड़ने का समाचार भी लिख दिया । आठवें दिन बसन्ती की फिर एक चिट्ठी आई, उसने लिखा था कि उसकी तबीयत अचानक खराब रहने लगी थी इसी से पत्रोत्तर में विलम्ब हुआ । धरणीधर को किसी ट्रेनिंग के सिलसिले में कलकत्ता जाना था, क्या वह कक्का को लिखकर उनके रहने की कहीं व्यवस्था कर सकेगी? वह स्वयं मायके जा रही थी, वहीं से वह नानी के पास जाएगी, उनकी तबीयत बहुत खराब हो गई है । उसने लिखा था, अभी तो उन्हें राजूदा वाली बात भी नहीं बताई और भला बतलाएगा भी कौन? क्या बात होगी राजूदा की? कैसी पगली लड़की थी बसन्ती, कैसी अधूरी बात छोड़कर चिट्ठी लिख मारी थी ।

दूसरे दिन उसकी आया डोरीन चाय की ट्रे लेकर आई तो उसकी दोनों आंखें खूब लाल थीं । 'अरे आज चेहरा ऐसा क्या हो गया, क्या तबीयत ठीक नहीं है, डोरीन?' ट्रे रखकर डोरीन साड़ी के पल्लू से आंखें पोंछने लगी । 'मुझे तो भगवान् ने सूनी गोद लेकर ही दुनिया में भेजा था । बड़ी बहन का एक ही लड़का था, फौज में भर्ती हो गया था अपनी ही जिद से। कल रात तार आया है कि वह... ।' डोरीन फूट-फूटकर रोने लगी। अहल्या के हाथ का प्याला हाथ ही में रह गया, डोरीन की बड़ी बहन के बेटे की मौत से उसे सहसा बसन्ती के पत्र की पंक्ति का स्मरण हो आया–अभी तो उन्हें राजूदावाली बात भी नहीं बताई । दिन-भर किसी तरह अपने क्लास निबटाकर वह सन्ध्या को रेवरेण्ड मदर के पास गई । अपनी ही ज़िद से वह नौकरी करने चली आई थी और आज स्वयं मदर से कहने जा रही थी कि वह पिता के पास लौट जाना चाहती है। क्या कहेंगी मदर! कैसी झक्की लड़की है यह! वह मदर के कमरे में गई तो वह किसी ऑरफनेज के अनाथ बच्चों के लिए छोटी-छोटी पेंसिलों के टुकड़े जमाकर पार्सल कर रही थीं, जिनके तापसी जीवन का एक क्षण भी कभी व्यर्थ नहीं जाता था, उनके सम्मुख इस तरह का प्रस्ताव लेकर जाने में अहल्या भारी संकोच के भार से ज़मीन में गड़-सी गई ।

'क्या है मेरी बच्ची? ललिता ने तुम्हें क्या कुछ परेशान तो नहीं कर दिया?' 'नहीं मदर,' अहल्या सकुचाकर पर्दा पकड़कर खड़ी रह गई ।' 'तब आओ मेरी मदद करो,' हंसकर मदर ने उसकी ओर पार्सल बढ़ा दिया, 'तुम इसे सिल दो, मैं डोरीन की बहन रूथ के पास जा रही हूं, जानती हो न, बेचारी का लड़का डेविड युद्ध में मारा गया। कैसा तगड़ा लड़का था, बेचारी रूथ!' पार्सल मदर ने टोकरी में रख दिया, बंगलौर से सत्रह मील दूर उनका एक छोटा-सा अनाथालय था, अपने इसी स्कूल से नाना छोटी-मोटी वस्तुएं एकत्र कर मदर प्रायः उन अभागे अनाथ बालक-बालिकाओं के लिए भेजती रहती थीं ।' 'डोरीन

और रूथ उसी अनाथालय की बच्ची थीं । अहल्या, एक दिन मैं घूमकर लौट रही थी। पौ भी नहीं फटी थी। उन दिनों मदर लूसी बहुत बीमार थीं । स्कूल का सारा काम मुझे ही निबटाना होता था । जल्दी-जल्दी लड़कियों की डॉरमेटरी को जा रही थी कि एक टोकरी में दो छोटी-सी जुड़वां बच्चियां पड़ी थीं । साथ में एक चिट्ठी थी, जिसमें केवल दो अक्षर लिखे थे : 'प्रभु ईसू की शरण में ।' ईसू ने उन्हें शरण दी। उसका घर बसाया और आज एक अभागिनी फिर टोकरी की ही तरह असहाय हो गई है । प्रभु की इच्छा ।' एक लम्बी सांस खींचकर अपनी शान्त आंखों से मदर खिड़की से बाहर न जाने क्या देखती रही थीं! अहल्या अपने प्रस्तावित त्यागपत्र की बात फिर ज़बान पर न ला सकी । चलते-चलते मदर उसे कई छोटे-बड़े काम सौंप गईं । वह उन्हें निबटाती अपने कमरे में पहुंची तो अंधेरा हो गया था, बत्ती जलाई तो देखा उसकी मेज़ पर एक चिट्ठी पड़ी थी।

'आप गई तो एक नौकर यह चिट्ठी दे गया । कह रहा था जिन साहब ने यह भेजी है वे कल जा रहे हैं इसी से आप उनसे आज ही मिल लें,' डोरीन उसके कपड़ों में इस्तिरी कर रही थी।

'अहल्या, किसी काम से यहां आया हूं। तुमसे मिलने स्वयं ही आता, पर मेरे घुटनों के आर्थराइटिस को तो जानती हो । वेस्ट एण्ड में हूं, मिल जाना–गौरमोहन ।'

अहल्या का चित्त उत्फुल्ल हो उठा, दिन-भर उसका मनहूसी में कटा था । गौरमोहन काका के साथ कलकत्ते की माया ने उसे जकड़ लिया, क्यों न वह उनके साथ ही चली जाए। वह तो उसके लिए बीसियों बहाने ढूंढ़ देंगे–मदर से कहेगी उसके पिता बहुत बीमार हैं, उनके मित्र लिवाने आए हैं, फिर क्या मदर रोक लेंगी? मदर के लिए एक चिट्ठी लिखकर वह उनकी मेज़ पर छोड़ आई, मदर उस पर बहुत विश्वास करती थीं और आज तक वह कभी इधर-उधर जाती भी नहीं थी । जल्दी-जल्दी से उसने कमरा बन्द किया और बाहर निकल गई। वेस्ट एण्ड बंगलौर का भव्य होटल है। बड़ा-सा टेनिस कोर्ट पारकर वह कई घुमावदार सीढ़ियां चढ़ती दुमंज़िले पर पहुंची, तो पता लगा कि बरुआ नीचे की मंज़िल पर है । सीढ़ियां उतरते ही वह उनसे टकराने ही को थी कि गौरमोहन बाबू अपने स्थूल शरीर को संभालकर धम से कुर्सी पर बैठ गए : 'बाप रे बाप! लगता है लड़की पैरों में स्केटिंग-व्हील बांधकर उतरती है, बैठो-बैठो, चिट्टी मिल गई? अब देख तो बेटी, इन घुटनों को लेकर कैसे आता?"

उन्होंने अपने दो बुरी तरह सूजे, वात से लूंज-पुंज घुटनों से महीन जरी के किनारे की धोती हटा दी ।

'बहुत सूजन है सच, फिर आप ऐसे में यहां क्यों चले आए काका बाबू?' अहल्या कुर्सी खींचकर उनके पास ले आई।

'अपनी लाडली भतीजी को देखने । अब पूछ, फिर देखकर क्या करेंगे–' भोले शिशु की-सी मुद्रा बनाकर उन्होंने अपने दोनों गप्पू गालों को अपनी हथेलियों में टिका लिया।

'अच्छा चलिए, बताइए फिर क्या करेंगे?' अहल्या ने हंसकर उनके परिहास में योग दिया ।

‘भतीजी को घर ले जाऊंगा, इस दक्षिणी आबहवा में मेरी गोरी बच्ची काली जो पड़ी जा रही है। तुम्हें मेरे साथ कल ही चलना होगा ।’ एकाएक स्वर को आदेश के ढांचे में ढालकर गौरमोहन बरुआ सीधे बैठ गए।

‘वाह जी, ऐसा आसान है नौकरी छोड़ना, पहले एक महीने का नोटिस देना होगा, लड़कियों के इम्तहान हो रहे हैं।’

‘भाड़ में जाए इम्तहान! और रही तेरी नौकरी-काफी खिलवाड़ हो चुका है, जितनी तनख्वाह तू पाती है उतनी ही तनख्वाह तेरा बाप तेरे बटलर को देता है । पगली कहीं की, तेरे पिता की तबीयत ठीक नहीं है ।'

‘क्या हुआ है पापा को?’ अहल्या का स्वर चिन्ता से कांप उठा, ‘कल ही तो चिट्ठी आई है, कुछ भी नहीं लिखा।’

‘ऐसी बातें चिट्ठी में नहीं लिखी जातीं–इस निगोड़े युद्ध ने कैसे-कैसे उद्योगपतियों को लपेट में ले लिया है, कभी किसी इलेक्शन फण्ड में कर्नल ने कुछ रुपया दिया था, बस उसी को लेकर अब कीचड़ उछाल रहे हैं। खैर, तुम्हें बहरहाल मेरे साथ चलना होगा। न हो तो एक महीने की छुट्टी ले लो–कहो तो मैं चलकर मदर से बात कर लूं।’

‘नहीं, काका बाबू, मैं मदर से छुट्टी के लिए कहूंगी तो वह कभी भी मुझे नहीं रोकेंगी।
’

दूसरे दिन अहल्या के छुट्टी पर जाने का समाचार हवा की तरह स्कूल में फैल गया, ललिता गणेशन ने रो-रोकर आंखें सुजा ली थीं । उस उद्दण्ड बालिका को देखकर पहले अहल्या का खून खौलने लगता था, पर अब उसे छोड़कर जाने में उसे स्वयं ही दुख हो रहा था । मदर ने उसे छुट्टी तो दे दी, पर उससे एक अनुरोध किया, जिसे वह टाल नहीं सकी और गौरमोहन बाबू कुछ रुष्ट होकर अकेले ही कलकत्ता चले गए। क्रिसमस की छुट्टी पर उनके स्कूल की दिल्ली पार्टी को दिल्ली तक पहुंचाने का भार मदर उसे सौंपना चाह रही थीं, ‘दस दिन क्रिसमस के रह गए हैं–क्या तब तक तुम रुक सकोगी अहल्या? उसके बाद तुम अपनी क्रिसमस छुट्टी और बढ़ा सकती हो,’ उन्होंने नरम मीठी आवाज में सौजन्य का मधु घोलकर पूछा, तो वह मान गई ।

पिता को उसने एक पत्र लिखकर अपनी छुट्टी की असमर्थता का उल्लेख कर दिया था, धरणीधर जीजा के पहुंचने से पहले वह स्वयं ही कलकता पहुंच जाएगी यह भी उसने लिख दिया था, पर कर्नल का कोई उत्तर नहीं आया ।

इक्कीस

दिल्ली पार्टी लेकर वह चली, तो लड़कियों का दल चिड़ियों-सा चहक रहा था । उनके रंग-बिरंगे बक्स और होल्डाल की गिनती कर वह थककर चूर हो गई थी । एक लड़की को संभालती, तो दूसरी छिटककर बुकस्टाल पर भागकर कॉमिक खरीदने लगती। कभी लड़कियों को गिनती, कभी बक्सों को। उन्हें डांटती-फटकारती वह फर्स्ट क्लास के डिब्बे में घसीट ले गई । डिब्बा रिजर्व था । अकेले डिब्बे में लड़कियां खूब धमाचौकड़ी मचाए कूद रही थीं। घर जाने का उनका उल्लास ट्रेन छूटने के साथ ही और तीव्र हो उठा ।

'सुनिए मिस, हमारे डिनर का क्या होगा?'

'हमें डाइनिंग कार में ले चलिएगा न?'

'मिस, मैं वेज हूं।'

'हाय, मिस, मैं नान-वेज हूं, ध्यान रखिएगा ।'

'पापा स्टेशन में आए होंगे और ममी भी।'

'मैंने इसकी ममी को देखा है, खूब सिगरेट पीती हैं ।'

'चल हट, आई हैं बड़ी, तेरी ममी पीती होंगी ।' अहल्या का माथा दर्द से फटा जा रहा था । 'ओफ ओह, लड़कियो, क्या थोड़ी देर चुप बैठोगी? मेरे सिर में बहुत दर्द है, बिल यू प्लीज़ कीप क्वायेट ।' अहल्या ने खिड़की का सहारा लेकर आंखें बन्द कर लीं ।

लड़कियों का चहकता झुण्ड क्षण-भर को चुप पड़ गया, फिर फुसफुसाहट का जाम चलने लगा ।

'ललिता का बॉय फ्रैण्ड कौन है, जानती है? बौल्डविन स्कूल का सीनियर प्रिफेक्ट श्रीनिवासन, उसने उसकी सत्रहवीं वर्षगांठ पर उसे 'लोलिटा' उपहार में दी है–मैंने पढ़ने को मांगा तो मुकर गई ।'

अहल्या चुपचाप लड़कियों की बातें सुन रही थी। कभी ऐसे ही वह भी चहकती थी, ऐसी ही निरर्थक बातों के छल्ले बनाती वह और उसकी स्कूल की सहपाठनियां ट्रेन का लम्बा सफर आंखों ही आंखों में काट लेती थीं और आज उन्हीं बातों से उसका सिर दुखने लगा था। रात का खाना मंगवाकर लड़कियों ने खा लिया था और डिब्बे की बत्ती बुझते ही उनकी ही-ही, ठी-ठी और रंग में आ रही थी । मिस, कोई किस्सा सुनाइए न भूत का!' रेबेका जोज़ेफ अहल्या के पास की ही बर्थ पर लेटी थी, वहीं से उसने फरमाइश की । और लड़कियां समवेत स्वर में उसका समर्थन कर उठीं : 'प्लीज़ मिस, प्लीज़ सुनाइए न... ।'

'चुप रहो, देखती नहीं कोई दरवाजा खटखटा रहा है ।' अहल्या ने खिड़की से झांककर देखा । बेजवाड़ा के स्टेशन की बत्तियां जगमगा रही थीं । उसके डिब्बे के बाहर

तंग जीन्स में एक बालकटी लड़की हाथ में सूटकेस लटकाए, जोर-जोर से हथेलियां दरवाज़े पर भड़भड़ाए चली जा रही थी।

'क्या बात है,' अहल्या ने खिड़की खोलकर पूछा, 'यह पूरा डिब्बा हमारी स्कूल पार्टी के लिए रिजर्व है।'

'मैं जानती हूं पर बड़े संकट में हूं। कृपा कर खड़े होने का भी स्थान दे सकेंगी, तो बड़ा आभार मानूंगी ।'

एक क्षण हिचकिचाकर अहल्या ने द्वार खोल दिया । गार्ड ने झण्डी दिखा दी थी और इंजन अधैर्य की सीटियां और धुएं की फुफकारें छोड़ता चलने लगा । एक प्रकार से हाथ पकड़कर चलती ट्रेन पर अहल्या ने उस अपरिचिता किशोरी को खींच लिया।

'ओह, धन्यवाद, आपने बचा लिया मुझे ।' स्कूल की लड़की-सी ही दिख रही उस किशोरी ने हंसकर कहा । कम्बलों से कई जोड़े चेहरे निकल आए थे और उनकी उतावली दृष्टि उस अपरिचिता को, डिब्बों के धुंधले प्रकाश में ही चीर-फाड़ रही थी।

'कहां जाना है आपको?' अहल्या ने कुछ रूखे स्वर में ही पूछा, अपने एकान्त, रेल के डिब्बे में उस अपरिचिता का अचानक आगमन उसे कुछ जंचा नहीं था ।

दिल्ली जाऊंगी–वैसे बगल के डिब्बे में एक बर्थ खाली है, पर उसमें दो ऐसे लम्बे-तगड़े सरदारों की विकट जोड़ी थी कि रात-भर उनके साहचर्य का भय मुझे सहमा गया,' लड़की ने फिर बड़ी भोली-सी हंसी के बीच अपने मोती-से दांत दिखाए और दोनों पैर ऊपर उठाकर बैठ गई । लड़की वास्तव में आकर्षक थी । चेहरा कोई खास सुन्दर नहीं था, पर पतली-पतली टांगों में चूड़ीदार-सी कसी जीन्स की लाल-पीली चटकीली धारियों से मेल खाती उसकी मूंगिया रंग की वेस्ट बड़े कायदे से पहनी गई थी। गले में सोने की पतली चेन से एक क्रॉस लटका था । बालों को पैरॉक्साइड से डाई किया गया था, इसमें कोई सन्देह नहीं था। पर उनकी रेशमी सुनहली लहरों का सौन्दर्य एकदम अपना निजी और मौलिक था । दोनों आंखें बड़ी-बड़ी कटावदार थीं । नाक तीखी और कुछ मुड़ी हुई थी। हंसने पर स्वस्थ दांतों की झलक पूरे चेहरे को जगमगा देती थी। लड़कियों पर उसका रौब जम रहा था । अहल्या ने अपने पैर सिकोड़कर उसके लिए जगह बना दी, तो वह हंसकर बोली, 'अरे, नहीं, क्यों कष्ट करती हैं, मैं बड़े आराम से रात ऐसे ही काट लूंगी । मुझे तो रात-भर जगने का भी अभ्यास है।'

'नाइट ड्यूटी की नर्स हैं शायद,' लड़कियों में से किसी की फुसफुसाहट स्पष्ट होकर गूंज गई ।

'ओ, माई!' वह अपरिचिता ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी : 'पर मैं नर्स नहीं हूं, तुम्हारी मिस की ही भांति मैं भी तुम जैसी नटखट लड़कियों की स्कूल मिस्ट्रेस हूं मिस डी. सूजा । वॉल्टेयर में मेरी मां हैं, उन्हीं से मिलने गई थी। मेरा नाम जेकेलीन है, सीनियर केम्ब्रिज को लिट्रेचर पढ़ाती हूं ।' अपनी जीन्स की तंग मुहरियों की जिप सरकाकर जेकेलीन ने ऊपर को मोड़ दी और पालथी मारकर बैठ गई। रेलगाड़ी के झकोलों के साथ-साथ उसके कटे केशगुच्छ के रेशमी गुच्छे रह-रहकर हिल रहे थे । अपना नाइलॉन कार्डिगन उतारकर उसने

खूंटी पर टांग दिया और चौकोर पर्स से लिपस्टिक निकालकर बड़े इत्मीनान से ओठों पर फेरने लगी। रात बहुत हो गई थी, लड़कियों को चुपचाप सो जाने का आदेश देकर अहल्या ने अपना एक तकिया जेकेलीन की ओर बढ़ाकर कहा, 'कब तक ऐसे बैठी रहेंगी, काफी जगह है, इसी पर लेट जाइए, दोनों पैर सीट के हत्थे पर रख लीजिए, काफी जगह निकल आएगी ।' उसके प्रस्ताव पर मनन कर जेकेलीन ने हंसकर दोनों पैर सीट पर रख दिए। एक ही तकिया पर उसके सुनहले और अहल्या के काले केशपाश का संगम बन गया ।

उसके विदेशी युडीकोलेन की मधुर सुगन्ध की गमक से अहल्या को न जाने कब नींद आ गई । सुबह उठी, तो देखा सामने की सीट पर अपनी सुडौल टांगों का सेतु बनाए, जेकेलीन डी-सूजा सिगरेट फूंक रही थी । 'हेलो गुड मार्निंग,' वह हंसकर बोली, 'खूब कसकर सोती हो, तुम्हें देखकर मुझे ईर्ष्या हो रही थी, मैं तो जब तक वेरामून की एक-दो गोलियां न निगल लूं, निगोड़ी नींद आने का नाम ही नहीं लेती । तुम्हारी भेड़-बकरियां तो सब सो रही हैं ।' सिगरेट के बचे टुकड़े को खिड़की से फेंककर जेकेलीन खड़ी होकर अपनी जीन्स के खुले बटन कसने लगी। अहल्या ने देखा, जेकेलीन रात के धुंधलके में जितनी आकर्षक लगी थी, उतनी वास्तव में थी नहीं। उसका शरीर नि:सन्देह बड़े यत्न से सजाया-संवारा गया था, किन्तु आंखों के नीचे स्याही की धूमिल रेखा, लिपस्टिक के निरन्तर प्रयोग से रंग उठे ओंठ और कृत्रिम परिधानों की नींव पर टिका उसका विदा लेता यौवन पुरुष की दृष्टि को ठग सकता था, नारी को नहीं ।

बाईस

लड़कियां भी जग गई थीं और अहल्या आश्चर्य से स्तब्ध थी । कैसी अद्‌भुत है यह अपरिचिता । क्या हिप्नोटिज़्म तो नहीं जानती। दिल्ली पहुंचने तक जेकी की अहल्या से खूब घुट गई थी। दिल्ली पहुंचने पर जब अहल्या ने होटल में रहने का प्रस्ताव रखा, तो वह बिगड़ गई, 'हद है, मेरे रहते तुम होटल में रहोगी और दिल्ली के होटल! इतना ही पैसा भारी हो गया है तो मुझे दे देना, कब जाना है तुम्हें कलकत्ता, कल न? बस फिर, मेरे साथ रहोगी तुम-जंगपुरा के पास हमारा छोटा-सा फ्लैट है । जस्ट ए टीनी वीनी फ्लैट,' अपनी दोनों हथेलियों से गुड़िया के घर का-सा आकार बनाकर वह बोली : 'हम पांच लड़कियां रहती हैं, एक हमारी लैण्डलेडी हैं मिसेज़ डटा। उन्होंने ही नया मकान बनवाया है, अभी पूरा बना भी नहीं, छत बन रही है, गैरेज भी अधूरा है, तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा, समझीं?' और अहल्या राज़ी हो गई, देहली की महानगरी में अकेली होटल में वह कैसे रहेगी । लड़कियों को लेने स्टेशन पर ही उनके संरक्षक आ गए थे, एक-दो ने उसे अपने साथ चलने का आग्रह भी किया, पर वह जेकेलीन को दिखाकर बोली : 'धन्यवाद, पर मेरी एक मित्र हैं, मैं उसी के साथ जा रही हूं।' जेकेलीन बाहर आई तो एक भड़कीली फियट उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । 'ओह, आण्टी ने गाड़ी भेज ही दी, हाउ स्वीट ऑफ हर। क्यों बिन्दादीन, मेम साहब की तबीयत अब ठीक है?'

'जी, हां, आज तो मेम साहब कुत्ते को दिखाने अस्पताल गई हैं ।' अहल्या जेकी के साथ आगे की ही सीट पर बैठ गई, जेकी स्वयं ड्राइव कर रही थी और बिन्दादीन पीछे बैठा था । पहली ही दृष्टि में अहल्या को वह व्यक्ति कदर्य लगा, उसकी ड्राइवर की वर्दी में शायद उसकी स्वामिनी का मोनोग्राम खुदा था, चेहरा गोल था और चेचक के दागों से इस बुरी तरह गुदा था कि फैली नाक के नथुने भी कुछ-कुछ नुंच गए थे। दोनों कानों तक उठी हुई मूंछों के सिरे साही के कांटों से ही जहरीले लग रहे थे। अहल्या को उसकी आंखें अपनी गर्दन पर गड़ती नज़र आ रही थीं । लग रहा था कि वह उसी की सीट पर झुका आ रहा है और किसी भी क्षण उसकी नुकीली मूंछों के जहरीले सिरे उसके गालों का स्पर्श कर सकते हैं । उसक बदन अनजाने ही में जोर से सिहर उठा ।

'क्यों, क्या ठण्ड लग रही है?' हील पर ही सधे चालक की भांति जेकी ने कुहनी टिकाकर स्पीड को साध लिया और हंसकर पूछा ।

नहीं तो,' अहल्या का हृदय जिस ठण्ड से कांप रहा था वह कैसे

कहती । कई सड़कों को पार कर, जेकी ने कार एक नए बने मकान के सामने रोक दी। ड्राइवर ने उतरकर कार का द्वार खोल दिया और सामान उतारने लगा ।

'यही है हमारा फ्लैट । है न प्यारा-सा?' जेकी ने हंसकर पूछा ।

फ्लैट वास्तव में सुन्दर था, सीढ़ियों के घुमावदार घेरों के इर्द-गिर्द सनब्रेकर लगे थे । बरामदे में एक बेंत के बने स्टैण्ड पर कई छोटे रंगीन जापानी कण्डीलनुमा टोकरियों में मनीप्लाण्ट के पत्ते झूल रहे थे। एक अखरोट की गोल मेज़ पर विदेशी पत्रिकाओं का अम्बार चुना धरा था । एक लकड़ी के तख्ते पर फ्लैट का नाम खुदा था । 'ऊपर हम लोग रहती हैं, नीचे आण्टी का कमरा और किचन है, चलो हाथ-मुंह धो लो । पांच बजे के बाद गुसलखाना मिलने में तुम्हें दिक्कत होगी–सब आ जाएंगी।' पास ही पास सटी तीन केविन, चारपाइयों पर एक-से पलंगपोश बिछे थे, तीनों के सिरहाने अस्पताल के मरीज़ों की-सी छोटी आल्मारियां थीं । दीवारों के आधे कलेवर पर हल्का नीला रंग पुता था । ऊपर का भाग एक अजीब-से स्प्रेवर्क से रंगा गया था । दीवार पर ही तीन खूंटियों पर क्रमशः तीन बड़े-छोटे और उससे छोटे ड्रेसिंग गाउन झूल रहे थे-पलंग का आकार भी गाउन की लम्बाई के आकार से मेल खाता था । पहले बड़ी, फिर उससे छोटी और अन्त में सबसे छोटी पलंग लगी थी।

'यह मेरा, सन्ध्या चटर्जी का और रागिनी कौल का कमरा है, आण्टी हमेशा हमको तीन भालू कहती हैं, एकदम बच्चों की-सी सनक चढ़ती है आण्टी को–एक दिन तीन खास तरह के पलंग बनवा लाईं, फिर छोटी-बड़ी तीन आल्मारियां बनवा दीं और पिछले हफ्ते हमारी यह तस्वीर खिंचा दी,' जेकी ने स्टील के फ्रेम में जड़ी तस्वीर उठाकर दिखाई–एक-दूसरे का कन्धा पकड़े जेकी के साथ अपने कद की ऊंचाई के क्रम से खड़ी दो सुन्दर-सी लड़कियों के चेहरे तस्वीर में मुस्करा रहे थे।

'यह मुझसे छोटी सन्ध्या चटर्जी है-किसी सरकारी दफ्तर में काम करती है । और यह है रागिनी कौल–कभी मॉडल बनाती है, कभी स्टेनो, वैसे रेडियो स्टेशन में भी काम करती है, बड़ी प्यारी बच्ची की-सी आवाज है, इसी से जब कभी किसी बच्ची का पार्ट करना हो, रेडियो स्टेशन से इसे बुला भेजते हैं । थोड़ी देर बात करके आती है पट्टी और तगड़ा चेक ले आती है । आओ तुम्हें दूसरा बेडरूम दिखाऊं,' जेकी उसे दूसरे कमरे में खींच ले गई। वह कमरा उनके कमरे से बहुत बड़ा और हवादार था । उसमें तीन छोटे तख्तनुमा पलंग बिछे थे। कमरे की व्यवस्था का स्तर भी ऊंचा नहीं था। कहीं पर पलंगपोश मुड़ा था, कहीं तकिया पेट फूलकर बहुत ऊंचा उठ गया था, लगता था चटपट बिस्तर किसी प्रकार ढांप-ढूंपकर ही सोनेवालियां काम पर निकल गई हैं। एक मेज़ पर जूठे प्याले पड़े थे। कुछ बुझी सिगरेटों के टुकड़े थे और दो-तीन खाली दियासलाइयों के डिब्बे कोने में पड़े थे । चार-पांच चॉकलेट की पन्नियां मोड़-माड़कर इधर-उधर फेंकी गई थीं ।

'ओफ, कितना अनटाइडी कमरा है, आई एम सॉरी,' तुम्हें बेकार ही यहां लाई–बड़ी नालायक लड़कियां हैं तीनों, इसमें रहती हैं रबिया सुल्ताना–खोजा मुस्लिम है-एक अखबार की रिपोर्टर है; दूसरी है मारी वांग, चीनी क्रिश्चियन है, बाप की जूतों की दुकान थी, इधर सीमा की गड़बड़ी के बाद अच्छी-खासी मुसीबत में वह पड़ गया था, चीन को वापस चला गया । पर मारी पिता के साथ नहीं गई, किसी बहुत बड़े होटल में काम करती है, तीसरी है–मंजरी मजूमदार, साड़ियों का बिजनेस करती है । अब आओ, तुम्हें अपना सम्मिलित दीवानखाना दिखाएं ।'

एक संकरा-सा बरामदा पार कर वह अहल्या को लेकर एक बड़े-से कमरे में पहुंची। यह शायद उनके होस्टल का सबसे बड़ा कमरा था । बत्ती का बटन दबाते ही अहल्या दंग रह गई । जैसा वैभव प्रायः 'लाइफ' और 'पोस्ट' के चित्रों में देखने को मिलता है, वैसा ही समृद्धि और शालीनता से जगमगाता कमरा वर्किंग गर्ल्स की हैसियत से बहुत ऊंचा लग रहा था । पूरे कमरे में मोटी मिरजापुरी या भदरी की कारपेट थी, बिना हत्थे के दो सोफा आमने-सामने लगे थे, उन पर कोई रेशमी गद्दियां ऐसी लापरवाही से पड़ी थीं जो बड़े यत्न से दिखाई जाती हैं । एक ऊंचा-सा आबनूस का टेबुल लैम्प, छत की ऊंचाई को चूम रहा था, लैम्प की रोशनी एक भयावने विकट हब्शी के चेहरे की दो लाल-लाल आंखों से निकल रही थी। 'कितना सुन्दर लैम्प है ! यह आण्टी पिछली बार सउदी अरब से लाई थीं,' जेकी अहल्या को बड़े गौर से देखकर बोली, मन ही मन वह भांपना चाह रही थी कि उनके वैभव का अहल्या पर कैसा प्रभाव पड़ा है ।

'म्याऊं,' करता एक बहुत बड़ा कद्दावर काला पार्शियन बिल्ला कूदकर कहीं से आ गया और अपनी उठी पीठ को जेकी के पैरों से घिस-घिसकर 'म्याऊं-म्याऊं' करने लगा।

'ओह, माई स्वीट,' जेकी ने उसे उठाकर गोदी में भर लिया, 'लुक हू हैज़ कम, (देखो कौन आया है ।) तुम्हारी एक और मौसी! प्रिन्स नाम है इसका, मेरे एक फारसी मित्र ने मेरी वर्षगांठ पर मुझे भेंट किया था ।'

'मिस साहब, चाय लग गई है,' एक चपटी नाक की नेपाली आया ने पर्दा उठाकर कहा ।

'चलो, चाय पी लें, क्यों क्या ख्याल है?' हंसकर जेकी ने कहा, पर अहल्या कुछ न बोली। न जाने कैसा लग रहा था उसे, एकदम ही अपरिचित लोगों के बीच उसे रात-भर रहना होगा, यह क्या उसने बुद्धिमानी का काम किया था ! खाने का कमरा भी बहुत बड़ा नहीं था । एक लम्बी मेज़ पर कई छोटी चटाइयां बिछी थीं, उन्हीं पर चाय सजाकर आया सात प्याले रख गई–एक तश्तरी में नमकीन काजू और भुने बादाम सजे थे, दूसरी तश्तरी में वह गर्म पकौड़ियां लाकर बोली : 'अब तो और मिस साहब भी आती होंगी। चाय सबके लिए लगा दूं।' जेकी उसकी बात पूरी सुन भी नहीं पाई थी कि कई जोड़ी चप्पलों की, जूतों की खट-खट खुट-खुट सुनकर तालियां बजाकर बोली : 'आ गई सब, जल्दी चाय लो तुम, ठण्डी हो जाएगी, खूब छकाऊंगी, मुझे पूंछे तो तुम चुप रहना', कह वह जल्दी से मेज़ के नीचे छुप गई । अहल्या भौचक्की-सी बैठी रह गई, इतने ही में किसी फैशन परेड की-सी भीड़ से कमरा भर गया । पांच बनी-ठनी देशी-विदेशी रूपसियां उसे अचरज से घूरने लगीं ।

'हलो, माई ब्यूटी–कौन हो जी तुम?' एक गोरी-सी लड़की जो उन सबमें चुलबुली लग रही थी, आगे बढ़ आई ।

दूसरी सांवली, मोटी गदबदे की बदन की लड़की, जो अभी सीढ़ियां चढ़ने के जोश में हांफ रही थी, लपककर एक कुर्सी खींचकर अहल्या से सटकर बैठ गई और बड़ी ही बेहया दृष्टि से उसे घूरने लगी ।

'लगता है कोई आण्टी की लेटेस्ट खोज है,' बड़ी अदा से अपनी साथिनों की ओर उसने मुस्कराकर मुट्ठी भर काजू मुंह में ढूंस लिया ।

'ही-ही-ही-ही,' चीनी, ईरानी, खोजा, हिन्दू, ऐंग्लो लड़कियां निर्लज्ज स्वर में हंसने लगीं। 'ओह शट अप! तुम सबकी सब निहायत बोर हो,' मेज़ के नीचे से जेकी पंजे टेकती बाहर निकल आई । 'कैसा दिक कर रही हो बेचारी को, माई पुअर स्वीट! इनसे हमारी मुलाकात ट्रेन में हुई, बिना टिकट के ठाट से सफर किया हमने फर्स्ट क्लास में, इनसे कह दिया कि बगल के डिब्बे में दो सरदार हैं, हमें डर लगता है !' स्वर को बच्चे की तरह तुतला-तुतलाकर जेकी ने दोनों हथेलियां नाटकीय ढंग से कांपते कलेजे पर धरकर कहा ।

'अरे, वाह रे मेरी जेकी, मान गई तेरी बात !' खोजा मुस्लिम की-सी वेशभूषा-सजी लड़की ने बढ़कर उसकी पीठ ठोंकी ।

'हमारी कौम सरदार, पठान, हिन्दू, मुस्लिम किसी से नहीं घबड़ाती,' जेकी ने सीना ठोंककर कहा ।

'हियर हियर,' वंशी की-सी मीठी आवाज़ में एक दुबली-पतली एनीमिक-सी लड़की ने कहा और अपनी पतली-पतली बांहों का फंदा जेकी के गले में डालकर झूल गई ।

अहल्या सिर से पैर तक कांप रही थी । लग रहा था किसी भी क्षण वह भरभराकर मेज़ पर औंधी गिर पड़ेगी ।

एक बार धूर्त गुरु-शिष्य के चक्कर में पड़कर वह ऐसी ही अधमरी हो गई थी तब उसके भयान्धकार को चीरकर राजू खड़ा हो गया था, आज उसे कौन बचाएगा?

'आज तो खाना बनेगा नहीं,' जेकी ने टांगें मेज़ पर रख दीं और गोल, लम्बोतरे, सांवले, पीले चेहरेवाली पांचों सुन्दरियां घेरा बनाकर अहल्या के पास बैठ गई। 'आण्टी सुना, कह गई हैं कि मोतीमहल से तन्दूरी मुर्ग आएगा, कोई विदेशी दूतावास के अतिथि आ रहे हैं ।' एक आंख मींचकर उसने फिर बड़े अन्दाज़ से पैरों की टखनियां मेज़ पर टैप कीं 'सच ? तब तो, बी मस्ट सेलीबरेट ।' वही दुबली-पतली लड़की आल्मारी खोलकर दो बोतल निकाल लाई ।

'क्या हो रहा है जी यह सब?'

अहल्या ने आंखें उठाईं–उसने आगन्तुका को देखा और उसने अहल्या को ।

दोनों के चेहरे कागज़ की तरह सफेद पड़ गए–सफेद रेशमी लेस लगी साड़ी व बिना बांहों की एक पट्टी-मात्र चोली पहने खड़ी थी मल्लिका! सरकार-ओठों पर गहरा लाल लिपस्टिक लगा था, आंखों का धूप का चश्मा उतारकर उसने हाथों में लटका रखा था, पैरों के कोर्ट शू से लेकर केश परिपाटी के सर्वथा नवीन रूप को देखकर अहल्या स्तब्ध थी ।

क्षण-भर पूर्व कमरे में जो सस्ती हुल्लड़बाजी चल रही थी, अचानक शान्त पड़ गई ।

'आइए, आण्टी, इनसे मिलिए, यह मेरी आपको तुच्छ भेंट है,' कहकर जेकी ने बड़ी निर्लज्जता से अहल्या का आंचल खींचकर नीचे फेंक दिया ।

'देखिए क्या रूप है और कैसी अपूर्व देह-यष्टि,' वह अपनी सस्ती हंसी हंसती अहल्या की ठुड्डी पकड़कर कहती जा रही थी । फिर अचानक अहल्या, जो अब तक अपनी चेतना खो बैठी थी, बिजली की गति से तड़पकर उठ खड़ी हुई–आंचल संभालकर उसने जेकी को जोर से धक्का मारा । मेज़ कुर्सी से टकराती, तीन-चार प्याले-प्लेट फोड़ती जेकी डी. सूजा धड़ाम से चारों खाने चित्त ज़मीन पर गिर पड़ी । वहीं से वह गालियां देती चीखी : 'बिन्दादीन, पकड़ो इस छोकरी को.... !'

तेईस

अहल्या बड़े धैर्य से उठी, उसने अपना सूटकेस उठाया और पर्दा उठाकर तेज़ी से बाहर निकल आई । मल्लिका मूर्ति-सी पर्दा पकड़कर खड़ी ही रह गई । चार-पांच लड़कियां धराशायी जेकी की परिचर्या में लगी रहीं। अहल्या कब की हवा की तरह बाहर निकल गई थी।

सड़क पर आकर वह सूटकेस लेकर तेज कदमों से बढ़ती जा रही थी। अंधेरा घना हो गया था, उसके पैर अभी भी उत्तेजना-मिश्रित भय से ठक-ठक कांप रहे थे। हाथ का सूटकेस कभी एक हाथ में झूल रहा था, कभी दूसरे में । दिल्ली की कोई सड़क क्या इतनी भी सूनी हो सकती थी? कोई आकर उसका गला घोंटकर रास्ते में फेंक भी दे, तो किसी को कानों-कान पता नहीं चलने का । उसकी आंखों में चेष्टा कर रोके जाने पर भी आंसू छलछला आए–दूर एक कार की बत्ती चमकी, उसके हृदय में आशा का संचार हुआ, पर क्या पता जेकी के होस्टल के विदेशी अतिथिगण हों । छि:-छि:, मल्लिका मौसी कितनी सस्ती और बाजारू लग रही थीं । वर्किंग होस्टल की मेट्रन बनकर जनता को ऐसे छलने की ही उन्हें क्या आवश्यकता पड़ी थी? पर मिसेज़ डटा के नाम के पीछे भी उनका कोई रहस्य था, उन्होंने विवाह कर लिया था? कार के निकट आने के पूर्व ही अहल्या आड़ में हो गई, पर कार के चालक ने उसे देख ही लिया । खचाक से ब्रेक लगाकर उसने गाड़ी रोक दी ।

'इतनी रात में आप अकेली कहां जा रही हैं, जी, आइए, मैं आपको छोड़ दूं।'

अहल्या का रक्त भय से जम गया । डर के मारे उसके मुंह से बोल भी नहीं फूटा, न वह आंख उठाकर चालक को देख ही पाई ।

'ज़रा जल्दी करेंगी क्या? मुझे अभी अस्पताल जाकर अपनी बीमार पत्नी को देखना है और आध घण्टे के भीतर हवाई जहाज़ उड़ाकर काबुल पहुंचना है, आइए,' उसने बड़े सौजन्य से कार का द्वार खोल दिया । अहल्या नाहीं न कर सकी । वह उसकी बगल में बैठ गई, पर अभी भी उसके दोनों पैर बुरी तरह कांप रहे थे । बड़े यत्न से सूटकेस को दोनों हाथों से जकड़कर वह हाथों का कांपना रोक रही थी ।

'कहां उतरना है आपकी?'

अहल्या ने देखा : चालक ऐयरफोर्स की वर्दी में था ।

'आप मुझे किसी भी होटल में छोड़ दें,' अहल्या ने धीर से कहा ।

'क्या आप पहली बार देहली आई हैं?' अहल्या ने देखा उस व्यक्ति के हाथ बड़े-बड़े और पंजा फौलादी था ।

'जी, हां, एक ही रात रहना है मुझे, कल मैं चली जाऊंगी,' उसने ऐसे भोलेपन से कहा जैसे दिल्ली में एक ही रात बिताने का प्रस्ताव सुनकर आगन्तुक उसे मूर्खा नहीं

समझेगा।

'पर सवाल तो एक रात का नहीं, आपके एकदम अनजान होने का है,' क्षण-भर हिचकिचाकर वह व्यक्ति फिर बोला, 'क्या आप मेरे घर चलना पसन्द करेंगी? मेरी पत्नी बीमार है और दस दिन से अस्पताल में पड़ी है, लेकिन घर पर मेरी बड़ी लड़की है, मां है, आपका साथ भी हो जाएगा, कल आपको मेरी लड़की स्टेशन तक छोड़ आएगी ।'

अहल्या चुप रही । एक बार दूध की जली थी, अब मठा भी फूंक-फूंककर पी रही थी। 'देखिए, यह रहा मेरा बंगला, कहिए छोड़ दूं यहीं पर ? मेरे पास समय कम है,' उस व्यक्ति का स्वर खीझ से कुछ रूखा हो गया । हार्न बजाते ही एक बहुत लम्बी-सी लड़की बाहर जा गई।

'क्यों, पापा, आप क्या अस्पताल नहीं गए?' लड़की सांवली और बेहद दुबली थी । सलवार उसकी टांगों से चिपकी-चिपकी थी और बिना बांहों की कमीज़ से उसकी पतली बांहें कागभगोड़े की-सी लग रही थीं।

'नहीं, बेटी, इन्हें अपने पास आराम से रात-भर रख लेना, अकेली रास्ता भूल गई थीं– सुबह हजूरासिंह से कहना स्टेशन तक छोड़ आएगा।' अहल्या सूटकेस लेकर उतर गई । 'धन्यवाद,' उसने कांपते गले से कहा और पहली बार अपने रक्षक के चेहरे को देखा : 6 फुटे सरदार का सौम्य चेहरा मुस्करा उठा : 'ओ कोय गल नई बेटी । ज्ञानकौर, इन्हें कोई तकलीफ न हो बेटी ।' 'की होया पुत्तर?' कहती एक मोटी नाटे कद की सफेद सन के-से बालों वाली महिला सफेद तलवार-कमीज़ और चुने दुपट्टे में ठुमकती खड़ी हो गई । अपने छोटे-छोटे बेलन-से हाथों से वह अपना सुपारी के आकार का जूड़ा लपेटती आ रही थी, और अंधेरे में ऐसा लग रहा था जैसे कोई छोटी-सी सफेद चौकोर मस्जिद अपनी मीनारें आकाश में उठाए, हवा में उड़ती चली आ रही हो। 'कुछ नहीं माताजी–ये बेचारी रास्ता भटक गई थीं, होटल में जा रही थीं, मैं यहीं ले आया । आप इन्हें आज अपने पास ही सुला लेना ।'

'आहो पुत्तर आहो,' माताजी ने बड़े स्नेह से अहल्या की पीठ थपथपा कर अपने नकली दांतों की बत्तीसी दिखा दी । पुत्र को काबुल के लिए विदा देकर माताजी उसे भीतर ले चलीं, आगे-आगे ज्ञानकौर चल रही थी ।

'कहां जाएंगी आप?' ज्ञानकौर ने मुड़कर बड़े लजीले स्वर में पूछा ।

'कलकत्ता', अहल्या ने हाथ का सूटकेस नीचे रख दिया और रूमाल से हथेलियां पोंछने लगी ।

'आ बेटी, बैठ, माताजी तखत पर बैठ गई, और हाथ से खेस की सिलवटें दूर कर उन्होंने अहल्या का हाथ पकड़कर बिठा दिया ।

'ज्ञानकौरे, जा कुछ रोटी-शोटी ले आ, यह बेचारी तो भुक्खी होगी ।'

'नहीं, नहीं, रहने दीजिए। इतनी रात को अब नहीं खाऊंगी,' अहल्या को सचमुच भूख भी नहीं थी।

‘वाह, खाएंगी कैसे नहीं! मैं अभी लाती हूं, माताजी, ज्ञानकौर भागकर एक स्टील की बड़ी-सी थाली में कुछ तन्दूरी रोटियां, बैंगन का भर्त्ता और सूखी दाल लेकर आ गई ।

‘आपको खाना ही होगा। देखा नहीं, पापा चलते-चलते कह गए थे आपको कोई तकलीफ न हो,' ज्ञानकौर ने हंसकर थाली उसके सामने रख दी ।

माताजी ने अपनी टांगें फैलाकर दूसरा तखत भी घेरा लिया और जोर-जोर से गुनगुनाने लगीं ।

‘पहली सन्ध्या तारनी
तार माता तारनी–
सब दुख निवारिनी
सच्ची श्री पगवानई
सच्ची श्री पगवानई...’

किसी प्रकार थोड़ा-बहुत खा-पीकर अहल्या हाथ-मुंह धो आई । दो तखतों पर बिस्तर लगाकर ज्ञानकौर ने अपना दुपट्टा तहाकर सिरहाने धर दिया और अहल्या ने देखा, दुपट्टा उतारने पर वह एकदम लड़का जैसी लग रही थी । उसके पिता को वह देख चुकी थी और ठिगनी होने पर भी दादी अपने यौवन काल में अपूर्व रूपसी रही होंगी, फिर भी अपने सुदर्शन पिता और ठसकेदार दादी से उस बेचारी ने कुछ भी नहीं पाया था । ‘आप लेट जाइए बहनजी, मैं माताजी के साथ सो जाऊंगी,’ ज्ञानकौर ने सकुचाकर कहा, पर अहल्या ने देखा माताजी की गन्धमादन पर्वत-सी विराट देह ने पूरा तखत घेर लिया था, दोनों टांगें पसारकर उन्होंने तखत का आधे से अधिक भाग कब्ज़े में कर लिया था, बेचारी ज्ञानकौर कहां लेटेगी, अहल्या सोचने लगी।

‘देखिए, मैं आपके सोफे में लेट जाऊंगी, आप कष्ट न करें,’ कहकर वह उठकर पास के कमरे के सोफे पर लेट गई । थककर उसका बदन चूर-चूर हो रहा था। कमरे में अजब सीलन की बदबू आ रही थी, दीवार पर शेर की खालें टंगी थीं, जिनकी नकली लाल-लाल जीभें अंधेरे में भी चमक रही थीं ।

‘आपको यहां ठीक से नींद भी नहीं आएगी जी, अन्दर लेट जाइए,’ ज्ञानकौर फिर आकर उसके सिरहाने खड़ी हो गई ।

‘नहीं, नहीं, मैं बड़े आराम से हूं,’ अहल्या बोली। ‘आप सो जाइए ।’

सोफा न जाने किस पुरातन युग का स्मृति-चिन्ह था, जिधर करवट लेती उधर ही वह सोफे के किसी टूटे स्प्रिंग से उलझकर रह जाती, पर थोड़ी देर में उसी झूले-से सोफे में नींद आ गई ।

चौबीस

सुबह उठी तो माताजी बगलवाली कोठरी में गुरुग्रन्थ साहब का पाठ कर रही थीं, पास के बंगले से किसी का बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था ।

'नींद आई, बहनजी?' ज्ञानकौर दुपट्टे से हाथ पोंछती हंसती-हंसती आकर उसके पास बैठ गई ।

'खूब सोई, अगर यह बच्चा न रोता, तो शायद दिन-भर सोती ही रहती ।'

अहल्या ने उठकर साड़ी ठीक की। ३

'मेरी बुआजी का बच्चा है, बुआजी तीन महीने से पागलखाने में थीं, अभी महीना हुआ लौटी हैं, फुफ्फड़जी ही बच्चे को रखते हैं इसी से रोता रहता है बेचारा । आप चाय तो पीती होंगी ।

'हां, पर क्या आप मेरे ही लिए चाय बनाएंगी, आप नहीं पिएंगी?'

'हाय, पीऊंगी क्यों नहीं ? हजूरासिंह, चाय यहीं ले आओ! मैं तो पीती हूं। माताजी दूध और लस्सी पीती हैं, कहती हैं चाय ने तेरा रंग स्याह कर दिया है ।' हाथ में चाय की ट्रे लेकर, बिना साफे का एक लम्ब-तड़ंग सरदार भीतर आया और उसके पीछे-पीछे सारे दुपट्टे को गोला बनाकर मुंह में ठूंसती, खिलखिलाती ज्ञानकौर की बुआजी ।

'हाय राम, सुबह ही सुबह बुआजी कहां से आ गई । आप डरिएगा मत, बकझक कर अभी चली जाएंगी, मार-पीट नहीं करतीं।'

'सत श्री काल, बुआजी, आइए चाय पीजिए.' ज्ञानकौर ने एक कुर्सी खींच दी ।

पर जिस बात पर बुआजी को हंसी आ रही थी वह सुनाए बिना उन्हें चैन कहां था ?

'ओह, कुड़ी, तेरे फुफ्फड़जी नूं कौआ ले गया,' वह फिर हंसती-हंसती दुहरी हो गईं ।

'ऐसा नहीं कहते, बुआजी, कौआ भला आदमियों को कहीं ले जाता है–यह देखिए हमारी मेहमान आई हैं, क्या कहेंगी आपको देखकर? आपने तो मिरण्डा हाउस में पढ़ा है न बुआजी?'

ज्ञानकौर का स्वर किसी बड़ी-बूढ़ी दादी-नानी की भांति गंभीर था : 'चाय में दो चम्मच चीनी दूं बुआजी?' वह जैसे किसी ज़िद्दी बच्चे को बहला रही थी ।

'खूब मजा आएगा,' बुआजी कहे जा रही थीं, 'यहां से ले जाएगा चांदनी चौक, फिर डिफेंस कॉलोनी फिर लोदी रोड और फिर कुतुबमीनार पर चढ़कर पटकेगा नीचे, फट्ट से नारियल-सा फूटेगा तेरा फुफ्फड़! ही-ही-ही,' बुआजी को फुफ्फड़जी के कुतुबमीनार से गिरकर फूटने की कल्पना बेहद गुदगुदा रही थी । वे 'हाय रब, मैं की करां, कित्थे जावां,' कहती-कहती हंसी के दौरे से दुहरी हुई जा रही थीं । उन्माद-ग्रस्त आंखों में कई रात जगने

की ललाई थी । किसी समय बुआजी सुन्दरी रही होंगी । शरीर अभी भी छरहरा था, चेहरे की गढ़न निर्दोष थी, किन्तु उन्माद के विकट दौरे ने सौन्दर्य की धज्जियां उड़ा दी थीं ।

'लीला, चल उरे आ कुड़ी, कमली,' माताजी उदास-सी उसके पास खड़ी हो गई ।

'चल उठ मेरे कमरे में,' लड़की को खींचकर माताजी उठा ले गई और खिसियानी हंसी हंसकर लीला दुपट्टे का बुर्का-सा पहन मां के पीछे-पीछे चल दी ।

'तीन साल से इनका यही हाल है,' ज्ञानकौर कहने लगी, 'मिरण्डा हाउस की पढ़ी हैं, शिमले से सीनियर केम्ब्रिज किया, रंग ऐसा था कि छूने से मैला होता था, अब कौन कहेगा। अचानक ही दिमाग फिर गया, दुनिया-भर के इलाज़ कर डाले। फुफ्फड़जी पापा के साथ इन्हें झड़वाने बदायूं भी ले गए, बरेली, आगरा में बिजली के झटके भी लगे, पर वही हाल है ।'

'आपके फूफाजी क्या करते हैं? अहल्या ने पूछा ।

'एक एयरलाइन्स में हैं, आठ सौ तनख्वाह पाते हैं, ऐसे सुन्दर हैं देखने में-असल में उनसे मेरे रिश्ते की भी बात चली थी,' अचानक ज्ञानकौर को ध्यान आया कि वह मात्र एक रात की परिचिता के सामने आवश्यकता से अधिक वाचाल होती जा रही थी–एकदम वह चुप होकर पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी । 'फिर क्या हुआ? अहल्या को प्रश्न पूछने के साथ ही ग्लानि हो आई ।

'उन्होंने बुआजी को ही पसन्द कर लिया, बुआजी मुझसे एक ही महीना तो बड़ी हैं । मैंने इसी वर्ष एम.एड. किया, पापा नौकरी नहीं करने देते, कहते हैं अगले साल रिटायर हो जाएंगे, फिर देखा जाएगा–अरे आपकी चाय तो एकदम ठण्डी हो गई, लीजिए न !'

'अब नहीं लूंगी, नहा-धोकर तैयार हो ही जाऊं, नौ बजे तक स्टेशन पहुंचना होगा...आपके पापा न मिलते तो न जाने किस होटल में रात काटनी पड़ती,' अहल्या ने चाय के प्याले उठकार ट्रे में लगा दिए । होटल का उल्लेख करते ही पिछली रात की एक-एक बात उसे याद हो आई–चौबीस घण्टे के नाटक में वह कैसे-कैसे दृश्य देख चुकी थी।

'आप चलिए, गुसलखाना पीछे की तरफ है, इस बरामदे से चलना होगा । मैं हजूरासिंह से कहती हूं, चटपट चार भूली के परांठे सेंक देगा।'

'नहीं, नहीं, मुझे इतनी सुबह खाने का अभ्यास नहीं है, आप कष्ट न करें,' अहल्या ने उसके दोनों हाथ पकड़कर आग्रह भरे स्वर में कहा ।

'वाह जी वाह, मेहमान को हमारे पंजाब में खाली पेट विदा नहीं दी जाती, हजूरासिंगै, जल्दी चार परांठे सेंक दे ।'

अहल्या को बड़े प्रेम से खिलाकर वह एक दिन का परिचित पंजाबी परिवार विदा देने बरामदे में खड़ा था । दुपट्टा कन्धे में लपेटे, रूखे केश संवारे बुआजी न जाने कब सज-धजकर आ गई थीं । तंग मुहरी की हल्की गुलाबी सलवार पर उनकी गुलाबी छींट की कमीज़ बदन के साथ सिली लग रही थी, रात-भर जगने से गालों का मुल्तानी रंग और खिल आया था,

ओठों पर बड़े ही कुशल हाथों से लिपस्टिक लगाया गया था। 'बाई,' उन्होंने मीठी मुस्कराहट से अहल्या को विदा दी। कलफ किए दुपट्टे को संभालती माताजी ने अपनी भारी-भरकम बांहों में अहल्या को भरकर बड़े प्रेम से उसका माथा चूमा। उनकी आंखों के आंसुओं में कहीं भी बनावटी विषाद का पुट नहीं था। 'हाय, देखा, एक दिन पहले तुम्हें जानते भी नहीं थे, बेटी, पर देखो ईश्वर की माया । ऐसी ममता ने बांध लिया है, लगता है घर की बेटी जा रही है । सुखी रहो, ज्ञानकौर की शादी पर ज़रूर आना बेटी!'

ज्ञानकौर अपनी दादी के व्यर्थ निमन्त्रण को सुनकर हंसने लगी, 'तब तो आप कभी भी नहीं आ पाएंगी !'

'चल, फिट्टे मुंह,' माताजी ने उसे झिड़क दिया । बुआजी शान्त खड़ी थीं, कुछ नहीं बोलीं, हंसती रहीं। सबसे विदा लेकर अहल्या स्टेशन पहुंची ।

बुकस्टॉल से एक-आध पत्रिकाएं लेकर वह गाड़ी का इन्तज़ार करने लगी । कलकत्ता पहुंचने पर, वह मदर को लिखकर अपनी मजबूरी जता देगी । गौरमोहन काका ठीक ही कह रहे थे, कर्नल को वह अब अकेला नहीं छोड़ेगी–अगर पापा से वह मल्लिका माशी के बारे में कह दे तो ! छिः-छिः, इतनी नीच वह नहीं है । बार-बार उसे मल्लिका की उस सजी-धजी आकृति का ही स्मरण हो रहा था, एक शब्द भी तो उन्होंने नहीं कहा, और उनकी आश्रिता आधुनिक आधी दर्जन रूपसियां, जो न जाने कितने गृहस्थों के घर फूंककर, तमाशा देख चुकी हैं । ट्रेन आ गई थी। कुली ने उसका सामान फर्स्ट क्लास के जिस डिब्बे में लगाया था, उसमें एक बंगाली प्रौढ़ा अपने परिवार के साथ कलकत्ता जा रही थी; अहल्या ने निश्चिन्त होकर बिस्तर फैला दिया । प्रौढ़ा महिला के साथ उनकी पुत्री और उसके दो प्यारे-से बच्चे थे । छोटा बच्चा बार-बार अपने हाथ का झुनझुना नीचे फर्श पर पटक देता था और उसकी चार-पांच साल की दीदी उसे खूब सयाने स्वर में डांट पिला रही थीं : 'आबार? दुष्टु (फिर? शैतान) !' और झुक-झुककर झुनझुना उसे थमा रही थी । सांवली युवती, मां, दोनों का क्रीड़ा-कौतुक देखकर धीमे मुस्करा रही थीं। कभी बच्चा अपनी नानी को तोतले स्वर में पुकारकर दीदी की शिकायत कर रहा था : 'दादू, दादू,' और नानी बच्चे की दीदी को बनावटी क्रोध के स्वर में डांट रही थी : 'एइ, खुक्, की कोरीश' ।

अहल्या को उस स्वल्पभाषी बंगाली परिवार के साथ यात्रा करना भी बड़ा भला लग रहा था। मां-बेटी आपस में बहुत कम बोल रही थीं । कभी बच्चे की खिलखिलाहट और उसकी दीदी की निर्मल हास्यधारा से ही रेल का डिब्बा गूंज उठता था और फिर वह गाड़ी अपने पहियों के लयबद्ध संगीत के साथ बढ़ती जा रही थी।

अहल्या ने तार भेजकर अपने आने की सूचना दे दी थी । स्टेशन पर पापा न आएं, कोई न कोई तो आएगा ही ।

वह उतरी तो गौरमोहन काका ने अपनी जरीपाड़ की चुनी धोती और बगुला के पंख-सा कुर्ता पहने स्निग्ध हंसी से उसका स्वागत किया ।

'चलो, आ तो गई, मां जगद्धात्री ! मैंने तो सोचा बाल मुंड़ाकर कहीं तू भी उन भगतिनों के दल में न चली गई हो ।'

‘किन भगतिनों के दल में काका ?’ अहल्या समझ न पाई।

‘अरे, बाबा, तेरी स्कूल की भगतिनें, क्या पता एक गाउन पहन रोजरी लटका तू भी नन बन जाती ?’

‘ओह समझी,’ अहल्या ने जोर से हंसकर बड़े स्नेह से उनका हाथ पकड़ कर हिला दिया, ‘पापा क्यों नहीं आए काका बाबू ?’

एकाएक बूढ़े गौरमोहन बाबू का प्रफुल्ल चेहरा उदास हो गया, ‘अच्छा घर तो चल, फिर बातें होंगी, तेरे पापा को क्या इतनी बेकार की फुर्सत है जो बेला-कुबेला स्टेशन-हाट घूमते फिरें ।’

पच्चीस

अहल्या घर पहुंची तो बच्चियों-सी हुमककर सीढ़ियां चढ़ने लगी । इतने दिनों से छूटे 'नन्दी' की माया ने उसे फिर खींच लिया, फूलदान कैसे सूख रहे थे ! बड़े-से टब में जो उसने कमल मंगवाकर लगाया था, खूब खिल आया था । पर सीढ़ियों की चमकती रेलिंग धूल के अम्बार से म्लान पड़ी थी, तस्वीरों के कांच पर मकड़ी के जाले, एक ओर से बरसाती की चिक शायद टूटकर नीचे लटक गई थी–उसे किसी ने बुरी तरह तोड़-मरोड़कर एक कोने में ठूंस दिया था। आले में लाल गमछे में बंधा दरबान का नाश्तादान झूल रहा था और पास ही पड़ा था नोनीबाला का पानदान । छिः-छिः, कैसी दुर्दशा हो गई थी उस घर की, जो छूने से भी मैला होता था !

'एइ जे, दीदी,' नोनीबाला ने भागकर उसके पांव छुए; गृहस्वामिनी की अनुपस्थिति में उसने कसकर स्वास्थ्य बनाया था, दोनों काले गाल फूलकर कुप्पा बन गए थे, नग्न काली गोल-गोल भुजाएं, काले कोबरा की चिकनी पीठ-सी चमक रही थीं ।

'क्यों, ननी, पापा कहां हैं?' अधैर्य से अहल्या का स्वर और भी रूखा हो गया ।

'साहब तो सहारनपुर गए हैं, दीदी, आज भिनसारे लौटने की बात थी। अब शायद मेल से लौटेंगे । बाप रे बाप, कैसी सूख गई हैं हमारी दीदी-आइए आपका कमरा खोल दूं, सुबह से ही साफ कर दिया था मैंने... ।' नोनीबाला अपनी स्वामिभक्ति का खूब बढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शन कर रही थी ।

'कोई तार तो नहीं आया, ननी । देख तो, पापा की ट्रे में जो तार हों सब ले आना ।'

अहल्या ने देखा, कमरा झाड़-झूड़ नोनी ने खूब चमका रखा था । मेज़ पर मल्लिका की तस्वीर पर दृष्टि पड़ते ही उसके घर लौटने का समस्त उत्साह अचानक ठण्डा पड़ गया । तस्वीर को उठाकर उसने आल्मारी के ऊपर फेंक दिया ।

नोनीबाला ट्रे में बहुत-से तारों की गड्डी लेकर आई । कर्नल के व्यवसाय- सम्बन्धी तारों का पुलिन्दा नित्य ही तगड़ा आता था, पर अहल्या को धरणीधर के तार आने की आशा थी; कहीं ऐसा न हो बेचारे अनजाने शहर में आकर भटकते रहें । एक तार उनके नाम का निकल आया, धरणीधर का ही था, 'बसन्ती के साथ मेल से पहुंच रहा हूं ।' बसन्ती भी आ रही है । ओह, कैसा आनन्द आएगा ! अहल्या खिल गई । अचानक उसे गौरमोहन काका का ध्यान आ गया, बेचारे बात की पीड़ा को भुलाकर भी उसे लेने स्टेशन पहुंचे थे और उन्हें घर आने की खुशी में एकदम ही भूलकर नीचे ही छोड़ आई थी ।

'अरे, ननी, भागकर देख तो आ, काका बाबू अकेले नीचे क्या कर रहे हैं,' उसने नोनीबाला को झकझोर दिया ।

'मुखे आगुन बूड़ोर,' (बुड्ठे के मुंह में आग) नोनी मन-ही-मन बड़बड़ाती जा रही थी, 'करेगा क्या; खूब चढ़ा रहा होगा, साहब की आल्मारी की एक चाबी अपने पास भी तो रखता है।

नोनी नीचे गई तो देखा, गौरमोहन बाबू की गाड़ी नहीं थी, अहल्या को घर तक पहुंचाकर वे चले गए थे ।

अहल्या नहा-धोकर कर्नल के कमरे में गई । पिता का सिगार का धुआं और शराब की मादक सुगन्ध पूरे कमरे में बस-सी गई थी । तीन दिन से कर्नल कमरे से अनुपस्थित थे, पर फिर भी लग रहा था अभी-अभी कोई उठकर गया है। दीवार पर मल्लिका की आदमकद तस्वीर लगी थी, जिसे चाहने पर भी अहल्या आल्मारी के ऊपर नहीं फेंक सकती थी । जिस साड़ी को पहनकर माशी ने यह तस्वीर खिंचाई थी उसका रंग भी अब तक अहल्या को याद है। हल्के बादामी अण्डी रेशम की साड़ी में माशी ने जयपुर से चमकीली मिट्टी के सितारे बनवाए थे। जयपुरी बूटीदार जूतियां, मखमली पायदान पर धरे, मल्लिका तस्वीर में मन्द-मन्द मुस्करा रही थी। हाथों में मोटे-मोटे दो घुंघरू-लगे कड़े थे, ब्लाउज़ की बांहों में उन दिनों के फैशन के मेल खाते झालरों के लटकन थे, जिनमें लगे छोटे-छोटे मोती एक तस्वीर में स्पष्ट उतर आए थे; एक हाथ में बंधी घड़ी को एक घुटने पर धरकर मल्लिका ने उसका विशेष प्रयत्न से प्रदर्शन किया था।

एक बार मल्लिका के जाने के कुछ ही दिन पश्चात् कमरे की धूल झाड़ने में वह तस्वीर घर के नौकर बहादुर से नीचे गिर गई थी, पापा मारे क्रोध के बौरा गए थे। अहल्या न होती तो शायद उस पर हाथ भी छोड़ बैठते । और आज जो अहल्या उस असली तस्वीर को जमीन पर गिरकर चूर-चूर होते देख आई है, पापा से कैसे कहे! पापा की दो-तीन कमीज़ें उल्टी-सीधी खूंटियों पर टंगी थीं, अहल्या ने उतारकर तहा दीं। सिगार का डिब्बा खुला था। एक ऐश-ट्रे में न जाने कब से सिगारों का ध्वंसावशेष पड़ा था । सब साफ-सूफ कर अहल्या ने कमरा बन्द कर दिया । धरणीधर और बसन्ती के लिए उसने अपना कमरा खाली कर दिया । वही सबसे हवादार और उजला कमरा था, वह पापा के कमरे की जाफरी में सो जाएंगी।

सन्ध्या होने तक उसने पूरा घर सुव्यवस्थित कर लिया था । कर्नल के आने में तीन घण्टे बाकी थे, तब तक क्यों न वह अपनी मित्रमण्डली से मिल आए? दौलत और अमिता तो उसे अचानक देखकर हक्की-बक्की रह जाएंगी । अमिता को फोन करने पर पता चला कि वह कहीं बाहर गई हुई है। दौलत को फोन करने के लिए उसने रिसीवर उठाया ही था कि देखा द्वार पर रेक्सी खड़ा है। उस विदेशी युवक का मोहक व्यक्तित्व वास्तव में दर्शनीय था। किसी हैण्डलूम के छापे की लाल-पीली बचकानी टी-शर्ट के खुले बटनों के बीच उसकी भूरी टैण्ड छाती झांक रही थी । नीली आंखों को टिमटिमाता वह अपनी बच्चे की-सी निर्दोष हंसी हंसकर, हाथ अहल्या की ओर बढ़ाकर स्वयं बढ़ आया : 'हलो स्वीट हार्ट, देखो जैसे ही पता लगा तुम आई हो, मैं भागता आया ।'

'धन्यवाद, रेक्सी, पर दौलत को कहां छोड़ आए ?'

बिना दौलत के रेक्सी से अकेले में बात करने में अहल्या को जो हिचक हो रही थी उसका एक कारण था : रेक्सी की निर्दोष आंखों की मुग्ध चावनी उतनी निर्दोष नहीं थी। अभी भी अहल्या के प्रति अपने अनोखे लगाव को भूल नहीं पाया था । "तुम उत्तर जाओ, चाहे दक्षिण,' वह हंसकर बोला : 'तुम्हारा सौन्दर्य किसी भी ट्रापिकल जलवायु से हार मानने का नहीं, देख रहा हूं दक्षिण की जलवायु तुम्हें माफिक गई है।'

अहल्या ने बात पलटने को फिर दौलत का प्रसंग छेड़ दिया, जैसे वह उसे बार-बार दौलत का नाम लेकर नई पत्नी के प्रति उसके कर्तव्य का ध्यान दिला रही हो : 'क्यों दौलत को ऐसा क्या काम पड़ गया ?'

रेक्सी ने माथा झुका लिया। 'उसकी ममी की हालत इधर बहुत खराब हो गई थी, रुसी को लेकर वह पिछले हफ्ते ही चली गई, मैं भी जाने को था, पर जानती हो, अहल्या, बीमारी से मैं बहुत घबड़ाता हूं और खासकर ऐसी बीमारी जिसमें बीमार तुम्हारी नज़रों के सामने ही बेबसी में मौत के नज़दीक खिंचा जा रहा है ।'

'कल मेरे कुछ मेहमान आ रहे हैं, रेक्सी! मेरे ताऊजी की लड़की हैं, तुम्हें पोट्रेट के लिए उससे सुन्दर मॉडल भारत-भर में नहीं जुटेगा । तुम जो वर्जिन मेरी का एक चित्र बनाना चाह रहे थे, वैसा ही निर्दोष स्वर्गीय चेहरा है मेरी बहन का ।'

'तुमसे भी सुन्दर ?' रेक्सी ने निर्लज्ज होकर अहल्या का हाथ थाम लिया, वह एक झटका देकर दूर खड़ी हो गई, क्रोध से उसका शरीर थर-थर कांपने लगा–'तुम्हें शर्म नहीं आती रेक्सी, दौलत जैसी पत्नी पाकर भी तुम्हारा विदेशी स्वभाव नहीं बदला! दौलत से विवाह हुआ तो मेरे पीछे और यदि मुझसे विवाह किया होता तो शायद उसके पीछे भागते। तुम विदेशियों की यही बात मुझे जरा भी नहीं रुचती ।'

और भी निर्लज्ज होकर रेक्सी ने सिगरेट का कश खींचा और धुआं अहल्या के चेहरे की ओर फूंक दिया, 'अच्छा, तुम्हीं बताओ अहल्या, दूसरे की पत्नी किसे अच्छी नहीं लगती?'

'मैं किसकी पत्नी हूं!' अहल्या अभी खिड़की का परदा पकड़कर खड़ी थी, उसका स्वर खीझ से तीखा हो गया ।

'नहीं हो तो क्या हुआ-होने जा रही हो इसी से तुम्हारा आकर्षण और बढ़ गया है। जानता हूं कि फिर शायद कभी देखने को भी नहीं मिलोगी ।'

'किसकी पत्नी होने जा रही हूं–क्या मैं सुन सकती हूं ?'

'अवश्य, अवश्य, तुम्हारे ही पापा ने दौलत को बताया था कि उन्होंने तुम्हारी सगाई कर दी है–पहाड़ का ही लड़का है, फौरिन सर्विस में है, बाप चोटी के राजनीतिज्ञ हैं, तुमसे पूछने की उन्होंने कोई ज़रूरत नहीं समझी । हमारे यहां की लड़की होती तो बाप को इसी बात पर झाड़कर रख देती, पर तुम्हारे भारत में शायद लड़की की भावनाओं को अभी भी कोई मान्यता नहीं दी जाती। सोच रहा हूं, तुम्हारा एक पोर्ट्रेट बनाऊंगा इस बार, जंजीरों से जकड़ी हुई एक सुन्दरी गुलामों के बाज़ार में बेची जा रही है।'

'प्लीज़ शट अप रेक्सी,'[1] अहल्या उस उद्दण्ड विदेशी युवक के गोरे गालों पर तमाचा धरने को व्याकुल हो उठी, पर उसी क्षण पर्दा खोलकर ननीबाला हांफती-हांफती आ गई : 'दीदी, साहब आ गए हैं । साथ में एक और साहब हैं । आपको बुला रहे हैं ।' अहल्या उठी और बिना रेक्सी से कुछ कहे सीढ़ियां उतरने लगी। पीछे-पीछे रेक्सी भी उतरने लगा, अहल्या का चेहरा क्रोध से तमतमाया हुआ था, आंखें डबडबाई थीं और वह सामने खड़े कर्नल को पहले देख ही नहीं पाई ।

'यह है मेरी बेटी अहल्या। यह सर्वेश्वर है बेटी, बड़ा होनहार बेटा है कुमाऊं का । फौरिन सर्विस में निकला है, सहारनपुर में मुझे मिला तो मैं खींच लाया। यह रेक्सी है हमारा एक विदेशी अतिथि, अभी-अभी इसने अहल्या की एक सखी से विवाह किया है। अच्छा बेटी, अब बतलाओ कैसी रही तुम्हारी नौकरी ।' कर्नल ने एक मोटे कुशन को खींचकर पीठ से टेक लिया और दोनों पैर लम्बे कर बड़ी आत्मीयता और स्नेह से सर्वेश्वर को पास बिठा लिया ।

रेक्सी खड़ा ही रहा। कर्नल ने उसे भी बैठने का इशारा किया तो वह हंसकर बोला : 'नहीं, मैं चलूंगा पापा, एक मित्र ने आज डिनर पर बुलाया है । अच्छा अहल्या सो लौंग ![2] तुमने मुझे एक नये पोर्ट्रेट का वचन दिया है

वही ज़ंजीरवाली–भूलना नही ।' वह फिर दुष्टता से मुस्कराकर अपनी गोरी लाल हथेली हिलाता चला गया ।

अहल्या कर्नल की पहेली समझ नहीं पा रही थी–कौन है यह सर्वेश्वर, अचानक पापा से इसका कहां परिचय हुआ और भला कलकत्ता कैसे चला आया । कितना कुछ सोचा था उसने कि बसन्ती के आने पर खूब आनन्द से दिन कटेंगे, धरणीधर जीजा के हास-परिहास की रसवन्ती धारा, उसके शुष्क वन गए हृदय को रसाप्लावित कर देगी और अचानक दाल-भात में मूसरचन्द यह हज़रत टपक पड़े ।

'जाओ बेटी, जल्दी से चाय भिजवाओ । सर्वेश्वर मेरे कमरे में ही सोएगा, एक पलंग वहां लगवा देना । इसके पिता मेरे सहपाठी रह चुके हैं और यह उनसे भी अधिक मेरा बेटा है–क्यों भई है न सर्वेश्वर ?' अहल्या ने देखा, सर्वेश्वर बिना किसी संकोच के उसे ही घूरे जा रहा है।

'आपकी कृपा है ।' उसने कहा और अपनी पतली मूंछें अकारण ही उमेठने लगा ।

अहल्या चाय लगाने गई तो उसकी रुलाई फूटी पड़ रही थी । किसे ले आए पापा, कहीं रेक्सी सच ही तो नहीं कह रहा था । एक बार इस लड़के का उल्लेख पापा ने अल्मोड़े में भी तो किया था। हो-न-हो, यह तीन-तीन

एम.पी. की पुत्रियों को नापसन्द करनेवाला वही व्यक्ति था, जिसके पीछे पापा बुरी तरह लट्टू थे और जिसके पिता ने एक बार बसन्ती का रिश्ता भी बड़ी बेरुखी से फेर दिया था।

अहल्या ने चाय लगवाकर बड़ी रुखाई से बाहर भिजवा दी और स्वयं अमिता के यहां जाने के लिए तैयार होने लगी। देख लेगी वह पापा की इस ज़्यादती को ! क्या वह कोई ३

भेड़-बकरी है कि जिधर चाहा हांक दिया ।

'अहल्या, अरे भई, क्या कर रही हो बेटी, चाय बनाओ आकर'–कर्नल का स्वर सुनकर वह फिर बौखला गई, जाए बिना मुक्ति नहीं मिलने की, यह सोचकर वह कुछ जोर-जोर से ही द्वार भड़भड़ाती चाय बनाने पहुंची, क्षण-भर में ही साड़ी बदलकर आने का सम्मान, सर्वेश्वर ने अपने लिए ही बटोर लिया–अभी-अभी तो गुलाबी साड़ी पहनकर आई थी और अभी-अभी एकदम रेशमी साड़ी । अहल्या ने भी देख लिया कि सर्वेश्वर कभी दोनों घुटने पास-पास लाकर बजा रहा था, कभी कन्धे उचकाकर टाई का नौट ठीक कर रहा था । उसकी चौरस अंगुलियों में से एक में बड़ा-सा पुखराज था, दूसरी में गोमेद, जिन्हें वह बार-बार मोड़ता-मरोड़ता हृदय की उत्तेजना को व्यक्त कर रहा था। लग रहा था, कुछ कहने को अपनी प्रतिभा, अपने कुशल डिप्लोमेट की शिक्षा को वह सोने की तश्तरी में, अपने हृदय के साथ, भेंट करने को अधीर हो रहा है ।

'चीनी कितनी लेंगे–' अहल्या ने नीची ही दृष्टि कर पूछा ।

'एक ही चम्मच दीजिए,' वह प्याला लेने तपाक से बढ़ गया, 'मुझे चीनी बहुत कम लेने का अभ्यास है । असल में मैं बचपन से बाहर ही रहा हूं और वहां हमारी एक गुजराती नौकरानी थी, वह.मीठा खाने पर लगा देती थी घोर प्रतिबन्ध, फिर कम मीठा खाने की आदत अभी तक रह गई–' कहकर वह अपनी राजसी बचपन का झूठा आंशिक परिचय देकर परम सन्तुष्ट हो फिर अपनी पतली मूंछें उमेठने लगा।

अहल्या बड़ी रुखाई से उठ गई–'पापा, मुझे जरा डौली से मिलने जाना है । ननी को सब समझा गई हूं, वह खाना बनवा लेगी-मुझे शायद डौली खाना खिलाए बिना छोड़ेगी नहीं ।'

कर्नल पहले कभी अहल्या के स्वच्छन्द जीवन पर शासन का अंकुश नहीं मारता था, पर आज उसे अतिथि की अवहेलना कर उसका चला जाना अखर गया–'क्यों, क्या डौली से कुछ खास काम है? न हो तो फोन पर बात कर लो । सर्वेश्वर आया है, थोड़ा उसे हमारा बाग दिखला लाओ, वह जो गौरमोहन ने दमिश्क के गुलाब की कटिंग लगा दी थी वह भी दिखा लाओ–सर्वेश्वर, एकदम रेयर[1] गुलाब है, इतना बड़ा कि समझो बन्दगोभी का फूल ।'

'अच्छा !' सर्वेश्वर कर्नल की हर बात में डूब जाने को तत्पर था–'हमारे बाबूजी को भी गुलाब से बेहद प्रेम है, हमारे बाग के गुलाब की कटिंग दूर-दूर तक जाती थी । साहब, मुझे खुद गुलाब बेहद पसन्द है इसलिए नहीं कि वह नेहरूजी का बटनहोल पुष्प है।' फिर वह अपनी सामान्य-सी रसिकता पर स्वयं ही एक बनावटी हंसी हंसकर मूंछें उमेठने लगा । मूंछे उमेठना शायद उसे गुलाब के पुष्य से भी अधिक प्रिय था; बार-बार उसका हाथ जाने-अनजाने मूंछों पर ही जाता था । सर्वेश्वर सुदर्शन नहीं तो बदशक्ल भी नहीं था । उसका चौरस काठी का शरीर खूब भरा-भरा था, अंगुलियां किसी कलाकार की नहीं थीं किन्तु एक यथार्थवादी स्थिरचित पुरुष की थीं । पंजे की पकड़ एक बार मनचाही वस्तु को पाकर सहज में छोड़नेवाली वस्तु नहीं थी। आंखें छोटी, पर बुद्धि की चमक से जुगनू-सी चमकती रहती थीं, माथा चौड़ा था पर बालों के एक ऐसे प्राकृतिक व्यूह से घिरा था कि देखने में

उतना प्रभावशाली नहीं लग पाता था । नाक तीखी और सुडौल थी, पर ओंठ इतने पतले थे कि उसकी सामान्य-सी स्मित रेखा भी उनका अस्तित्व ही विलीन कर देती। उसका रंग कश्मीरियों-सा सुर्ख था और दांत मोती-से उजले थे, जिन्हें वह जान-बूझकर ही बार-बार अपनी निरर्थक हंसी के दर्पण में झलकाता रहता था ।

सर्वेश्वर स्वभाव का दम्भी था और उसका अहंकार उसकी चाल-ढाल, हाव-भाव में प्रतिक्षण प्रतिबिम्बित हो रहा था । पिता के रक्तचाप का ध्यान कर अहल्या उनका मन रखने को बैठ गई — ' थोड़ी देर में बाग देख लेंगे पापा ।'

'हां-हां, अभी क्या ऐसी जल्दी है,' सर्वेश्वर सतर्क होकर बैठ गया, 'अभी

तो मैं कल भी यहीं हूं, परसों मेल से जाऊंगा ।'

'क्यों, क्या परसों जाना जरूरी है ?' कर्नल ने बड़े स्नेह-पगे स्वर में कहा, 'जब आए हो तो दो-तीन दिन और बने रहते। गौरमोहन से कहकर तुम्हें आसाम की ओर शिकार को ले चलते, पर वह बेचारा खुद परेशान है, आधा कारोबार बेचारे का तेजपुर में था और आधा डिगबोय में !'

'ओ ! आई सी—पर अब तो कोई भय नहीं है साहब,' सर्वेश्वर बार-बार कनखियों से अहल्या की ओर देख रहा था जैसे एक बार देखकर उसे मनचाही तृप्ति नहीं हो पा रही थी, 'युद्ध तो बन्द हो गया है, अब चीनी कुछ नहीं करेंगे ।'

'जितना करना था उतना कर चुके, अब क्या खाक करेंगे ?' अहल्या का अभद्र खीझा स्वर सुनकर कर्नल का चेहरा भारी हो गया ।

'क्या बात है बेटी, आज कुछ मूड खराब है क्या ?' स्नेह से उसकी पीठ थपथपाक' पूछा ।

'नहीं पापा,' अहल्या अपनी क्षणिक उत्तेजना पर स्वयं लज्जित हो गई, 'धरणीधर जीजा का तार आया है पापा, कल बसन्ती को लेकर पहुंच रहे है ।'

'वाह, यह तो बड़ी अच्छी खबर सुनाई । तुम तो जानते होगे धरणीधर को, बड़ा सुशील दामाद मिला दद्दा को, भगवान् ने चाहा तो पहाड़ के डॉ. जोशी की तरह कुमाऊं का नाम रौशन करेगा। सुना, अभी से उसकी सर्जरी की बड़ी धाक है। '

'जी, मैं नहीं जानता, असल में पहाड़ में बहुत कम रहा हूं–बचपन बाहर ही बीता, फिर बाबूजी काश्मीर में पोस्टेड थे'–सर्वेश्वर ने अपने अहं के भाले से अहल्या को फिर कोंचने की चेष्टा की, पर वह निर्विकार स्थिर मुद्रा में बैठी रही ।

'आओ, तुम्हें अपना कमरा दिखा दूं। मैं जब तक आफिस का काम निबटा लूं, तुम मजे से हाथ-मुंह धोकर आराम करो ।' सर्वेश्वर फौजी कायदे के साथ खड़ा हो गया और दोनों हाथ पीछे बांधकर नपे-तुले कदमों से ऐसे चलने लगा जैसे किसी फौजी टुकड़ी का निरीक्षण कर रहा हो । अपनी दम्भी दृष्टि से कर्नल के दीवानखाने के वैभव को नापता वह कभी पारखी कलामर्मज्ञ की भांति कर्नल की तस्वीरों को, रुक-रुककर बड़े ध्यान से देखता, कभी कर्नल की परिमार्जित कलात्मक रुचि की प्रशंसा करता कहता, 'वाह अद्वितीय

संकलन है आपका, मेरे पास भी कुछ मेवाड़ और बूंदी किशनगढ़ शैली के अप्राप्य चित्र हैं, बाबूजी को लिखूंगा कि आपको भेज दें ।'

उसे अपने कमरे में छोड़कर कर्नल पुत्री के कमरे की ओर बढ़ गया । 'अहल्या बेटी ।' अहल्या पिता का कंठस्वर सुनकर उठी नहीं, अखबार पढ़ती रही ।

'अहल्या, मुझे तुमसे कुछ कहना है,' लग रहा था, कर्नल का स्वर बहुत थका हुआ और कहीं दूर से आ रहा था ।

'सर्वेश्वर के पिता को मैंने तुम्हारे रिश्ते के लिए हां लिख दिया है, मैं जानता हूं कि तुम एक बहुत समझदार लड़की हो, तुम्हें मैंने ऐसी शिक्षा दी है कि मेरी आज्ञा का उल्लंघन तुम कभी नहीं करोगी' –कुछ रुककर कर्नल अंग्रेज़ी में बोलने लगा–'तुम्हें मैंने बतलाया नहीं बेटी, मेरी आर्थिक अवस्था अब उतनी सुविधा की नहीं है। कितने ही उद्योगपतियों पर कीचड़ उछाली जा रही है–कब मैं भी उस चपेट में आ जाऊं कह नहीं सकता । मेरा क्या है, अकेला जीव हूं, जिधर चाहूं निकल जाऊंगा, पर तुम्हारा ध्यान आते ही मेरी नींद, भूख-प्यास भाग जाती है,' कर्नल का कंठस्वर थोड़ी देर तक रुंध गया, 'अहल्या, मेरी बच्ची,' बड़े प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरते. वह चुप बैठे रहे, फिर उन्होंने धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया : 'गौरमोहन मेरा सच्चा दोस्त है, कैसी भी विपत्ति पड़े वह मुझे उबार लेगा, पर मैं चाहता हूं किसी भी विपत्ति के आने से पहले मैं तुम्हें किसी योग्य पात्र के हाथ में सौंप दूं और सर्वेश्वर से अधिक योग्य लड़का मुझे कभी नहीं मिल सकता । उसका पिता शिरोमणि तुम्हें पलकों पर बिठाकर रखेगा; भगवान ने चाहा तो दो-तीन वर्ष में ही वह मुख्यमन्त्री बन जाएगा। ऐसा योग्य और प्रतिभाशाली व्यक्ति है, फिर एक बात और है बेटी, मैं चाहता हूं कि तुम्हारा विवाह अपने ही समाज में हो और हमारे समाज में सर्वेश्वर ही सबसे जगमगाता रत्न है । कुछ ही दिनों में वह फर्स्ट सेक्रेटरी के पद पर पहुंच जाएगा, तुम्हें तुम्हारी वे सब सुविधाएं मिलती रहेंगी, जिनका तुम्हें अभ्यास है । मैं देख रहा था, तुम सर्वेश्वर से बड़ी रुखाई से बोल रही थीं; मुझे तुमसे बहुत आशा है बेटी ।'

अहल्या का गला भर आया : पापा, क्या आप मुझसे एक बार पूछ नहीं सकते थे?- वह कहना चाह रही थी; पर जब तक वह तटस्थ होकर कुछ कहने का साहस बटोर पाई, कर्नल एक बार और उसकी पीठ थपथपाकर चला गया था ।

रात को खाना लगाकर ननीबाला उसे बुलाने आई तो अहल्या ने कहा : 'वह आज कमरे में ही खाएगी, उसकी तबीयत ठीक नहीं है ।'

'नहीं दीदीमनी, आपके पैरों पड़ती हूं, मेज पर ही चलिए । साहब ने मुझसे कहा है, दीदी को बुला लाओ, वही मुर्ग काटेंगी, आप नहीं चलेंगी तो मुझ पर बिगड़ेंगे ।'

अहल्या बड़ी अनिच्छा से उठ गई । 'अच्छा दीदी', हंसती-हंसती ननीबाला उसकी साड़ी की सिलवटें खींच-खींचकर ठीक करती बोली, 'बताइए तो हमारे नये जामाई बाबू हैं न ! आहा, कैसा राजपुत्र का-सा रूप-रंग है-सुना बहुत बड़े अफसर हैं–' अहल्या ने उग्र दृष्टि से उसकी ओर देखा और भड़भड़ाकर चली गई ।

'बाप रे बाप,' ननीबाला अपने-आप बड़बड़ाने लगी — 'ऐसा दिमाग है, अब देखें राजकुमारी की ससुराल में कैसे निभती है, रंग-रूप है न, इसी का गुमान है, बेचारी ननी क्या कम है।' वह साड़ी का आंचल गिराकर अहल्या के ड्रेसिंग टेबल के सामने खड़ी हो गई, मालकिन खाना खाकर देर से लौटेंगी इसी से खाने के पहले ननीबाला नित्य जी भरकर श्रृंगार कर लेती थी। पहले उसने दीदी का पाउडर ब्लाउज़ के भीतर छिड़का, फिर एक अखबार का टुकड़ा फाड़कर, खूब स्नो लेकर पुड़िया बनाकर आंचल की छोर से बांधा, चांदी की मूठ का ब्रश अपने सुचिक्कन काले केश पाश पर फेरा, यूडीकोलोन की शीशी उठाई, पर फिर न जाने क्या सोचकर रख दी। बाप रे बाप, ऐसी तेज़ खुशबू पाकर दीदी उसकी चोरी पकड़ लेंगी, वैसे उसका नवीनतम प्रेमी दरभंगा का बिरजू दरबान उसकी इसी विदेशी सुगन्ध से दासानुदास बन गया–'क्यों री ननीबाला, थोड़ा मेरे लिए भी ले आना एक दिन,' उसने अनुनय-भरे स्वर में याचना की थी ।

'मर अभागे, तू क्या करेगा भला उससे? ऐसी-वैसी चीज़ थोड़ी न है, पन्द्रह रुपये की शीशी आती है, मछली से बसाते पोखर तालाब में नहाओ तब भी इसकी सुगंधि नहीं जाती ।'

'पूछती है मैं क्या करूंगा, अरी अपनी मूंछों में मलूंगा,' उसने अपनी ऊपर को यत्न से मरोड़ी गई मूंछों पर बड़े प्रेम से ताव दिया था ।

'हाय, मैं मर गई–कहता है मैं मूंछों में मलूंगा, ही-ही-ही!' ननीबाला प्रेमी की रसिकता पर हंसते-हंसते दुहरी हो गई थी।

उस दिन वह शायद बिरजू का मूंछों पर यूडीकोलोन मलने का स्वप्न पूरा भी कर देती, पर न जाने कहां से यमदूत-सा महाराज आ गया : 'यहां बैठी हैं पटरानी, अरे चौके में लोइयां बनाने को कहा था न मैंने, छिनाल कहीं की! तेरी कीर्ति साहब के सामने खोल दूं तो एक मिनट नहीं टिकने पाएगी ।'

'जा-जा, आया है बड़ा मुझे हटानेवाला! देख नहीं रहा है, दीदीमनी का कमरा ठीक कर रही हूं। मुये के दीदे फूटे हैं, दिखे कहां से'–वह ज़ोर-ज़ोर से अहल्या का लगा-लगाया बिस्तर फिर से झटक-पटखकर बिछाने लगी । कर्नल की विराट् अट्टालिका असंख्य चरित्रहीन नौकर-नौकरानियों का अड्डा बन गई थी, स्वामी के साथ मल्लिका जिस निर्लज्जता से आधी-आधी रात घूम-घामकर उसी के कमरे में पड़ी रहती थी। उसी की आड़ में गृह के नौकर-चाकर खूब मनमानी करते । उत्कोच का दरिया दिन-रात बहता रहता– महाराज नौकर को खिलाकर मुंह बन्द करता, नौकर घर की नौकरानी के इशारों पर नाचते; घर की भेदिन ननीबाला पर ही मल्लिका सबसे अधिक विश्वास करती थी, उसी ने उसकी सोने की लंका छार कर दी । अहल्या चार का सौदा मंगाती तो वह दो अपनी गांठ में बांधती । कर्नल की आल्मारी से खूब दामी-दामी विदेशी शराब की बोतलें चुरा-चुरा बाज़ार में बेचती, फिर भी उसके पाप का घड़ा छलछलाता ही रहता, फूटता नहीं । अहल्या का बिस्तर लगाकर वह खाने के कमरे की ओट से मेज़ की बातें सुनने लगी, पर साहब लोग प्राय:

अंग्रेज़ी में ही बातें कर रहे थे इसी से उसके पल्ले कुछ पड़ा नहीं, ऊबकर वह उठकर भीतर चली गई ।

अहल्या मेज़ पर पहुंची तो कर्नल और सर्वेश्वर उसका इंतजार कर रहे थे । कर्नल ने अपना वह डिनर सेट निकलवाया जिसे वह विशेष अवसर पर ही निकालता था । अहमद के बनाए मुर्ग की खुशबू से सर्वेश्वर के डिप्लोमेट नथुने भी फड़क रहे थे। बड़ी-बड़ी बताशे-सी हल्की चपातियां एक धपधप करते सफेद नैपकिन में लिपटी थीं । दिलपसन्द कबाब की बोटी-बोटी फड़क रही थी। सींकची और कोफ्ते, कोरमा और बिरयानी से खुशबूदार धुआं धीमा-धीमा उठकर झालरदार झाड़-फानूसों को चूम रहा था । लच्छेदार प्याज़ पर, लाल सौस की रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होकर प्रश्न का चिन्ह-सी बन गई थी : 'अहमद यह सूप लाजवाब बनाता है सर्वेश्वर, कई खानसामों ने इसके सामने घुटने टेक दिए, पर पट्ठे ने अपना राज़ नहीं बताया ।' 'वाह', एक घूंट पीकर सर्वेश्वर ने सूप की महिमा के वर्णन के लिए उचित शब्द ढूंढ़ने को आंखें मूंद लीं, 'बहुत बढ़िया है, सचमुच ऐसा ज़ायकेदार सूप मैंने एक बार भी पिया है याद नहीं पड़ता–' जेब से रूमाल निकालकर उसने अपनी पतली मूंछों को ऐसे बचा-बचाकर पोंछा जैसे वह पेंटिंग ब्रश से खींची गई ताजी रंग की रेखाएं हों, ज़रा भी हाथ हिला तो मिट जाएंगी । फिर अपने पिरैमिड रूमाल की तहें जांघ पर रखकर उसने ठीक कीं, कनखियों से अहल्या को देखा कि उसने उसका सत्रह रुपये का विदेशी रूमाल देखा या नहीं, फिर हल्के से खांसकर रूमाल जेब में धरकर एक प्लेट सामने खींच, पैंट सम्हालता तनकर बैठ गया ।

'सर्वेश्वर को गोश्त बहुत पसन्द है इसी से मैंने सब गोश्त की डिशेज़ ही बनवाई है– क्यों सर्वेश्वर, ठीक बना है भई?'

'क्या बात है साहब, समझ में नहीं आ रहा है कि क्या खाऊं क्या छोड़ूं–'

सर्वेश्वर पहली बार झूठ नहीं बोल रहा था, सचमुच ही वह एक से एक बढ़िया चीज़ें देखकर हड़बड़ा गया था । उसके पिता गोश्त के शौकीन थे, पर बड़े-से पहाड़ी पतीले में गोश्त को बिना मिर्च-मसाले से, एक प्रकार से आलू की सब्जी की भांति ही, चढ़ा दिया जाता था, दूर से उसकी सनातनी अम्मा हल्दी-धनिया पीसकर छोड़ देतीं, छूना तो दूर, कभी पतीले तल की आंच बुझ जाती तो वह फूंक भी नहीं मारती थीं । जब-जब गोश्त बनता, अम्मा बड़बड़ाकर आसमान सिर पर उठा लेती थीं और बार-बार उनकी तामसी प्रवृत्ति को कोसती रहती थीं । पहाड़ की ठंडक में गोश्त घंटों पकने पर भी नहीं गल पाता था और अन्त में गलने की आशा छोड़कर, सर्वेश्वर पतीले का ढकना उतार, तीन-चार गर्म बोटियां उदरस्थ कर लेता, उसके तीनों भाई-बहन उसकी बदनीयत की शिकायतें गला फाड़कर करने लगते तो वह चट से अपने मुंह से बोटी का सामान्य-सा छिछड़ा चिचोड़कर तीनों में बांट उनका मुंह बन्द कर देता । सर्वेश्वर के पिता कचहरी में अर्जीनवीस थे, टूटी कमानी का चश्मा कान पर चढ़ाए वे पहाड़ी लाल भात के साथ अधकच्ची उड़द की दाल या पालक सरसों का हरा साग खाकर ही नित्य कचहरी जाते । सामान्य-सी आय से उनके परिवार का चीनी-चाय का ही खर्चा चल पाता, बचे-खुचे समय में वे पूजा-पाठ और दयालु यजमानों की कृपा का

सहारा लेकर परिवार की गाड़ी किसी प्रकार ठेल लेते थे । लड़कों में सर्वेश्वर सबसे तेज़ था, बचपन से ही उसकी कुशाग्र बुद्धि से पिता को आशा बंधी थी, फिर धीरे-धीरे उनके दिन फिरने लगे । सर्वेश्वर के पिता शिरोमणि पन्त खद्दर पहले से ही पहनते थे, 1942 में एक-दो बार जेल भी हो आए; ईश्वर-कृपा से एक-आध लाठी भी उनके सिर पर पड़ गई थी । उसी लाठी के घाव का सीज़र के धान की भांति प्रदर्शन कर उन्होंने जनता-जनार्दन को जीत लिया । आज़ादी मिली तो उन्हें बृहस्पति की दशा आ गई । उनके एक मित्र सहारनपुर में थे, चावल की एक बहुत बड़ी मिल में उन्होंने शिरोमणि को बुलाकर एकाउंटेंट रखवा दिया । तीन-चार साल वहां रहकर ही शिरोमणि ऊब गए । स्वदेश की समृद्धि सुनकर एक बार वहीं जाकर भाग्य आजमाने को यह ललक उठे । वहां पहुंचे तो सिर का घाव फिर काम आ गया । सर्वेश्वर फौरिन सर्विस में आया तो उनकी सौभाग्य मदिरा का प्याला लबालब छलक उठा, किन्तु उसका नशा भी उन पर धीरे-धीरे चढ़ता जा रहा था। प्रभुता के मद ने उनके पिछले दरिद्र जीवन पर विस्मृति का मोटा काला पर्दा डाल दिया था। उनकी फूहड़-सी पत्नी जिसे कभी नाक पोंछने का भी शऊर नहीं था, कई महिला-समितियों की प्रधान थीं, उनकी एकमात्र पुत्री का विवाह चीफ इंजीनियर के पुत्र से हो गया था, दोनों पुत्र जमालपुर से इंजीनियर बनकर निकलने ही वाले थे और तीनों बेटों के लिए उनके पूर्व-परिचित यजमान प्रभुओं की अनेक अर्जियां आ चुकी थीं । किसी की पुत्री एम. ए. कर चुकी थी, कोई अंग्रेज़ी कॉन्वेंट शिक्षिता थी, किसी के बाप के सेब के बगीचे थे, किसी की नैनीताल में बीसियों कोठियां थीं, पर शिरोमणि की आंखों में तो एक ही कन्या बसी थी और वह थी अहल्या। बसन्ती के विवाह के दिन कन्यादान के कमरे में उसे देखकर उन्होंने मन-ही-मन उसे बहू बनाकर लाने का संकल्प कर लिया था । एक-दो बार कर्नल ने टाल दिया, पर जब लड़के को देखा तो उन्हें एक ही नज़र में पसन्द आ गया, फिर सर्वेश्वर में पसंद न आए ऐसा कोई दुर्गुण भी नहीं था । एक दुर्गुण था तो वह यही कि उसके पिता का पिछला जीवन बहुत महिमामय नहीं था, पर संसार भूत, भविष्य और वर्तमान में भविष्य और वर्तमान का ही लेखा रखता है। शिरोमणि का पलड़ा इन दोनों की दृष्टि में रखते हुए यथेष्ट रूप से भारी था । कर्नल पर जो आपत्तिकालीन बादल का टुकड़ा इधर मंडराने लगा था उसे दूर करने में भी वे भावी समधी से बहुत कुछ आशा कर सकते थे । शिरोमणि का बड़े-बड़े मन्त्रियों से याराना था, कई परिचित उद्योगपतियों की गर्दन उसने अपने एहसान के गुरुतर बोझ से दबाकर रख दी थी और उन्हीं दबी गरदनों पर पांव रखते, वे धड़ल्ले से दिन पर दिन उन्नति के शिखर की ओर बढ़ते जा रहे थे ।

सर्वेश्वर को लड़की पसन्द थी, यह उसके पिता ने लिखा था–'बसन्ती के गौने के दिन हमारे सर्वेश्वर ने भी आपकी गुणी कन्या को देखकर मुझे अपनी स्वीकृति दे दी है : आशा है, अब आप इस शुभ कार्य में विलम्ब नहीं करेंगे ।'

कर्नल ने एक पल भी व्यर्थ के तर्क-वितर्क में बरबाद नहीं किया, उसी समय अर्जेण्ट तार कर स्वीकृति दे दी थी । सहारनपुर गए तो उन्हें अचानक सर्वेश्वर कहीं दिख गया, किसी मित्र के विवाह के जलसे में आया हुआ था; बड़ी विनम्रता से उसने कर्नल के पांव छुए तो

उन्होंने गद्‌गद होकर छाती से लगा लिया, यही नहीं चलने लगे तो बड़े आग्रह से उसे भी अपने साथ लेते आए । अहल्या की पसन्द-नापसन्द का प्रश्न ही नहीं उठता था । एक बार रेक्सी का बहुत आना-जाना कर्नल को कुछ अखरने लगा था, पर जब से उसकी शादी दौलत से हो गई, कर्नल निश्चिन्त हो गया था । अब अहल्या के परिचित युवक मित्रों में कोई भी ऐसा नहीं था जिससे उन्हें किसी प्रकार की आशंका होती । रौनी ने पी-पिलाकर अपनी हालत इतनी गिरा ली थी कि उसके पिता आकर उसे अपने साथ विदेश उठा ले गए थे । रुसी को अहल्या पसन्द कर ही नहीं सकती थी, समीर की सगाई डौली से हो चुकी थी। सर्वेश्वर में अभी से कुछ अफसरी खटका था एक-दो बार विदेश हो आने से, उसकी पिछले दिनों की हीन-भावना भी समुद्र में बह-धुलकर पुंछ गई थी। अब वह बड़े एक्सेंट से. अंग्रेज़ी बोलता था और अपने विदेश के सिले सूटों में सीना तानकर चलता था ।

---

1. कृपया चुप रहो।
2. इतनी देर ।
1. बहुमूल्य ।

छब्बीस

दूसरे दिन कर्नल उठा भी नहीं था कि अहल्या कार लेकर बसन्ती-धरणीधर को लेने चली गई थी । जब वह उठा तो वह उन्हें लेकर आ गई थी। 'नन्दी' की महिमा और वैभव को बसन्ती अपनी सरस भोली आंखों को फाड़-फाड़कर देखती ही रही । 'बाप रे बाप, कितना बड़ा मकान है कक्का का ! कैसे रहती हो तुम अकेली? उसने अहल्या से पूछा ।

'अकेली कहां हैं, धरणीधर ने बीच में ही टोक दिया, 'साली ज्यू हमारी छिपी रुस्तम हैं, अकेली न रहें इसी से तो ढूंढ़-ढूंढ़कर कक्का ने एक रत्न मंगवाया है ।'

अहल्या लाल पड़ गई । पर कैसा आश्चर्य, उस सरल व्यक्ति के परिहास की कड़ी चोट भी उसे कुछ नहीं कर पाती थी ।

'सच अहल्या?' बसन्ती साड़ी सम्हालती सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते थमककर खड़ी हो गई : 'आए हैं क्या सर्वेश्वर?''

'हां जी हां, कह जो रहा हूं, तुम्हें पसन्द नहीं किया तो क्या, तुम्हारी बहन को तो देखने से पहले ही पसन्द कर लिया । शायद कक्का का यह मकान पहले देख लिया होगा पट्टे ने ।' धरणीधर ने वाक्य पूरा भी नहीं किया था, सर्वेश्वर स्वयं न जाने कहां से ड्रेसिंग गाउन डाले हंसता खड़ा हो गया । 'मकान तो मैंने नहीं देखा था,' वह हंसते-हंसते ही बोला, 'पर इन्हें अवश्य देख लिया था! धरणीधर ने हतप्रभ होकर हाथ जोड़कर कहा, 'क्षमा कीजिएगा, यह मेरी इकलौती साली है इसी से इनसे मेरा इसी स्तर का हंसी-मज़ाक चला करता है । आपसे बहुत पहले असल में मैंने इन्हें पसन्द किया था, पर भाग्य हो तब न?'

'छि:, जीजाजी, आप क्या ज़रा भी नहीं बदले-' अहल्या का सकुचाकर छुईमुई-सा झुक जाना सर्वेश्वर को मुग्ध कर गया । 'हा-हा-हा' हंसता वह धरणीधर का हाथ पकड़कर ऐसे सीढ़ियों से ऊपर खींच लाया जैसे वह बहुत ही पुराना परिचित मित्र हो। बसन्ती सर्वेश्वर को पहले भी देख चुकी थी, जब उसकी सगाई की बातें उसके साथ चली थीं वह किसी बहाने उसे देख आई थी। यही नहीं, चौड़े-चौड़े कन्धे और गोरे गोल मुंहवाले उस युवक ने उसे कुंआरी रातों के कई मीठे सपने दिखाए थे, उसकी उसी गोमेद की अंगूठी का रंग भी उसे कंठस्थ था, यही नहीं जब उसकी अम्मा बरामदे में बैठकर ज़ोर-ज़ोर से सर्वेश्वर के पिता शिरोमणि की धूर्तता का सस्वर पाठ करती कह रही थी–पसन्द नहीं आई मेरी लड़की तो बात बना दी। अब देखूं, किस लखपती की राजकन्या लाता है! लखपती की ही कन्या लाया आखिर ।

कर्नल के कमरे में उन्हें लेकर अहल्या पहुंची तो उसे सहसा ध्यान आया कि पापा के कमरे में मल्लिका की आदमकद तस्वीर का क्या होगा। सरला बसन्ती क्या सोचेगी? पर पहुंचते ही उसने देखा दीवार खाली थी, दूरदर्शी कर्नल की भतीजी और धरणीधर का ध्यान

आया या भावी जामाता का, उन्होंने तस्वीर उठाकर कहीं बन्द कर दी थी। बसन्ती उनके पैर छूकर सकुचाकर अहल्या के पास बैठ गई। इस बड़े-से मकान की सजधज से डरी-सहमी वह बुरी तरह झेंप रही थी। अभी-अभी वह लखनऊ से अपनी ससुराल होकर आई थी, नैनीताल के श्वसुर-गृह के मकान के बाद उसे कक्का की भव्य कोठी, किसी राजा के महल-सी लग रही थी। 'बड़ा अच्छा किया तुमने धरणीधर, बसन्ती को ले आए, इसी बहाने सर्वेश्वर से भी तुम्हारी भेंट हो गई । मुझे तो दुर्भाग्य से आज ही दोपहर को बम्बई 'फ्लाई' करना पड़ रहा है, वहां एक बड़ा ज़रूरी काम आ पड़ा है। जहां तक होगा परसों लौट आऊंगा, पर अहल्या तो है ही, वह तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देगी–क्यों है न बेटी?'

सर्वेश्वर अपलक दृष्टि से उसे देख रहा था, एक ही रात में वह विलक्षण लड़की कैसी बदल गई थी। लगता था, बड़ी आंखें तरल होकर और फैल गई हैं। चेहरे का चम्पई रंग भोर की लुनाई में और भी खिल गया था, सामान्य-सी तांत की डोरीदार साड़ी के आंचल को सम्हालती उसकी सुडौल बांहों की गोलाई सर्वेश्वर के गले में गहर-सा अटका रही थी । जी में आ रहा था, अभी उसे कन्धे पर बिठाकर उड़ा ले चले। यह हाथ मेरे होंगे—बह सोच रहा था, यह गर्वीली गरदन मोड़कर मैं अपनी छाती पर टिका लूंगा, इन रसीले अधरों का स्पर्श कितना मधुर होगा, लज्जा से कांपती उस अनुपम सुन्दरी के साहचर्य की कल्पना भी कैसी मादक थी। पास ही बैठी रहे, ऐसा वह मन-ही-मन मना रहा था, पर न जाने कैसे उसकी मनौती अहल्या ने भांप ली । वह बसन्ती को खींचकर बोली, 'आप चलिए जीजाजी, आपका सामान कमरे में लगा दूं, मैंने चाय लगवाने के लिए कह दिया है ।'

अपने ही कमरे में दो पलंग बिछाकर अहल्या ने खिड़कियों पर नये धुले पर्दे लगा दिए थे, कमरे की स्वच्छता ही उसकी एकमात्र सज्जा थी, खिड़की से कई गगनचुम्बी अट्टालिकाएं दीख रही थीं ।

'यह मेरा कमरा है जीजाजी, आप लोग इसमें बड़े आराम से रहिएगा । साथ ही में गुसलखाना भी है और इस छोटे बरामदे में बड़ी प्यारी धूप सुबह ही सुबह आ जाती है ।' उसने एक द्वार खोला तो सचमुच एक छोटा-सा लोहे के जंगलों से घिरा बरामदा निकल आया। धरणीधर सहसा दोनों हाथ जोड़ उसके सामने खड़ा हो गया–'और जो करो साली ज्यू, चाय हमें कमरे ही में पिला देना, कहीं पीने में पहाड़ी अभ्यास से सुड़क-सुड़क पी गया तो तुम्हारे फौरिन सर्विस के भावी पतिदेव गोली से उड़ा देंगे। सुना बड़े कायदे-कानूनवाले आदमी हैं–दोहाई साली ज्यू।' अहल्या इस बार हंसी नहीं, उदास होकर उसने सिर झुका लिया : 'जीजाजी, आप और चाहे जो कुछ करें, उस रिश्ते का ज़िक्र मत कीजिए । आपसे कसम खाकर कह रही हूं, पापा ने मुझे कल तक इस विषय में कुछ भी नहीं बतलाया था'–उसने भारी गले से कहा ।

'कहिए, क्या हो रहा है,' कहता सर्वेश्वर बड़ी आत्मीयता से उनके बीच खड़ा हो गया, सकपकाकर बसन्ती पति के और निकट खिसककर बैठ गई और अहल्या 'चाय ले आती हूं' कहकर बाहर चली गई । खा-पीकर धरणीधर और सर्वेश्वर को लेकर कर्नल अपने

ऑफिस चले गए । बसन्ती घूम-घूमकर पूरे मकान की परिक्रमा कर थककर लेटी थी, अहल्या उसके पास बैठी उसके ससुराल की बातें सुन रही थी । कितना अन्तर था पहले की बातों में । जिस सास की प्रशंसा करते-करते बसन्ती नहीं थकती थी उसका उल्लेख करते ही उसकी आंखें डबडबा आईं : 'अम्मा ठीक ही तो कहती थीं कि नई-नई बहू से सास और ससुराल की प्रशंसा सुनकर कोई भी मां आश्वस्त नहीं होती, नई गाय को नौ पूले घास! अम्मा कहा करती थीं वही हुआ अहल्या! मैं नई ब्याह के आई तो सासजी ने पलंग से पैर नीचे नहीं धरने दिया । पर जब दो महीने बाद ये मुझे लिवाने आए तो बरस पड़ीं, असल में चाहती थीं कि मैं उन्हीं के पास रहूं। इन्हें भी तो खाने-पीने की तकलीफ थी, मैं जिद करके आ भी नहीं पाती, वह तो इन्हें ही ढाई घण्टे की चढ़ गई । बड़ी ननद ने खूब कोरी-कोरी सुनाई, अब के गई तो बोली भी नहीं । कुछ काम भी करने मैं जाती तो झटककर कहती : 'रहने भी दो बोज्यू, क्यों तकलीफ करती हो । तुम तो हमारी मेहमान हो । नैनीताल का सीज़न देखने आई हो, जाओ फ्लैट घूम आओ, बैंड सुन आओ । क्या बताऊं अहल्या, वहां रहती हूं तो इन्हें गुस्सा आ जाता है, इनके साथ चली आती हूं तो फिर दिन-रात ताने सुनने पड़ते हैं। उधर आमा की तबीयत बहुत खराब हो गई थी, फिर दौरे पड़ने लगे थे, अम्मा अकेली जा नहीं पा रही थी इसी से बाबूजी मुझे लिवाने आए, पर ससुरालवालों ने बाबूजी को भी नहीं छोड़ा । खूब कोरी-कोरी सुना दी कि जाइए अपने दामाद से ही पूछ आइए, हम कौन होते हैं भेजनेवाले।'

'आमा की तबीयत क्या ज़्यादा खराब है?' अहल्या जिस व्यक्ति की कुशल पूछना चाह रही थी, भोली बसन्ती समझ नहीं पाई ।

'अरे हां, वही दौरे पागलपन के पड़ते हैं, कभी तेरा नाम लेकर चीखती-पुकारती है कि बहू को लिवाने राजू क्यों नहीं आता, क्या झगड़कर गई है? कभी नानाजी को पुकारती है । असल - में अफीम अब जुटती नहीं, बस उसी के मारे बौरा जाती है–अब तो उन्हें भगवान् मुक्ति दे देता तो अच्छा था, घर छोड़ने को मनसाती नहीं।'

अहल्या अब नहीं रह सकी, 'क्यों राजूदावाली क्या बात उन्हें नहीं बताई, तूने कुछ लिखा था न?' पूछते ही वह स्वयं अपने गरम गालों से दग्ध हो उठी ।

'राजूदा अब कहां हैं,' एक लम्बी सांस खींचकर बसन्ती ने आंखें फेरकर आंसू छिपाने की चेष्टा की, उसी प्रयास में उसकी गोरी नाक लाल हो उठी ।

अहल्या जैसे उसके इसी उत्तर के लिए तैयार थी, कई दिनों पूर्व उसके इस प्रश्न का उत्तर स्वयं उसकी अन्तरात्मा ने दे दिया था, उसी दिन जिस घड़ी उसने डोरीन को अपनी बहन के लड़के के लिए फूट-फूटकर रोते देखा था। 'चुशूल में राजूदा थे, जब भारी हमला हुआ हम लोगों को खटका हो गया था, पर कई दिनों तक कोई खबर नहीं आई। फिर मामाजी लखनऊ गए, वहां उनके साले, एक मेजर जोशी हैं, उन्होंने खबर लगवाई । पता लगा, जिस टुकड़ी के साथ राजूदा गए थे उसका एक भी जवान नहीं लौटा, फिर क्या करते, शस्त्र से मारे गए व्यक्ति की जो क्रिया होती है वही निबटाकर तेरहवीं कर दी–मुझे तो अभी भी नहीं लगता अहल्या, ऐसा लगता है कभी भी द्वार खोलकर हंसते खड़े हो जाएंगे,' वह

आंख पोंछ ही रही थी कि धरणीधर का कंठ-स्वर सुनाई पड़ा, अचकचाकर उसने आंखें पोंछ लीं और साड़ी ठीक कर बैठ गई ।

'वाह हो साली ज्यू, कक्काजी का आफिस क्या व्हाइट हाउस से कुछ कम है! तुम्हारे श्रीमान तो वहीं से अपने एक परिचित मित्र के यहां चले गए-सुना कोई पर्वतीय सज्जन हैं, किसी बाहर की लड़की से ब्याह कर यहीं हिन्दुस्तान मोटर्स में बहुत बड़े अफसर हैं । कह गए हैं, रात का खाना खाकर ही लौटेंगे, बेचारे तुम्हें भी अपने मित्र के यहां ले जाने के लिए तड़प रहे थे, पर शायद फिर साहस नहीं हुआ । कक्काजी तो वहीं से चले गए, अब हमें इजाज़त हो, हम भी अपना काम निबटा आएं ।'

'कैसा काम जीजाजी? अभी-अभी तो थककर आए हैं, लेटिए, लेक व्यू की तरफ चलिएगा शाम को।'

'पूछती हैं कैसा काम? आपने क्या सोचा कि हम तफरी के लिए कलकत्ता आए हैं? राम भजो–ऐसा समय किसके पास है–मेरी छोटी बहन शन्नो की एक जगह बातचीत चल रही है । लड़का यहीं, महेन्द्र एण्ड महेन्द्र में है । बाप कहते हैं कि लड़का राज़ी है तो उन्हें आपत्ति नहीं है ।'

'ओह तो आप लड़के को राज़ी करने आए हैं, पर वह क्या आपकी सूरत पर ही रीझकर हामी भर देगा |' मन्द-मन्द मुस्कराती अहल्या उसे छेड़कर उठ गई ।

'नहीं हो साली ज्यू, सोचा था तुम्हें दिखाकर कह दूंगा यही मेरी बहन है। '

'हां जी हां, मेरी बहन ऐसी मुफ्त की है कि जिसे चाहा, दिखा दिया'— बसन्ती की पलकें अभी भी आंसुओं से गीली थीं, पर नरम दिल की भोली अल्हड़ किशोरी जितनी ही जल्दी रो पड़ती थी उतनी ही जल्दी वह हंसना भी जानती थी।

सन्ध्या को उन्हें लेकर अहल्या बड़ी दूर-दूर तक घूम आई थी । कलकत्ते की भड़कीली-चड़कीली दुकानों से बसन्ती ने न जाने कितनी रंग-बिरंगी लेस, टोकरियां, शंख की चूड़ी, नाक की लौंग और तांत की रंग-बिरंगी साड़ियां, सीप के खिलौने खरीद लिए! वह और भी न जाने क्या-क्या खरीद लेती, पर अंधेरा होने लगा था, और सर्वेश्वर घर लौटकर अकेला होगा, यह बात धरणीधर के ही ध्यान में सबसे पहले आई–'बेचारा घर का होनेवाला दामाद है, कहीं तुनक गया तो खैर नहीं । चलो अब घर, इसी से तो पहाड़ में कहते हैं— औरत को न दिखाए बज़ार और मर्द को न दिखाए भंडार। तुम्हारी खरीद-फरोख्त तो रात-भर में भी पूरी नहीं होगी-सर्वेश्वर हमें कोस रहा होगा। ' घर पहुंचे तो सर्वेश्वर बरामदे में खड़ा था, बड़े अधिकार की प्रश्नपूर्ण दृष्टि से अहल्या को देखकर उसने हंसने की चेष्टा की, पर ऐसी हंसी थी जिसके संवारने में उसे कुछ प्रयास करना पड़ा था; मन की भड़ास हंसी में भी घुलमिल गई थी—' बड़ी देर की, कहां गए थे ?' उसने अहल्या की ओर देखकर धरणीधर से पूछा—उसके पूछने के ढंग से स्पष्ट लग रहा था कि वह धरणीधर को माध्यम बनाकर अहल्या से कैफियत मांग रहा है, क्या वह नासमझ दम्भी लड़की उसकी महत्ता का मूल्यांकन अब तक नहीं कर पाई? पंतों में सर्वश्रेष्ठ कुलगोत्र के पन्त का पुत्र सर्वेश्वर, जो अब तक तेरह लड़कियों को नापसंद कर चुका था, तिलमिला गया। अहल्या बातें करना तो दूर,

एक बार उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देख रही थी, फिर एक घंटे से वह अकेला उस बरामदे में कठघरे में शेर की भांति चक्कर लगाता रहा था, इसी से उसके क्रोध का पारा और चढ़ गया था । पर अहल्या को मुद्रा में देखकर उसने अपने को सम्हाल लिया, जैसे भी हो अपने क्रोधी स्वभाव को, वश में करना ही होगा, कहीं बनी-बनाई बात बिगड़ जाएगी। एक बार विवाह हो जाए, फिर वह देख लेगा।

'बड़ी देर हो गई,' धरणीधर ने बड़ी नरम आवाज़ में कहा, 'बसन्ती को कुछ चीजें खरीदनी थीं, और फिर कलकत्ता ऐसा शहर है साहब कि एक बार घूमने निकलिए तो पैरों में चक्र लग जाते हैं-अब पांच बजे हम गए थे नौ बज गया है, जहां जाना था वहां जा ही नहीं पाए ।'

'अभी तो आप रहेंगे,' सर्वेश्वर बार-बार इधर-उधर देख रहा था, ज़रा-सा भी पर्दा हिलता या कहीं खटखुट होती, तो चोर निगाह से देखने लगता-शायद अहल्या आ रही हो। ।

'जी हां, परसों जाऊंगा—छुट्टियां हैं नहीं, फिर मुझे एक बार पहाड़ भी जाना है। आप क्या कल ही चले जाएंगे?

'और कहां रह पाऊंगा भाई, वह तो कर्नल साहब का विशेष आग्रह था इसी से चला आया, नहीं तो मेरे एक विदेशी मित्र हैं, उसका ओछा स्वर जान-बूझकर ही ऊंचा हो गया । बसन्ती और अहल्या की बातों की स्पष्ट गुनगुन बगल के कमरे से आ रही थी, उन्हीं को सुनाने सर्वेश्वर जान-बूझकर ऊंचे स्वर में कहने लगा, 'अमेरिकन इम्बैसी में फस्ट सेक्रेटरी हैं, उनका बड़ा आग्रह था कि मैं उनके साथ दक्षिण-यात्रा को जाऊं-कुछ दिन बनारस, फिर कलकत्ता, मदुराई आदि का प्रोग्राम बनाया था, पर एक बार विदेशियों के साथ पूरी छुट्टियां बरबाद कर भुगत चुका हूं...'

'कैसे?' धरणीधर को उस ओछे व्यक्ति को बहकाने में बड़ा आनन्द आ रहा था। 'यही मि. निकोल्सन थे, नई-नई शादी हुई है, बोले, भारत का इंटीरियर देखेंगे,' मैं भी चला; कभी कहते पूर्णिमा में ताज देखेंगें; गरमी के दिन थे । बोले, पहले एकदम इंडियन स्टाइल में खड़े होकर मटर-छोले खाएंगे, फिर देखा जाएगा ताज । साहब आए, मटर-छोले खाए, फिर कहां देखते ताज, उसी दिन मेमसाहब को गैस्ट्रो-एण्टेराइटिस हो गया । अच्छा-खासा हैजा ही समझिए, बड़ी मुश्किल से राम-राम कर जान बची । फिर गई बनारस, बोली क्रिमेशन घाट की तस्वीर लेंगी, जब तक उनके संकलन में एक आध जलती चिताएं, कंकाल-से भिखमंगे और ताज और सूंड हिलाते-झूमते हाथियों की तस्वीरें नहीं होंगी कौन विश्वास करेगा, उन्होंने भारत देखा भी है । मणिकर्णिका घाट पहुंचे, वहां एक मुर्दे की कपाल-क्रिया देख ली और तीन दिन तक बेहोश रहीं। अब के उन्हीं का दक्षिण-यात्रा का प्रोग्राम बन रहा था–वैसे तो पूरा आराम रहता, फ्लाई करते, पर मैंने टाल दिया ।'

'खूब बिजी लाइफ रहती होगी आपकी–अरे भाई अहल्या, बसन्ती, बाहर आओ, सर्वेश्वर कैसे बढ़िया किस्से सुना रहे हैं और आप दोनों को बातों से ही फुर्सत नहीं है ।' धरणीधर उठकर दोनों को बाहर बुला लाया।

सर्वेश्वर की लच्छेदार बातें सुनने में धरणीधर को बड़ा रस आ रहा था । 'तो फिलहाल तो आप दिल्ली में अकेले ही होंगे ।'

'हां, बस अकेला ही समझिए; एक मेरा खानसामा है शफीकुलबरी, एक मैं और एक मेरा कुत्ता नौबी; बड़ा जबर कुत्ता है, साहब!' वह फिर ओंठ गर्व से फुलाकर अहल्या को कनखियों से देखने लगा । बातें करने में उसकी छोटी-छोटी आंखों के पलड़े क्षण-भर में ऐसी विचित्र फड़कन से फड़क उठते थे कि लगता था वह बार-बार आंख मार रहा है। 'बस, पूरे भारत में उस 'ब्रीड' के दो ही कुत्ते हैं; एक सुना महाराजा ओरछा के पास था, उसी का छोटा भाई है यह। एल्सेशियन और शेरनी का क्रॉस ब्रीड है ।'

उसने फिर आंखें फड़काईं और अहल्या को देखा । वह सिर झुकाए बहुत मोटे-से ऊन का एक बादामी स्वेटर बुन रही थी; बसन्ती बीच़-बीच में उसके उलझे ऊन को सुलझाती बड़े ध्यान से सर्वेश्वर की रोचक बातें सुन रही थी।

'अच्छा तो पन्त होकर आपने मुसलमान खानसामा रखा है, बड़े प्रगतिशील विचार लगते हैं आपके! अहल्या, तुम्हें ससुराल में भी मायके की सारी सुविधा रहेगी ।'

'आप जो भी कहिए, साहब,' सर्वेश्वर की आंख ज़ोर-ज़ोर से फड़क रही थी : 'खाना बनाने की कला अगर ज़िन्दा है तो इन्हीं खानसामाओं की पीढ़ी में, जब हमारा शफीकुलबरी मुर्ग बनाएगा तो पहली रात से उसे साफ कर बाहर ओस में रख देगा, एक दिन मुझसे नहीं रहा गया, पूछ ही लिया मैंने : 'भई, रात भर बाहर क्यों लटका देते हो?' वह हमारी बात पर मुस्कराने लगा, बोला : 'गरीबपरवर, शबनम से नहाए मुर्ग का मुर्ग-मुसल्लम खाकर आप यह सवाल फिर नहीं पूछेंगे । और सच हमने खाया तो उसके हाथ चूम लिए, मुर्ग क्या था बताशा था, जीभ पर रखा कि गल गया ।'

'बड़े साहस का काम किया है साहब आपने |' धरणीधर को प्रभावित

करना कोई कठिन कार्य नहीं था, पर पन्त होकर शूद्र नौकर और मुसलमान खानसामा रखनेवाले उस साहसी युवक ने उसे सचमुच बुरी तरह प्रभावित कर दिया ।

'इसमें साहस की कौन-सी बात, हम तो अपना आराम देखते हैं ।' सर्वेश्वर के एक ही वाक्य ने उसके हृदय का ताला खोल दिया, उस स्वार्थी-ओछे व्यक्ति का क्रूर स्वभाव उसी की बातों से स्पष्ट होता जा रहा था : 'जिसमें हमें आराम हो, वही रुख अपनाते हैं । क्षत्रिय नौकर अपनी औकात से बड़ी जल्दी बाहर निकल आता है-पहले माथे की टोपी उतारेगा, फिर पैण्ट पहनेगा, बालों में बुलबुल काढ़ेगा और फिर आएंगी सिनेमा के गाने की सस्ती किताबें और फिर समझिए गया हाथ से। अब यह लड़का हरीराम चार साल से मेरे साथ है, न उसे कोई ऐसा खास काम है–कमरा झाड़ने के लिए मेरे पास बिजली की मशीन है, खाना गैस के चूल्हे में बनता है, उबला अंग्रेज़ी खाना खाता हूं, कपड़े धोने के लिए पिछले साल हूवर खरीद ली थी, कूलर है, ऐलविन का फ्रिज मिस्टर निकोल्सन ने मुझे मेरी वर्षगांठ पर दिया था |'

'ओह, आप अपनी वर्षगांठ भी मनाते हैं, बड़े आश्चर्य से सरल धरणीधर ने पूछा।

'मुझे ऐसा कोई शौक नहीं, पर मित्र सब विदेशी हैं । अब उन लोगों में तो आप जानते ही हैं, कुत्ते-बिल्लियों की भी सालगिरह मनाई जाती है ।

हम नित्य उनकी पार्टियां उड़ाते थे और उन्हें खिलाने का कोई अवसर ही नहीं आता था । एक दिन निकोल्सन की पत्नी स्वीरा ने स्वयं अवसर ढूंढ़ लिया, बोली : 'पन्त, चार साल से तुम्हें जानते हैं, तुम क्या किसी तारीख को पैदा ही नहीं हुए ?' हार मानकर बताना पड़ा, वही तिथि मनाते हैं–दस-पांच विदेशी मित्र जुट जाते हैं, खूब हंसी-मज़ाक में एक-दो घण्टे लग जाते हैं ।'

अहल्या के ऊन का गोला चुक गया था । दोनों घुटनों में ऊन की लच्छी फंसाकर वह अपने हाथों को गोल-गोल घुमाती गोला बांध रही थी। सर्वेश्वर के जी में आ रहा था कि भागकर वह अपनी विदेशी मित्रमण्डली को टेरकर उन्हें अपनी भावी चम्पक पत्नी की अनोखी झलक दिखा दे ।

'खाना लगवा दूं, जीजाजी? दस तो बजता है,' अहल्या ने पूछा ।

'हां, हां, अवश्य, आप क्या सचमुच ही खा-पीकर लौटे हैं,' धरणीधर ने कर्नल की अनुपस्थिति में अतिथि की अभ्यर्थना का भार स्वेच्छा से ही अपने ऊपर ले लिया था । 'चलिए मेज़ पर चलकर बैठिए तो सही, पर यह आपका सरासर अन्याय है, मेहमान आप हमारे हैं और खाने गए बाहर ।'

'आप भी तो मेहमान को बड़ी बेरुखी से छोड़कर चले गए थे,' कहकर बड़ी ज़ोर से सर्वेश्वर हंसा, 'बड़े प्रेम से बुलाया था उन्होंने, वह फिर कहने लगा, 'हमारे ताऊजी के साले का लड़का है, बड़ा सुशील लड़का, चार साल विलायत रहकर लौटा, इकलौता बेटा, उस पर ताऊजी के साले मुख्यमन्त्री के पी.ए. थे, बड़ी तगड़ी पहुंच के आदमी; एक से एक बढ़िया लड़कियों के रिश्ते आए, पर कन्धे पर हाथ नहीं धरने देता था । ताऊजी का माथा ठनक गया । वह मेरा मित्र था, इसी से मुझे भेजा कि देख आओ माजरा क्या है। तीन साल की बात है, आया तो देखा, हज़रत जिनके पेइंग गेस्ट बनकर रहते हैं उनकी एक बड़ी तेज़-तर्रार सुन्दर-सी लड़की इनके छह रंग-बिरंगे स्वेटर बुन चुकी है और सातवां बुन रही है । फिर क्या पूछता, ताऊजी को आकर बतला दिया । उनके साले और हरिदत्तजी भागते-भागते आए कलकत्ता, तो पता लगा पेइंग गेस्ट को लेकर परिवार जगन्नाथ की रथयात्रा देखने पुरी गया है। पुरी गए तो पता लगा, भुवनेश्वर गए हैं, भुवनेश्वर पहुंचे तो हक्का-बक्का रह गए । बेटे ने बतलाया कि उसके विवाह को सात महीने हो चुके हैं–आज उसी से मिलने गया था ।'

'अच्छा, तो क्या अब भी पेइंग गेस्ट ही है ?'

'नहीं, अब तो बड़ा बढ़िया फ्लैट लिया है, एक-दो साल की बड़ी प्यारी-सी बच्ची है । अब तो सुना, हरिदत्तजी एक महीना रहकर गए हैं ।' सन्तान को माता-पिता अन्त में क्षमा कर ही देते हैं। अब क्षमादान दे चुके होंगे तब ही तो आकर रह गए बेटे के साथ! और साहब लड़की भी बड़ी सुशील है, मैंने तो उसका हाथ देखकर बहुत साल पहले ही कह दिया था कि वह जाति के बाहर विवाह करेगा |'

'अरे, आप क्या हाथ देखना भी जानते हैं? अजी वाह! तब तो देखिए मेरा हाथ, और हां साहब पहले यह बताइए कि मेरी हस्तरेखा मुझे कितने पुत्रों का पिता बताती है,' बैठे ही बैठे कुर्सी मोड़कर धरणीधर ने हाथ का गस्सा छोड़ दिया ।

'देखूंगा, देखूंगा–ऐसी क्या जल्दी है । हाथ देखना तो मेरी 'हॉबी' है, इसी से तो निकोल्सन मुझे इतना मानता है, वैसे कुण्डली देखना मुझे अधिक पसन्द है, पर हाथ की रेखाओं का जाल भी मेरे लिए दुरूह नहीं है |'

खाना निबटाकर मेज़ ही पर हाथ फैलाकर धरणीधर बैठ गया, उसकी चौड़ी हथेली को उठाकर सर्वेश्वर बड़े गौर से अध्ययन की मुद्रा में देखने लगा । अपनी डिप्लोमेसी की कुटिल चाल को और भी कुटिल बनाने के लिए उसने गीता के एक-दो अध्याय कंठस्थ कर लिए थे । राधाकृष्णन् का भाषण होता, तो वह कान लगाकर उनके द्वारा की गई गीता के श्लोकों की आवृत्ति के ढंग को बड़े मनोयोग से सुनता और जब कभी विदेशी मित्रों की गोष्ठी होती, अपने सुमधुर स्वर में, संस्कृत के श्लोकों की आवृत्ति कर पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व की धाक उन पर जमा देता ।

उसके विचार में विदेशी मित्रों को वश में करने के तीन गुरुमन्त्र थे–संस्कृत का थोड़ा-बहुत ज्ञान; योगाभ्यास का नियमित मनन-पठन और वेद, उपनिषद् और गीता के कुछ अंश कण्ठस्थ कर उनकी उचित आवृत्ति कर सकने की क्षमता, साथ ही ज्योतिष-शास्त्र या फिर हस्तरेखा-विज्ञान पर थोड़ा-बहुत अधिकार ।

. सर्वेश्वर बड़ी सूक्ष्म बुद्धि का युवक था । मोटे-मोटे ग्रन्थ कण्ठस्थ कर लेना उसके लिए बाएं हाथ का खेल था। बचपन से ही वह पिता को जन्म-कुण्डली के रहस्यमय कोणों की रचना में लीन देख़ता आया था–उसके पिता बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं की कुण्डलियां बनाते थे । विवाहादि की साम्य दशा देखनी हो या जन्मसमय के ग्रहविचार, शिरोमणि पन्त की ही पुकार होती । इधर खद्दर की टोपी पहनने के पश्चात् उन्होंने यह सब वृत्ति भुला दी थी, किन्तु पुत्र को अपनी विद्या की गठरी सौंपकर वे निश्चिन्त हो गए थे। शत्रु को अर्गला कवच से धराशायी करना, दुष्ट ग्रहों की उचित शान्ति, कई सिद्ध अनुभूत कवच–सब सर्वेश्वर को उन्होंने तोते की भांति रटा दिए थे । हस्तरेखा देखकर वह किसी भी हथेली के स्वामी के चरित्र को खुली पुस्तक की भांति पढ़ लेता था । बड़े-से-बड़े ओहदे पर स्थित अफसर, सेक्रेटरी, राजदूत यहां तक कि मन्त्री भी उसका ज्ञान देखकर दांतों तले अंगुली दबा चुके थे । एक बार एक बहुत बड़े मन्त्री का हाथ देखकर उसने उनके जीवन का परम गोपनीय विभाग खोलकर दिखा दिया था और उनका चेहरा कागज की भांति सफेद पड़ते बहुत लोगों ने देख लिया था। धरणीधर का हाथ देखकर उसने पिछली हुई, होनेवाली और हो रही कई ऐसी बातें बतला दीं कि सकुचाकर बसन्ती ने अपनी हथेली बढ़ा दी।

'अब आपका हाथ क्या देखूं। पति और पत्नी के हाथ तो बंध ही जाते हैं, पर आपके पति के हाथ की रेखाएं उन्हें देश-विदेश में प्रसिद्ध कर देंगी–तीन पुत्र होंगे, तीनों परम यशस्वी ।' भावी पुत्रों की भाग्यवती माता ने लजाकर हाथ खींच लिया ।

'अच्छा हो, पन्तजी, अब देखिए हमारी साली ज्यू का हाथ ।' एक प्रकार से खींचकर अहल्या की हथेली धरणीधर ने सर्वेश्वर के सामने फैला दी। अपने फौलादी बघनखे में उसका सुकोमल हाथ थामकर सर्वेश्वर बड़े मनोयोग से झुक गया । थोड़ी देर वह मूर्ति-सा बना एक-एक रेखा को देखता रहा। फिर धरणीधर को लगा कि उसका चेहरा सफेद पड़ रहा है, ललाट पर झलकती स्वेद की बूंदों को सरला बसन्ती ने भी देख लिया : 'क्यों, चुप क्यों हो, भई? क्या-क्या है हाथ में, अपना सौभाग्य जरा हमें भी तो बता दो ?' धरणीधर दोनों घुटनों की पालथी मारकर और निकट खिसक आया ।

'बिना मैग्निफाइंग ग्लास के ठीक देख नहीं पा रहा हूं, कल उजाले में देखूंगा।' जिस हाथ को बड़ी देर तक अपने हाथ में रखने की कामना थी उसे बिना किसी ममता के ही अचकचाकर सर्वेश्वर ने छोड़ दिया । उसकी हंसी बड़ी ही खोखली और बनावटी लग रही थी । लग रहा था, किसी मनहूस रेखा को देखकर वह बुरी तरह सहम गया है।

'अच्छी रेखा है, पर कल उजाले में देखेंगे,' उसने कहा और उठ गया । 'अब चलें, सोया जाए। बहुत थक गया हूं।'

धरणीधर ने उसे रोका नहीं । सर्वेश्वर चला गया तो वह हंसकर अहल्या से बोला : 'सालीज्यू, तुम्हारे हाथ की रेखाओं ने डरा दिया है हमारे जमाई बाबू को–ऐसा चौंके हैं जैसे सांप रेंगता देख लिया हो !'

'क्या पता वैधव्य योग देखा हो जीजाजी, अहल्या ने पहली बार सर्वेश्वर को लेकर ताना कसा ।

'छि: अहल्या, क्या बकती है, उन्हीं से तेरी बात पक्की हो गई है,' भावी पति के अनिष्ट की बात भी जीभ पर लाना बसन्ती की दृष्टि में महापाप था, 'पर तुम्हारे हाथ को देखकर तो उन्होंने तुम्हारे डूबनेवाली घटना भी सही बता दी–अब तुम्हीं कहो अहल्या, तीन साल पहले ये गोमती में डूबते-डूबते बचे थे, सिवाय मेरे किसी को पता भी नहीं था ।'

'हां जी, हां, क्यों नहीं करोगी तारीफ, एक तो पुरानी ममता उमड़ रही होगी, फिर पांच मिनट में तीन-तीन परम यशस्वी पुत्रों की जननी बनाकर रख दिया, इसी को तो कहते हैं डिप्लोमेसी ।'

सर्वेश्वर कब का उनकी गोष्ठी से उठकर चला गया था । दूसरे दिन सुबह से ही वह घूमने निकल गया, जब कर्नल लौटा तो पहले उसी की कुशल पूछी । फिर नाना उपहार निकालकर अहल्या को सौंप दिए। घूमकर सर्वेश्वर लौटा, तो कर्नल ने एक मखमली केस निकालकर खोला : 'लो भाई, सर्वेश्वर, सोचा जाने से पहले तुम्हें बांध लिया जाए, मेरे एक गुजराती मित्र हैं, सर्वोत्तमदास भीमजीदास झवेरी, उन्होंने कल मंगवाई, देखो फिट आती है या नहीं ।'

सात हीरों की वर्तूलाकार पंक्ति झकझक दमक उठी, कुछ हिचककर सर्वेश्वर खड़ा ही रह गया । अपने सौभाग्य का स्वेच्छा से वरण करने में उसे कुछ संकोच हो रहा था ।

‘लाओ दाहिना हाथ : श्री गणेशायनमः,’ कह जोर से हंसकर कर्नल ने उसकी अंगुली में अंगूठी पहना दी । दूसरी अंगुली का गोमेद, हीरों की उपस्थिति में फीका पड़कर रह गया ।

‘पसन्द आई?’ कर्नल ने बड़े प्रेम से उसका कन्धा थामकर अपने पास सटा लिया ।

‘जी हां, धन्यवाद, बहुत सुन्दर है, पर मेरे जन्म का स्टोन गोमेद है, हीरा ज़रा प्रतिष्ठा कर पहनना होगा ।’

‘अरे! देश-विदेश घूमकर भी ऐसी बचकानी बातों में विश्वास करते हो ।' कर्नल ने आश्चर्य से कहा, ‘जन्म का पत्थर या जन्मकुण्डली के ग्रह सब बेकार की बातें हैं। अब इसी अहल्या की कुण्डली देखकर पहाड़ के एक पोंगा पण्डित ने कहा था कि इसके विवाह के लिए मुझे बड़े कष्ट से लड़का मिलेगा; बैठे-बिठाए मुझे तुम-सा हीरा मिल गया, यही सत्य क्या इस बेमतलब के शास्त्र का खण्डन नहीं करता? धरणीधर ने देखा, सर्वेश्वर का चेहरा एक बार फिर उतर गया, पर अपने को दूसरे ही क्षण संभालकर वह खिसियानी-सी हंसी हंसने लगा ।

‘आज क्या रुक नहीं सकते, सर्वेश्वर? सोच रहा था, कुछ परिचित इष्ट-मित्रों को बुलाकर एक छोटे-से सहभोज का आयोजन कर लेता, इने-गिने पर्वतीय परिवार हैं कलकत्ते में ।’

‘नहीं, आज मुझे जाना ही होगा । मौका लगा तो फिर आऊंगा–कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तो मुझे प्रायः ही आना-जाना पड़ता है।’

‘अहल्या बेटी, तुम सर्वेश्वर के साथ के लिए कुछ हैम सैण्डविच बनाकर पैक कर दो। गाड़ी का समय तो हो रहा है, मैं भी स्टेशन चलूंगा ।’

सर्वेश्वर को छोड़ने कर्नल पुत्री, भतीजी और धरणीधर को लेकर कार में बैठे । सर्वेश्वर को अपने पार्श्व की सीट में बिठाकर उन्होंने स्वयं कार चलाई । साथ में मिठाई की विभिन्न टोकरियां, फल आदि रखकर भी उन्हें जैसे सन्तोष नहीं हुआ । बुकस्टाल से भागकर कुछ देशी-विदेशी पत्रिकाएं भी खरीद लाए। भावी जामाता को हर प्रकार की सुविधा देकर विदा दी, तो उनका गला भर आया : ‘इतना कम हमारे साथ रह पाए, बेटा कि कुछ खातिर भी नहीं कर पाया।’

‘‘कैसी बातें कर रहे हैं आप, इतने स्नेह से आपने मुझे रखा,’ सर्वेश्वर अपने दोनों हाथों से, रेल के डिब्बे की दो लोहे की रेलिंग थामे खड़ा था । उसके हाथ की हीरे सर्चलाइट से चमक रहे थे । धरणीधर और बसन्ती की ओट में अपने को छिपाती अहल्या ने आगे बढ़कर उसे विदा देने का कोई उत्साह नहीं दिखाया । धीरे-धीरे तीव्रतर होती ट्रेन प्लेटफार्म छोड़ गई, तो अहल्या के हृदय से मन-भर की शिला उठी ।

घर पहुंचकर अहल्या एक बार फिर पुरानी अहल्या बन गई। नोनीबाला को बाज़ार भेजकर उसने चटपटे खस्ते मंगवाए, कलकत्ते की जिस दुकान की बंगाली मिठाई सबसे प्रसिद्ध थी वहां से स्पंज के रसगुल्ले मंगवाकर भी उसे चैन नहीं पड़ा । दरबान को भेजकर

उसने कालोजाम मंगवाकर फ्रिज में धर दिया । घर आए स्नेही-सरल जीजाजी और बसन्ती की वह जितनी भी खातिर कर रही थी, उतनी ही उसे कम लग रही थी ।

'अच्छा जीजाजी, कहिए रात को क्या बनवाएं ? गोश्त तो आपको बहुत पसन्द है न? हमारे अहमद के हाथ की बनी मछली खाएंगे, तो बस गोश्त का जायका भूलकर रह जाएंगे- बसन्ती को तो मीठा बहुत पसन्द है, मैंने प्रबन्ध कर लिया है ।'

धरणीधर को अपनी बहन के भावी पति को फांसना था। 'जो भी बनाओ, सालीज्यू। न तो हमारे घर में तुम्हारे भावी पति का-सा मुसलमान खानसामा है न डोम बैरा । घर में सीधी-सादी दाल-रोटी खाते हैं, इसी से तुम्हारे यहां का मिर्च-मसाले का भोजन हमें अमृत लग रहा है । हम तो भई, सच बात कहते हैं ।'

'आप तो बेचारे पन्तजी के पीछे हाथ धोकर पड़ गए हैं, कौन नहीं रखता खानसामा आजकल,' बसन्ती ने सर्वेश्वर का पक्ष लिया । 'खानसामा की कौन बात कर रहा है, जो हर बात में अपनी राजसी ज़िन्दगी की बातें करते हैं, मेरे बदन में आग लग जाती है । बाप बगल में बस्ता दबाए उम्र-भर वृत्ति करते रहे, अब खद्दर की टोपी लगाकर नेता बन गए हैं । इनकी अम्मा को दो पैरों की खुड़ी बनाकर इनके छोटे भाई को हगाते मैंने देखा है और आज वही हजरत खानसामा की हांकते हैं । हमारे बाबूजी यह थे, हमारे बाबूजी वह थे, अलाना-फलाना—बनता बहुत है ।' बसन्ती को दो पैरों की खुड्डीवाली बात बहुत अच्छी लगी। पति के ऐसे सस्ते मज़ाक उसे बड़े अच्छे लगते थे, 'खु-खु-खु' कर वह आंचल मुंह में भरकर हंसने लगी । अहल्या को भी उसकी हंसी की छूत लग गई। दोनों को हंसती छोड़कर धरणीधर चला गया, जब लौटा तो उसके साथ एक लजीला-सा लड़कियों की-सी रेशमी पलकोंवाला युवक भी था ।

'बसन्ती–देखो, इन्हें भी ले आया हूं–हमारी बहन के तो भाग्य जग गए, तुम्हें अम्मा ने जो टीका करने को कहा था कर दो चटपट, इन्हें अभी आफिस पहुंचना है, सालीज्यू कुछ मीठा मुंह कराओ इनका, हम भी रिश्ता पक्का कर लें ।'

अहल्या एक प्लेट में मिठाई और चांदी के गिलास में पानी ले आई । उसी शरमीले युवक ने बड़े संकोच से मिठाई का एक टुकड़ा उठाया । बसन्ती रेशमी रूमाल में एक अशर्फी लेकर आई : कक्का के साहबी बंगले में उसे रोली-अक्षत कुछ भी नहीं मिला, इसी से अपनी मांग भरने की सिन्दूर की डिबिया से ही ईंगुर निकालकर वह एक तश्तरी में घोल लाई थी। छोटा-सा तिलक खींचकर उसने रेशमी रूमाल थमा दिया । लाल बिन्दी से उसका चेहरा और भी लड़कियों का-सा लगने लगा ।

'अब मुझे आज्ञा दीजिए, आफिस पहुंचना है,' बड़े सहमे स्वर में कहकर वह हाथ जोड़ता उठ गया ।

उसे बाहर तक पहुंचाकर धरणीधर लौट आया और 'हे भगवान्', कह शान्ति की सांस खींचकर कुर्सी पर बैठ गया।

'क्या हुआ, जी? क्या एक ही बार कहने में राज़ी हो गए, बोलते क्यों नहीं? कैसे बनते हैं, काम क्या बन गया, नवाब साहब बन गए, मैं न आती तो! तब बच्चू को पता लगता, वह

अधीर हुई जा रही थी । धरणीधर आंखें मूंदे ही रहा । बसन्ती को खिझाने में उसे रस आ रहा था ।

'मत बतलाना, मुझे क्या, मैं तो अहल्या के साथ आज फिर बाजार घूमने जा रही हूं। चटपट कुछ रुपये निकाल दीजिए,' वह क्रुद्ध होने पर पति को आप-आप कर सम्बोधित करती थी।

'मेरे पास रुपये हैं, बसन्ती । तू तैयार हो जा, ड्राइवर से कहूं कार निकालेगा, जीजाजी चलिएगा ?'

आंखें मूंदे मुर्दा-सा पड़ा धरणीधर 'हैं' कहकर ऐसे हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ कि दोनों सहमकर अचकचा गई ।

'हो...हो....हो,' हंसता-हंसता वह तैयार होने चला गया ।

नोनीबाला द्वार की ओट से उस सजीले जीजा और सुन्दरी साली की ठिठोली देखकर गद्‌गद हुई जा रही थी। उस गतयौवना के जीवन में ऐसी रसभीनी घटनाएं दिन-रात घटती रहती हैं, फिर भी मन-ही-मन उसके रसिक चित्त में उमंगें उठने लगीं–काश, उसके भी ऐसा ही बांका जीजा होता! काश, वह भी किसी की साली होती ! वह जिस व्यक्ति की साली थी वह देशी उस्तरे से कलकत्ते के किसी देहात में उजड्ड देहातियों के चेहरे और सिर मूंडा करता था । उस रूखे-गंवार जीजा से किसी प्रकार की हंसी-ठिठोली की गुंजाइश नहीं थी । नीचे भागकर वह बिरजू दरबान की कोठरी में पहुंची, अपने विचित्र लाल लंगोट के लम्बे अनन्त असीम चीर को वह आम की डाली पर सूखने को फैला रहा था । असमय अपनी राधिका रानी को एकान्त में पाकर खिल गया : 'काहे हो-ई बेला कइसे आई–बिल्लो !'

बड़े लाड़ से वह उसे बिल्लो कहकर पुकारता था।

'देखो जीजा, आज से हम तुमसे जीजाजी कहेंगी और तुम हमसे कहोगे सालीज्यू, समझे ?'

'ही...ही...ही...ही...,' बिरजू अपनी नई साली के सर्वथा नवीन रिश्ते के प्रसंग से उन्मत्त हो उठा, अपनी मोटी-मोटी काली भुजंग-सी भुजाएं फैलाए वह 'सालीज्यू' कहता बढ़ा और किसी षोड्‌शी के-से बंकिम कटाक्ष से उसे बींधकर बिजली की गति से प्रौढ़ा नोनीबाला सीढ़ियां फांदती भाग गई ।

सत्ताईस

बहन का विवाह पक्का करने के पश्चात् धरणीधर को घर लौट जाने के लिए पंख-से लग गए । बड़े अनुनय-विनय से अहल्या ने उन्हें दो-तीन दिन रोक लिया और वे दिन ऐसी हंसी-ठिठोली में निकल गए कि अहल्या को कुछ सोचने की भी फुर्सत नहीं रही । रात को वह बारह-बारह बजे तक बसन्ती के साथ गप्पें मारती रहती। सुबह आंख खुलती तो दिन चढ़ आया होता। जिस दिन बसन्ती और धरणीधर को वह स्टेशन छोड़कर लौटी तो घर भांय-भांय कर काट खाने को दौड़ा । कर्नल सुबह ही काम पर निकल गया था । नोनी दो दिन की छुट्टी लेकर देहात चली गई थी । अहल्या बिना खाए-पिए ही अपने कमरे के द्वार बन्द कर लेट गई । खिड़की के पर्दे खींचकर उसने अंधेरा कर लिया–अकेले अंधेरे कमरे में उसे अपना भविष्य और भी अंधकारमय लगने लगा ।

सर्वेश्वर के मज़बूत फौलादी पंजे ने उसके हाथ को जिस कठोर पकड़ में बांधकर उसकी हस्तरेखा का अध्ययन किया था, वह कैसे भूल सकती थी। अभी तो कुछ ही देर हाथ पकड़कर उसे छोड़ दिया था, पर जब वह जीवन भर के लिए उसका हाथ थाम लेगा तब ? बार-बार उसकी भूखी दृष्टि वासना के अंगारों से दहकती अहल्या को दागती रही थी । लगता था अकेली पाकर वह उस पर भूखे शेर की भांति टूट पड़ेगा । वासनादग्ध कामी पुरुष की भूखी दृष्टि को प्रत्येक नारी बड़ी सुगमता से चीन्ह लेती है । वह दृष्टि आंखों ही आंखों में उसके कपड़े उतारने लगती है, उसकी बोटियां चिंचोड़ उठती हैं, उस दृष्टि को नारी कभी प्रेम नहीं कर सकती । विवशता से बंध सकती है, किन्तु उसका चित्त उस बन्धन को स्वीकार नहीं करता । पिता की उलझनें और परेशानियां देखकर अहल्या उनकी चिंता की गठरी को और भारी बनाना नहीं चाहती थी। रात-रात तक कमरा बन्द कर, कर्नल को गौरमोहन काका के साथ दबी-दबी आवाज़ में बातें करते वह सुनती रही थी । अहमद नीट जिन की खाली बोतलें लेकर कमरे से लौटता तो अहल्या के जी में आता वह ज़ोर-ज़ोर से रो पड़े । कर्नल को कुछ हो गया, तो वह क्या करेगी ? न वह पहाड़ जा सकती थी, न अकेली उस भव्य हवेली में ही रह सकती थी। फिर कर्नल के ऊपर विपत्ति के मेघ मंडरा रहे थे । 'नन्दी' भी शायद बंधक में धर दी हो, उसे सर्वेश्वर को सौंपने के आश्वासन से कर्नल निश्चिन्त था, यदि वह कह देगी कि वह अभी विवाह नहीं करेगी, तो फिर वह कमर सीधी नहीं रख पाएगा ।

ललिता गणेशन का उसके लिए बड़ा प्यारा-सा खत आया था। वह छुट्टियां खत्म होने के दिन गिन रही थी, मिस के लिए बहुत सारे भुने नमकीन काजू और मलाबारी केले लाएगी । उसने लम्बे केश कटवा दिए हैं, क्योंकि उनको दो मोटी-मोटी चोटियों में नित्य गूंथना उसके

लिए नित्य का सिरदर्द बन गया था। उसका पत्र पढ़कर अहल्या स्कूल जाने के लिए व्याकुल हो उठी। जैसे भी होगा, वह जाएगी अवश्य । घर में रहकर आखिर करेगी क्या, एक बार वहां पहुंचने पर वह कर्नल को स्पष्ट लिख देगी, उसे सर्वेश्वर से विवाह करने में आपत्ति है, वह किसी भी प्रकार इस विवाह के लिए अपने मन को राज़ी नहीं कर पा रही है । कर्नल दांत पीसेगा, पैर पटकेगा; हो सकता है गौरमोहन काका को सन्धि की शर्त लेकर भेजे भी, पर वह टस से मस नहीं होगी । पापा ने अंगूठी दी है, तो दिया करें, उन्होंने बिना उससे पूछे ही सगाई की है, अब स्वयं भुगतें । जीवन-भर का प्रश्न है, न वह उस व्यक्ति को जानती है, न उससे कोई पूर्व-परिचय है । विवाह के बंधन में वह कभी नहीं पड़ेगी । बसन्ती को तो देख लिया, नया-नया ब्याह हुआ, तो कैसी उमंगें थीं, कैसा खिला-खिला चेहरा था, और अब न जाने कितनी ज़िम्मेदारियों ने भोली किशोरी को अपने चक्रव्यूह में घेर लिया था । बड़ी ननद विधवा हो गई थी । तीन बच्चे लेकर वह उसी के मत्थे पड़ गई थी । सास की व्यंगोक्ति से छुटकारा पाने का एक ही उपाय था, विधवा ननद को बच्चों सहित अपने साथ लखनऊ में आश्रय देकर रखना । बेचारी यही करने कलकत्ते से भागी-भागी गई थी। छोटी ननद की शादी भी धरणीधर को करनी थी। उस पर हर तीज और त्यौहारों में तीन-तीन ननदों को भिन्न-भिन्न प्रकार के तोहफे सजाकर भेजने होते थे । बसन्ती की दुर्दशा देखकर अहल्या को स्वयं अपना भविष्य सहमा देता था । पहाड़ का रहन-सहन वह देख चुकी थी, फिर सर्वेश्वर कितना ही समृद्ध हो, लाख बैरा-बटलर रखे, श्वसुर-गृह की समृद्धि का विवरण वह धरणीधर से सुन चुकी थी। दो पैरों की खुड्डी बनाकर बच्चे को टट्टी फिरानेवाली सास से क्या उसकी निभ सकेगी ? किन्तु दूसरे ही क्षण, उसे कर्नल के रक्तचाप, दिल के दौरे और डांवाडोल आर्थिक स्थिति का ध्यान आता । अकेली रहकर कैसे भयानक संकट के क्षणों से उसकी मुठभेड़ हो चुकी थी । उस दिन दिल्ली में यदि ज्ञानकौर के पिता न मिले होते तो! यदि उस दिन जेकी की आंटी मल्लिका सरकार न होकर कोई और होती तो... ! उस बस्ती से क्या वह इतनी आसानी से निकल भागती ? बिन्दादीन आकर उसे किसी भी अंधेरी कोठरी में पटक सकता था ।...

वह मन-ही-मन सिहर उठी। ढोंगी साधु परमानन्द यदि उसे अकेले भयावने जंगल में पकड़ लेता तब? अचानक परमानन्द के प्रसंग से राजू की स्मृति ताजी हो गई । अहल्या को उससे क्या क्षणिक लगाव भी नहीं हुआ था? कभी नहीं, कभी नहीं ! अपने तकिए को जोर से पकड़ वह ओंठ काटकर रुलाई के वेग को रोक लेती । यदि सर्वेश्वर के स्थान पर राजू होता तो क्या वह पिता को अपनी सम्मति दे देती। कभी नहीं! क्यों उस ओछे युवक ने उसका अपमान नहीं किया था? एक बार, केवल एक बार, जब वह पहाड़ी झरने का पानी पी रही थी, उसकी मुग्ध दृष्टि देखकर उसका हृदय बल्लियों उछलने लगा था । पर दूसरे ही क्षण फिर उसी रुखाई से उसे पीछे छोड़, वह बहुत आगे निकल गया था । न जाने कहां गोली लगी होगी, दाह-संस्कार भी नहीं किया होगा। बर्फ में न जाने कितने जवानों की लाशें अभी ज्यों की त्यों पड़ी होंगी ! एक ही विचार अहल्या के चित्त को बार-बार कचोटता था।

रेक्सी के कार्ड को देखकर राजू ने उसे कितनी हल्की और सस्ती समझा होगा । एक बार उसे पिता का वैभव दिखाने की चाह उसके मन में ही रह गई ।

बसन्ती के आने से, धरणीधर के निर्दोष परिहास से राजू की स्मृति के सूखे बिरवे में फिर पानी पड़ गया था । अब उसकी टहनियों में फिर हरी-हरी कोंपलें फूटने लगी थीं ! राजू की पुस्तक को झाड़-पोंछकर अहल्या ने अपनी मेज़ पर रख दिया, अखबार में युद्ध-बन्दियों के नाम आते, तो वह एक-एक नाम को गौर से पढ़ती । क्या पता चीनियों की कैद में हो? इसी प्रकार उसकी छुट्टियां खत्म हो गई ।

मदर ने उसे एक पत्र में रेलवे कन्सेशन बनाकर भेज दिया था। जिस देहली पार्टी को वह लेकर गई थी, उसे ही लेकर आना भी होगा । कौन लड़की उसे कहां मिलेगी, किस ट्रेन से आने में उसे सुविधा होगी, पूरा नक्शा खींचकर मदर ने भेजा था और बड़े ही स्नेह से उसके बीमार पिता की कुशल पूछी थी। कर्नल ने उसके लौट जाने के प्रस्ताव को सुना तो आगबबूला हो गया : 'यह क्या बेहूदगी है, अहल्या, तुम कितने बड़े आदमी की पत्नी बनने जा रही हो और फिर वही बेहूदी नौकरी की धुन तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ रही है ?'

'पापा, जब मैं नौकरी करने गई, तब भी मैं बहुत बड़े आदमी की बेटी थी, यदि तब नौकरी करने में कोई दोष नहीं था, तो अब भी नहीं होना चाहिए। फिर मदर ने रेलवे कन्सेशन भेज दिया है, मुझे लड़कियों को 17 की शाम मिलना ही होगा ।'

'नॉन्सेन्स !' कर्नल ने गुस्से में अपना सिगार भी चबा डाला : 'मुंशीजी पहुंचा आएंगे लड़कियों को, तुम नहीं जा सकतीं । मैं मदर को अभी तार कर देता हूं, दिसम्बर खत्म हो चुका है, मई में तुम्हारा विवाह होगा, कितना कुछ मुझे करना है, मैं अकेले क्या-क्या करूंगा ?'

'आप तार नहीं करेंगे,' अहल्या खड़ी हो गई थी। उत्तेजना से उसके माथे की नसें फूल गई थीं । ज़िद्दी पिता के सामने उसकी जिद्दी पुत्री खड़ी थी : 'मैं जाऊंगी ही, चाहे आप तार करें या न करें, रही मेरे विवाह की बात ! अभी पांच महीने हैं, पापा, आप ही कहिए इतने दिन में यहां क्या करूंगी ? जब आप बुलाएंगे, मैं इस्तीफा देकर आ आऊंगी; मेरे रहने या न रहने से आपकी तैयारियों में कोई फर्क नहीं पड़ सकता ।'

अहल्या, पिता की बात अनसुनी कर चली गई, जाने के कुछ घण्टे पहले, वह गौरमोहन काका से मिलने गई। कुछ ही दिनों में बेचारे बहुत बूढ़े हो गए थे । दोनों सूजे घुटनों पर हाथ फेरते अपनी कुर्सी पर बैठे चुपचाप पड़े थे । अहल्या को देखकर, उन्होंने हाथ फैला दिए : 'सुना, आज हमारी बिटिया फिर नौकरी पर वापस जा रही है, ऐसा अंधेर भी कहीं देखा है! भावी राजदूत की पत्नी क्या पति की मर्यादा का बिल्कुल ही ध्यान नहीं रखेगी ?'

मन-ही-मन वह अहल्या की सगाई का समाचार सुनकर क्षुब्ध ही हुए थे पर अपनी हंसी को उन्होंने मन के क्षोभ से म्लान नहीं होने दिया था । सफेद घनी मूंछों के नीचे उनकी दूध की धुली हंसी वैसी ही सऱल और निष्पाप थी, जैसी किसी सिद्ध शराबी की होती हे।

सबसे छोटे लड़के दुलाल की पत्नी के रूप में ही वे अहल्या को मानकर आज तक अपनी कल्पना का भव्य दुर्ग सहेजते आए थे । कर्नल की आर्थिक स्थिति बिगड़ी तो वे अपना अटूट मूलधन लेकर इसी आशा से बढ़े थे, अहल्या को बहू बनाकर लाने पर उनकी सब कामनाएं पूरी हो जाएंगी–उनके अन्तरंग मित्र की कन्या उनकी बन जाएगी और दुलाल के हठीले स्वभाव को भी अहल्या का सौन्दर्य और स्वभाव जीत लेगा । पर कर्नल ने उन्हें फोन पर ही सर्वेश्वर के आने की सूचना दी, तो उन्हें उसे देखने का कोई उत्साह नहीं हुआ : 'मेरी तबीयत गड़बड़ है भाई, आ नहीं पाऊंगा,' कहकर उन्होंने टाल दिया था।

'क्यों नौकरी करने में क्या दोष है, काका बाबू?' अहल्या उनके पास बैठकर बड़े स्नेह से उनके सूजे घुटनों पर अपने नरम हाथ फेरने लगी, 'आयुर्वेद का इलाज क्यों नहीं कराते, काका बाबू, घुटने तो बहुत सूज गए हैं ।'

'अब इन्हें कोई चरक ठीक नहीं कर सकता, बेटी, चिता की लकड़ियां ही चटक-चटक कर सकेंगी, तभी जुड़ाएंगी यह बूढ़ी हड्डियां, पर इधर देख तो मां ?' अहल्या की ठुड्डी पकड़कर उन्होंने बड़े स्नेह से उठाया। 'तुझे यह नौकरी की क्या घुन लगी है? विवाह पक्का होने पर हिन्दू घर की कन्या देहरी के बाहर पैर नहीं रखती, जानती है न? तेरे पिता का रक्तचाप कितना बढ़ गया है जानती है, कल ही डॉ. घोषाल कर रहे थे कि उन्हें मांस-मछली, नमक-घी सब छोड़ देना होगा । तू होगी तो शायद उसकी बदपरहेज़ी को रोक लेगी, तू नहीं होगी तो नित्य मुर्ग बनेगा, एक टांग शायद तेरे बाप के हिस्से में आएगी और सब अहमद, ननी और बिरजू के पेट में । उस ससुरी को दो लात मारकर निकालती क्यों नहीं ?'

'किसको, काका बाबू,' वह जान-बूझकर अनजान बन गई ।

'अरी, उस साली पतुरिया नाइन को, हमारी आल्मारी से बोतलें तक पार कर ले जाती है, ऐसी नागिन को तुम लोगों ने पता नहीं क्यों पाला है !'

'वह बहुत दिनों की है, काका बाबू, इसी से शायद पापा ने नहीं हटाया ।'

'बहुत दिनों की है, यह तो मैं भी जानता हूं, पर उन दिनों कीं अब कौन-सी चीज़ बची है जरा बता तो मुझे ? जब सभी पाप कट गए, तो काटो ससुरी इस पाप की फांसी को भी-अन्धाधुन्ध के राज में गधा भी पंजीरी खाता है इसी से कह रहा हूं, बेटी, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, जो कुछ गन्दगी है उखाड़ फेंक और अभी भी घर को बचा ले।'

'नहीं, काका बाबू, मुझे कुछ दिनों के लिए जाना ही होगा; लौटकर सब देखूंगी, अभी पापा से भी आफिस जाकर ही मिलना पड़ेगा । मेरे उठने तक तो वे निकल गए थे ।'

आफिस में भी अहल्या को कर्नल नहीं मिला, पुत्री की जिद ने उसे रुष्ट कर दिया था । पिता से बिना मिले ही जाने पर उसे बहुत दुख हुआ, पर घर की अशान्ति से वह ऊब गई थी ।

देहली में अपने साथ की लड़कियों से मिलकर वह सब भूल गई।

अट्ठाईस

मिस, आपकी वह देहलीवाली सखी आपको छोड़ने नहीं आईं, मिस डी. सूजा, कितनी प्यारी आंखें थीं उनकी ?'

'मिस, आप दुबली हो गई हैं ।'

'मिस, आपने हेयर स्टाइल बदल दिया है न ?'

'न्यू पिंच, मिस आपकी नई साड़ी है न? कितना प्यारा रंग है !' लड़कियां चिड़ियों-सी चहकने लगी थीं । घर से लौटने पर उनकी जेबें चाकलेट, मेवे और लेमन ड्राप्स से भरी थीं । हंसती-खिलखिलाती कुट-कुट नन्हीं गिलहरियों-सी जेब से चीज़ें निकालकर खाती लड़कियां प्लेटफार्म पर चहल-कदमी करने में विशेष रूप से उल्लसित हो रही थीं । बुकस्टाल के पास कुछ सरदार लड़के, अपने रंगीन साफों की कलगी ठीक करते सीटियां बजाने लगे थे, इसी से ट्रेन आते ही लड़कियों को अपने रिजर्व डिब्बे में बिठाकर अहल्या ने शान्ति की सांस ली । अब उसे सबक मिल गया था । रात-भर कोई भी खटखटाए, वह द्वार नहीं खोलेगी । मद्रास से उसे दो-तीन लड़कियों को साथ में लेना था, जिनमें से ललिता गणेशन भी एक थी। मद्रास के विराट स्टेशन के एक कोने में छड़ी में वेणियां लटकाए एक काला गंजा बूढ़ा चीख रहा था : 'कदम्बम्-कदम्बम् ।' लड़कियां उसी ओर भागीं, देखते ही देखते उसकी पूरी छड़ी खाली हो गई । किसी तरह उन्हें ठेलती अहल्या वेटिंग रूम में पहुंची । ललिता गणेशन को अब तक आ जाना चाहिए था, वह सोच ही रही थी । 'ललिता आ गई । ललिता आ गई, कह लड़कियां बाहर भागीं । रेशमी बैंगनी लहंगा और मद्रासी ऊंची चोली पहने ललिता अचानक बहुत बड़ी लगने लगी थी । उसकी आंखें, जिनमें पहले शोख लहरें हिलोरती थीं, लजीली पलकों के शासन में शान्त लग रही थीं ।

'अरे, ललिता, तुम तो बड़ी दुबली लग रही हो, भई,' अहल्या ने उसका हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया, किसके साथ आईं ? क्या ममी भी आई हैं ?'

'नहीं मिस, मेरे पापा के मित्र मि. रामनाथन् मुझे पहुंचाने आए हैं, बाहर खड़े हैं, आप मिलेंगी क्या उनसे मिस ?'

'क्यों नहीं, चलो,' लड़कियों का पूरा दल उसके पीछे चलने लगा । 'नहीं, तुम लोग यहीं बैठो, मैं अभी आती हूं, चाय मंगवा दी जाए तुम्हारे लिए ?'

'हां, मिस,' समवेत स्वर में लड़कियां चीखीं, 'और कुछ खाने को भी, इगमोर का बड़ा बहुत प्रसिद्ध है, मिस !'

ट्रेन के सफर में उन लड़कियों की भूख बड़ी विकट हो जाती थी । अहल्या ललिता को लेकर बाहर गई । बुकस्टाल के पास ट्वीड्स का कोट कन्धे पर डाले जिस व्यक्ति ने उसका अभिवादन किया, उसे देखकर पहले वह झेंपकर ठिठक गई । पिता के मित्र कहकर ही

ललिता ने उस व्यक्ति का परिचय दिया था, किन्तु उस नितान्त बचकाने-से युवक ने हंसकर उसकी ओर हाथ बढ़ाया तो कुछ झिझक से ही उसने हाथ मिलाया ।

'बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर, ललिथा तो दिन-रात आप ही की बातें करती है ।' वह ललिता को ललिथा सम्बोधित कर रहा था । उसके सांवले रंग में उसकी स्वच्छ दन्त-पंक्ति उसके रंग को और भी काला दिखा रही थी ।

'ललिथा, तुम क्या थोड़ी देर हमें छोड़ सकती हो, मुझे तुम्हारी मिस से कुछ कहना है ।' रामनाथन् बुकस्टाल से हटकर खड़ा हो गया । ललिता चली गई तो वह अहल्या के पास आ गया । अहल्या ने देखा दूर से युवक लगनेवाला वह बहुरूपिया-सा व्यक्ति निस्सन्देह प्रौढ़ ही था। कनपटी के आसपास के सारे बाल सफेद थे, चेहरे पर अनुभव और आयु की झुर्रियां थीं । अपने यौवन काल में वह निश्चय ही सुदर्शन-सुपुरुष रहा होगा ।

'क्षमा कीजिएगा, आपसे कोई पूर्वपरिचय नहीं, पर ललिथा आपका बहुत आदर करती है। मुझे भी अब आपके सहयोग की आशा रहेगी,' वह जेब से अपना सुनहरा सिगरेट-केस खोलकर सिगरेट निकालने का उपक्रम करने लगा। अहल्या ने देखा उसकी लम्बी-लम्बी अंगुलियां कांप रही थीं ।

'असल में ललिता अपनी मां के साथ आनेवाली थी, पर...' कहकर वह चुप हो गया ।

अहल्या ने कुछ पूछने या जानने की उत्सुकता नहीं दिखाई । मन ही मन उसे ललिता के पिता के उस ढीठ मित्र पर गुस्सा आ रहा था । कितना काम पड़ा था उसे और बीच ही में रोककर बेकार की बातें कर रहा था ।

'कैसा सहयोग ? मैं आपकी बात समझ नहीं पाई। कृपा कर मुझे अब आज्ञा देंगे। मुझे लड़कियों का कन्सेशन फार्म ठीक करवाना है,' अहल्या ने अधैर्य से बटुआ खोलकर एक रेलवे रसीद निकाल ली।

'ओह, आप बड़ी जल्दी में हैं लगता है,' रामनाथन् मुस्कराकर बड़ी धृष्टता से सिगरेट फूंकता रहा । 'कोई बात नहीं, संक्षेप ही में कहना पड़ेगा । ललिथा को अपनी मां से कोई विशेष लगाव नहीं है, यह तो आप जानती ही हैं। मैं उसका बचपन का मित्र हूं, पर उसकी मां को हमारी मैत्री अच्छी नहीं लगती, इसी से मैंने निश्चय किया है कि हमारी मैत्री को नया मोड़ देना होगा-परिणय का मोड़ ।'

अहल्या चौंककर आश्चर्य से उसको देखती रही–बच्ची-सी भोली ललिता और क्रूर नरव्याघ्र-सा दिखनेवाला वह प्रौढ़ व्यक्ति!

'मैं जानता हूं कि उसकी उम्र में और मेरी उम्र में बहुत अन्तर है, मैं कोंकणी हूं–कायदे से हमारा विवाह नहीं हो सकता, किन्तु इस क्षेत्र में कायदे-कानून की दलीलें प्राय: व्यर्थ ही रहती हैं । इसी विषय को लेकर मैंने आपसे सहयोग की प्रार्थना की थी। ललिथा अभी बालिग नहीं हुई, नहीं तो आज वह स्कूल पार्टी के साथ न जाती, वह फिर बड़ी धृष्टता से हंसा और बड़े अधिकार से उसने दूर खड़ी ललिता को पुकारा, 'ललिथा, आओ कार से तुम्हारा सामान उठा लें ।'

अहल्या भौंचक्की-सी उनकी जोड़ी को देख रही थी, अपने वृषभ स्कन्ध तानकर जाता रामनाथन् और उसके पीछे सिर झुकाए आज्ञाकारिणी बालिका-सी जाती ललिता । थोड़ी देर में वह सामान उठवाकर ललिता को पहुंचा गया । अहल्या के पास आकर फौजी ठसके के साथ दोनों एड़ियां खटकाकर उसने धीमी आवाज़ में कहा : 'बीस फरवरी को आपका सहयोग विशेष रूप से प्रार्थनीय है ।' और जब तक अहल्या उसे फटकारकर कुछ कह सकती वह तेज़ी से मुड़कर चला गया था ।

मार्ग-भर ललिता से उसने कुछ भी नहीं पूछा । जब कभी ललिता की आंखें उसकी ओर उठतीं, वह जान-बूझकर चेहरा फेर लेती। स्कूल पहुंचने पर वह एकान्त में उस लड़की को कसकर फटकारेगी । फटकारने की नौबत नहीं आई, तीसरे ही दिन उसे बड़ा तेज़ बुखार चढ़ आया । लाल-लाल अंगारे-सी आंखों से छत को घूरती वह ज्वर में प्रलाप करती बड़बड़ा रही थी : 'रामनाथन्, मैं तुम्हारे साथ नहीं आऊंगी, नहीं मुझे छोड़ दो ।' चौथे दिन उसका पूरा शरीर छोटे-छोटे दानों से भर गया । डॉक्टर ने आकर कहा उसे खसरा निकल आया है, अन्य लड़कियों से बचाकर रखना होगा । अहल्या उसकी परिचर्या में लगी रही। पांच-छह दिन के पश्चात् उसकी बेचैनी घट गई थी, चादर से पूरा शरीर लपेटकर वह बिस्तर में आड़ी होकर पड़ी थी।

'ललिता, लो थोड़ा साबूदाना पी लो,' बड़े स्नेह से अहल्या ने साबूदाने का प्याला उसकी ओर बढ़ाया ।

'नहीं, मैं कुछ नहीं लूंगी,' उसने उदास डूबी आवाज़ में कहा और दीवार की ओर मुंह फेर लिया। अहल्या ने देखा उसकी दोनों आंखें, साबूदाने के प्याले-सी छलक रही थीं । ज्वर के दौर्बल्य से उसका चित्त भी दुर्बल हो गया था । अहल्या से सबकुछ कहने को वह व्याकुल हो रही थी, पर न जाने किस बेबसी और संकोच से उसका गला रुंध गया ।

'मिस,' वह अचानक चुप हो गई । उसके पपड़ी पड़े ओंठ कांपने लगे।

'ललिता, क्या कुछ कहना चाहती हो ?'

अहल्या ने द्वार बन्द कर चिटकनी चढ़ा दी और स्टूल दूर खिसकाकर उसकी पलंग की पाटी पर बैठ उसकी दुबली कलाइयां सहलाने लगी।

'रामनाथन् से क्या तुम्हारा विवाह पक्का हो गया है ललिता ?'

'नहीं ! नहीं !' वह अहल्या के हाथों को जोर से दबाकर और बहुत कुछ कहने को उतावली हो गई, 'मेरा विवाह उससे नहीं हो सकता–कभी नहीं हो सकता, उसका विवाह बहुत पहले नन्दिनी मुण्डुकुर से हो चुका है । उसकी लड़की मेरे साथ खेलती थी, पिछले साल बुखार में मर गई ।' वह बुरी तरह हांफने लगी, पर फिर भी बिना रुके बोलती जा रही थी। जैसे उसे भय हो रहा था कि एक बार बातों का क्रम टूट जाने पर फिर वह अपने मन की व्यथा व्यक्त नहीं कर पाएगी : 'पर रामनाथन् कहते हैं कि वे मुझसे विवाह करेंगे, नन्दिनी पिछले दो साल से रांची के पागलखाने में है ।'

'तो फिर तुमने हां कैसे कह दिया? जिस व्यक्ति को तुम अपने पिता के मित्र के रूप में देखती आई हो, उससे तुम्हारी मित्रता कैसे हो गई ?'

'झूठ बोलता है वह, बदमाश है, उचक्का है,' वह दोनों हाथ अपनी आंखों पर धरकर ज़ोर से सिसकने लगी।

'धीरे-धीरे ललिता, मदर आती होंगी । इस तरह रोने से तुम्हारा बुखार बढ़ जाएगा । रामनाथन् की बातें अब हम नहीं करेंगे । तुम सो जाओ,' अहल्या ने उसकी इधर-उधर झूलती दोनों चोटियों को तकिए पर ठीक से सहेजा।

'नहीं, आज ही मैं आपको सब बताऊंगी । रामनाथन् हमारे घर में आता रहता था । एक दिन मुझसे कहने लगा कि उसे जादू आता है, हिप्नॉटिज़्म । जिससे जो चाहे कर सकता है । सचमुच, एक बार उसने मुझसे अपनी आंखों में देखने को कहा : 'पुतलियों में तुम्हें तुम्हारा मृत भाई दिखेगा ललिता,' और मैं पगली-सी उसकी ओर देखने लगी। फिर मुझे क्या हो गया, मैं नहीं जानती। अब न चाहने पर भी मैं उसकी ओर देखने लगती हूं और देखने पर मुझे फिर कुछ होश नहीं रहता ।'

'तुम निश्चिन्त होकर सो रहो, ललिता, रामनाथन् इस स्कूल मैं पैर भी नहीं रखेगा। पर तुम उसके साथ मद्रास तक कैसे चली आईं ?'

'मैं क्या करती ! उसने मुझसे आकर कहा कि मुझे उसके साथ ही चलना होगा और मैं ममी के सामने खूब सिर पटक-पटककर रोने लगी कि स्कूल जाऊंगी, तो रामनाथन् ही के साथ, अन्यथा नहीं । उसने मुझे कुछ कर दिया है, मिस, अब मैं क्या करूं ?' उसने अपनी बड़ी-बड़ी ज्वर से पीली आंखें अहल्या के चेहरे पर टिका दीं।

'पगली लड़की, रामनाथन् तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, मैं उसे देख लूंगी, बस । चलो साबूदाना पीकर चुपचाप सो जाओ,' उसे पूरा प्याला पिलाकर कम्बल से अच्छी तरह ढांप-ढूंपकर अहल्या अपने कमरे में गई। रामनाथन् की विचित्र आंखें वास्तव में किसी रहस्यमय तान्त्रिक की-सी थीं । चलते-चलते उसका कहना, 'बीस फरवरी को आपका सहयोग विशेष रूप से प्रार्थनीय है,' उसे रह-रहकर उलझन में डालने लगा। वह क्या करे ? क्या मदर से कह दे ? या एक पत्र ललिता की मां को लिख दे ? किन्तु जिसको पुत्र की असामयिक मृत्यु का धक्का भी नहीं सुधार सका था, उसे क्या पुत्री की विपत्ति सुनकर कुछ चिन्ता होगी ? तब वह क्या करे ? देखा जाएगा, फरवरी आने में अभी बहुत दिन लगेंगे, सोचकर वह करवट बदलकर सो गई ।

ज्वर उतरने पर भी ललिता को अभी कक्षा में आने की अनुमति नहीं मिली थी, खिड़की पर बैठी-बैठी वह अहल्या के आने की प्रतीक्षा करती। क्लास से सीधी अहल्या उसी के पास पहुंचती, कभी लाती बड़ा-सा खिला लाल गुलाब, कभी चमेली बेला की वेणी और कभी नई कॉमिक की लुभावनी रंगीन पत्रिका । पर अब ललिता को कॉमिक पढ़ने में कोई आनन्द नहीं आता था। वह अचानक सयानी और गम्भीर बन गई थी । कभी अपने नाखून काटती रहती और अहल्या टोकती तो कोई पुस्तक लेकर बैठ जाती और उसके पृष्ठों को उलटती-पलटती रहती । जिस दिन उसे फिर से कक्षा में जाने की अनुमति देने अहल्या पहुंची, तो वह स्वयं ललिता की मुक्ति पर विशेष रूप से प्रसन्न थी। अब साथ की लड़कियों में उठ-

बैठकर वह रामनाथन् की बातें भूल जाएगी। छुट्टियों में वह ललिता की मां से अनुमति लेकर उसे अपने साथ कलकत्ता ले जाएगी। 'तुम कल स्कूल जा सकती हो ललिता, डॉ. आयंगर से मैंने पूछ लिया है,' अहल्या उसके लिए बहुत बड़ा-सा पीला गुलाब लाई थी ।

'थैंक्यू मिस,' उसने बड़ी बुझी आवाज़ में कहा, 'कल रात मैंने सपने में फिर रामनाथन् को देखा, उसकी डरी-सहमी आंखें पूरे चेहरे पर फैल गई। 'क्या बेकार की बातें करती हो,' अहल्या ने डपटकर कहा, 'आज से मैंने तुम्हारे बेहूदे सपनों की बातें सुनीं, तो मुझसे बुरा कोई न होगा । मैं आजकल तुम लोगों की लिटरेचर की क्लास ले रही हूं, तुम्हें बहुत मेहनत करनी होगी, बहुत थोड़ा-सा पढ़ाया है ।'

'मैंने देखा कि वह एक ऊंची पहाड़ी से मुझे नीचे ढकेल रहा है, कह रहा हे–नीचे नदी है, उसी में तुम्हारा छोटा भाई तुम्हें मिलेगा, मैं कूद नहीं रही हूं इसी से वह मुझे ज़ोर से ढकेल रहा है और मैं गिर पड़ती हूं,' वह बड़े ज़ोर से सहमी और अपनी दोनों आंखें बन्द कर अहल्या से लिपट गई, 'मुझे बचा लेंगी न आप ?' थर-थर कांपती, छींट के नाइट गाउन में उस दुबली-सी लड़की को एक प्रकार से गोदी में उठाकर अहल्या ने पलंग पर बिठा दिया । 'तुम अभी भी बहुत कमज़ोर हो ललिता, देखती हूं मदर से जाकर तुम्हारे लिए अभी एक-दो दिन की छुट्टी लेनी होगी-पर सुनो...!' स्वर को कड़ा कर अहल्या उसके पास झुक आई, 'ऐसे बेहूदे, बेकार के हिस्टीरिकल सपने तुम आज से नहीं देखोगी, समझी !' ललिता ने कुछ नहीं कहा, केवल अपनी तरल, सहमी दृष्टि से अहल्या को देखती रही । दूसरे दिन अहल्या को लगा, कोई उसके सिरहाने खड़ा है, रात पूरी तरह से बीती नहीं थी, डोरीन चाय बनाने छह बजे से पहले कभी नहीं आती थी।

'कौन ?' सिरहाने से टार्च निकालकर उसने जला दी ।

'उठकर मेरे साथ चलो, ईश्वर उस नादान लड़की को क्षमा करें-ईश्वर उसे क्षमा करें ।' रोजेरी को हाथ में लिए स्वयं रेवरेण्ड मदर खड़ी बुदबुदा रही थीं । अहल्या कुछ समझ नहीं पाई, पर न जाने क्यों बिजली की गति से एक ही विचार उसके मस्तिष्क में कौंध गया-ललिता को कुछ हो गया है !

'किसे मदर ? किसे क्या हो गया ?'

मदर के तापसी चेहरे पर नित्य का निर्विकार भाव, विषाद में डूब गया था । 'ललिता की लाश हमारे स्विमिंग पूल में तैर रही है । अभी पुलिस को खबर देनी होगी । मैंने बड़े पादरी को भी बुला लिया है। लाश इन्फरमरी में है। नादान लड़की, क्यों किया उसने ऐसा? क्या तुम्हें कुछ पता है ?'

अहल्या कांप गई : 'मुझे बचा लेंगी न आप ?' उसके गले में झूलती छींट के नाइट गाउन से निकली दो कांपती बांहें, भय से सहमी दो तरल काली पुतलियां... ।

'नहीं, मदर, ललिता तो बड़ी आनन्दी लड़की थी,' अहल्या ने रहस्य को अपने ही तक सीमित रखा ।

जिस पलंग पर बड़े प्यार से सुलाकर मीठी फटकार के साथ अहल्या उसे सुला आई थी; उसी पर सो रही थी ललिता, मदर ने चादर से उसका मुंह ढांप दिया था, किन्तु चादर के

आवरण से निकलकर उसकी दो मोटी-मोटी चोटियां इधर-उधर झूल रही थीं ।

'डॉ. आयंगर आते होंगे, तुम उन्हें ऊपर लिवा लाना, अहल्या, अभी लड़कियों तक यह बात न पहुंचे इसका ध्यान रखना, इसके घर को ट्रंक कॉल भी करना होगा ।'

अहल्या एक बार चादर उठाकर उस प्रिय चेहरे को देखना चाह रही थी, पर उसकी टांगें बुरी तरह कांप रही थीं । वह डॉक्टर आयंगर को लेने जीना उतरने लगी ।

डॉक्टर ने आकर देखा, मृत्यु को चार घण्टे से भी ऊपर बीत चुके थे । 'पुलिस के आने पर पोस्टमार्टम अनिवार्य होगा,' उन्होंने कहा । अहल्या सहम गई, बेरुखी से उस तन्वी किशोरी को डॉक्टर भिण्डी की तरह चीर देगा। मदर की उपस्थिति में अहल्या ने एक शिकन भी अपने चेहरे पर न आने दी। ललिता के घर से उसके दाह-संस्कार की अनुमति आ गई थी। उतनी दूर से कोई आ नहीं पाएगा, यही किसी ने फोन पर कह दिया था । अहल्या ने उसे अपने हाथों से सजाया-पहले उसके उलझे भीगे बालों की दो चोटियां कीं, उनमें पीला गुलाब लगाया, कलम से लिखी गई-सी भौंहों के बीच काजल की लम्बी बिन्दी की रेखा ठीक वैसे ही खींच दी जैसे ललिता खींचा करती थी। दक्षिणी ज़री का लहंगा और रेशमी चोली पहनाई । उसके बक्से से निकालकर शंख और सोने की वह माला उसे पहना दी, जो उसके छोटे भाई ने उसे जन्म दिन पर दी थी। धूपबत्तियों का खुशबूदार सन्दली धुआं उसे बहुत प्रिय था । अगरबत्ती का पूरा गुच्छा जलाकर उसने पलंग के चारों ओर लगा दिया । रेशमी तकिए पर लेटी ललिता ऐसी लग रही थी जैसे कोई राजकन्या चैन की नींद सो रही हो। कमरे में एक क्षण भी वह अकेली नहीं रह पा रही थी । एक बार उस भोले-पीड़ित चेहरे को हाथ में भरकर चूमना चाह रही थी अहल्या । ललिता के एक दूर के रिश्ते के चाचा, अपनी बिरादरी के कुछ लोगों को लेकर मृत-देह लेने आ पहुंचे थे।

उस लटकी, शिथिल हथेली को एक बार दाबकर अहल्या ने विदा ली। जब लोग ललिता की अवश देह को उठाकर बाहर ले जाने लगे, तो अहल्या अपने को न रोक सकी । अगरबत्ती की सुगन्धित धुएं की घुटन और गुलाब के मुरझाए पुष्पों की सुगन्ध में लिपटी, ललिता का रेशमी तकिया वहीं गिर गया था । उसी को पकड़कर कभी न रोनेवाली अहल्या फूट-फूटकर रोने लगी ।

उन्तीस

ललिता की मृत्यु के पश्चात् उसका कॉन्वेण्ट में मन ही नहीं लगता था । कक्षा में पहुंचती तो उसकी आंखें स्वयं उस चुलबुली, जीवन्त लड़की के हंसमुख चेहरे को व्यर्थ ही खोजने लगतीं। कमरे में लौटकर अपने को काम में आकण्ठ डुबोकर रख देती। कभी ढेर-सी कापियां जांचने लगती, कभी लड़कियों के कपड़ों की लिस्ट ले जाकर मिलाने बैठ जाती, कभी जवानों के खाकी स्वेटर ही बिनने लगती, पर ललिता के चेहरे को वह भूल नहीं पाती थी । क्या रामनाथन् को उसकी मृत्यु का समाचार मिल गया होगा? एक बार उसके जी में आया कि वह ललिता की मां को सारी बातें लिख दे, पर वह जानती थी कि वह कितनी ही लम्बी चिट्ठी लिखे, उसका एक अक्षर भी उसकी मां के हृदय तक नहीं पहुंचेगा। कर्नल के उसके लिए दो पत्र आ चुके थे, उसकी विवाह-तिथि अचानक और आगे खिसका दी गई थी । कुमाऊं के पण्डितों ने किसी अज्ञात कारण से बैसाख-जेठ की सभी विवाह तिथियां अशुद्ध घोषित कर दी थीं, इसी से उसका विवाह फाल्गुन अर्थात् अंग्रेज़ी के मार्च महीने में होना निश्चित हुआ है, जैसे भी हो उसे फरवरी से पहले ही कलकत्ता पहुंचकर स्वयं अपने हाथों से अपने दहेज की तैयारियां करनी होंगी–इसी आशय का एक पत्र उन्होंने पहले भी लिखा था, पर अहल्या चुप्पी साधे ही बैठी रही ।

एक दिन अचानक एक सुनहरे मोनोग्राम छपे एयरमेल के लिफाफे को देखकर उसका माथा ठनका । उसका अनुमान सत्य निकला, पत्र सर्वेश्वर का ही था । खूब बना-बनाकर लिखे गए कठिन अंग्रेज़ी के उस पत्र में अंग्रेज़ी साहित्य के चुने-चुने शब्दों के मोतियों को बड़ी कुशलता से पिरोया गया था । लगता था लिखनेवाले ने विशेष परिश्रम से विदेशी भाषा पर अपना अद्भुत अधिकार दिखाने का यथेष्ट प्रयास किया है । 'तुम्हें पता ही होगा कि हमारे विवाह की तिथि तुम्हारे पूज्य पिताजी ने फाल्गुन में धर दी है, मुझे इसमें कुछ आपत्ति है, मैं उन्हें लिख रहा हूं कि तुम्हारे और मेरे ग्रह-नक्षत्रों को ध्यान में रखते हुए विवाह फाल्गुन में न होकर जेठ ही में होना ठीक रहेगा,' फिर नाना त्रिकोण षट्कोण खींच-खींचकर सर्वेश्वर ने अपने ग्रहों की स्थिति दिखलाकर, अपना कथन पुष्ट करने की चेष्टा की थी। 'मैं तुम्हारे पूज्य पिताजी को भी यही लिख रहा हूं, आशा है उन्हें मेरी बात ठीक ही लगेगी । विवाह कुमाऊं में वर्जित है, कुमाऊंवासियों का नहीं, हमारा विवाह कलकत्ते में होगा और बारात देहली से आएगी, और इसमें फिर कोई दोष नहीं रहेगा । तुम्हारे लिए एक सामान्य-सा उपहार भेज रहा हूं, आशा है पसन्द आएगा। तुम्हारा सर्वेश्वर ।'

'तुम्हारा,' पढ़कर अहल्या को अकस्मात सिर पर ही चढ़ आई विपत्ति का ध्यान हो आया और वह सिहर उठी ।

'आपका एक पार्सल है, मिस,' डोरीन एक पार्सल देकर चली गई। बड़ी सफाई से पैक किया गया एक छोटा-सा पार्सल था । अहल्या के जी में आया, उठाकर वैसे ही कहीं पटक दे, पर फिर उसने बिना खोले ही बक्स में डाल दिया । जिस व्यक्ति से उसे ज़रा-सा लगाव नहीं था, उसका उपहार वह क्यों ग्रहण करे–विवाह फाल्गुन में नहीं होगा, सुनकर वह कुछ समय के लिए निश्चिन्त हो गई थी। एक दिन रविवार की छुट्टी मनाने वह अपनी एक पूर्वपरिचिता मालिनी रंगनाथन् के यहां जाने को तैयार हो रही थी। मालिनी उसके साथ पढ़ चुकी थी । उसके पिता का बंगलौर में भव्य बंगला था, जिसे उन्होंने पुत्री को दहेज में दे दिया था। मालिनी का पति आर्मी में ब्रिगेडियर था और कांगो में उसकी नियुक्ति हो जाने से मालिनी रंगनाथन् अकेली ही अपनी सास के साथ रहती थी । उसने बड़े आग्रह से अहल्या को बुलवा भेजा था। अहल्या तैयार होकर कमरा बन्द कर रही थी कि डोरीन उसे एक लिफाफा देकर बोली : 'इसे एक बाबूजी आकर दे गए हैं, मैंने पूछा था कि जवाब भी लाना होगा? बोले, पता नहीं । किसी ने उनसे चिट्ठी भिजवाई है । जवाब लाने के लिए नहीं कहा ।' लिफाफे पर पता देखकर अहल्या कांप गई–मल्लिका मौसी की ही लिखावट थी, उन्हीं के बड़े करीने से घुमाकर लिखे गए शब्द थे और स्पष्ट घुमावदार लिखावट में कहीं भी सन्देह के लिए स्थान नहीं था । अहल्या ने चिपका हुआ लिफाफा बड़ी उतावली से फाड़कर चिट्ठी निकाली ।

'खुकूमनी,

'जानती हूं कि तुम मुझसे बहुत नाराज़ हो पर बड़े कष्ट में हूं–क्या आ सकोगी ? साथ में किसी को मत लाना। साउथ परेड में एक गोवानीज़ दांत का डॉक्टर है, डॉक्टर मिरण्डा । उसकी दुकान की छत लाल खपरैल की है, और सहन में कागज़ी फूल का बड़ा-सा पेड़ है, उधर से बाईं ओर एक गली है जिसके पहले मकान पर एक बोर्ड लगा है, 'बी अवेयर ऑफ डॉग्स,' उसी में मैं रहती हूं। आज ही आ सकी तो मुझे बड़ी खुशी होगी ।' अहल्या दुविधा में खड़ी ही रह गई। क्या करे–एक बार जाकर वह यथेष्ट सिर-दर्द मोल नहीं ले चुकी है ! यहां क्या कर रही है अब? नहीं, वह नहीं जाएगी । चिट्ठी फाड़कर उसने फेंक दी और मालिनी के घर की ओर चल दी।

मालिनी पास ही रहती थी। अहल्या के आने का समाचार पाकर उसने अपनी सास के साथ बैठ नाना प्रकार के दक्षिणी व्यंजन बनाकर थालियों में सजा दिए थे और बरामदे में खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । दिन-भर उसने अहल्या को अपने पति की कांगो से भेजी गई शिफौन, ज्यार्जेट और सिल्क की सुन्दर साड़ियां दिखाई, कभी फौजी वर्दी में, अपनी बड़ी-बड़ी मूंछों में मुस्कराते पति ब्रिगेडियर रंगनाथन् की तस्वीर दिखाकर वह कहती : 'मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूं, अहल्या, ऐसे पति मुझे जन्मजन्मान्तर में मिलें, यही मनाती हूं । कांगो के जंगलों में भटक-भटककर मुझे चिट्ठी लिखने में एक दिन की देर नहीं करते। तेरे आने से कुछ ही देर पहले यह चिट्ठी आई, देख !' और ब्लाउज़ के भीतर से मुड़ी-मुड़ाई चिट्ठी निकालकर वह उसे दिखा, फिर ब्लाउज़ में खोंस लेती।

अहल्या अनमनी-सी, कभी उसकी बातें सुनती, कभी मल्लिका की चिट्ठी उसे फिर अनमनी बना देती । मालिनी से विदा लेकर वह कॉन्वेण्ट जाने के लिए चली, तो उसके पांव स्वयं साउथ परेड की ओर मुड़ गए । जैसी भी हैं, हैं तो वही मल्लिका माशी, खुकूमनी सम्बोधन के साथ अहल्या का सुनहला बचपन फिर मानो लौट आया । किस कष्ट में हैं, क्या पता? कहीं उसे फंसाने के लिए कोई नया जाल तो नहीं रच रही हैं ? नहीं, इतनी नीच वे नहीं हो सकती !' चाहतीं तो क्या उसी दिन उसे बांधकर नहीं रख सकती थीं ?

साउथ परेड पहुंचने तक दिन डूब गया था। डॉ. मिरण्डा की दुकान में वह कई बार स्कूल की लड़कियों को लेकर जा चुकी थी । वहां से दाई गली को मुड़ते ही उसे एक टूटा खंजड़-सा बंगला मिल गया । उसी के दरवाजे पर कुत्तों से बचने की हिदायत लिखा बोर्ड उल्टा लटक रहा था । एक एंग्लो-इण्डियन बुढ़िया, टूटी-सी कुर्सी पर बैठी कुछ सी रही थी। अहल्या ने सांकल खटखटाई, बुढ़िया चुप बैठी रही । अहल्या ने लटका बोर्ड ज़ोर से खड़खड़ाया, बुढ़िया निश्चल बैठी रही–शायद बहरी थी । खीझकर अहल्या ने पास ही घरे टीन के एक कनस्तर पर ढेला मारा । ज़ोर से टन्न की आवाज़ हुई और उस विचित्र कालबेल की टनटन आवाज़ सुनकर एक मोटी-सी औरत बाहर निकली और झल्लाए स्वर में बोली : किसी काम की भी नहीं है बुढ़िया, जा खोल दरवाज़ा, देख कोई आया है, भीतर ले आ ।' बुढ़िया का हंडा-सा सिर निरन्तर कांप रहा था । लकवे के आघात से उसके दोनों हाथ भी सिर के साथ ताल-सी देते ठक-ठक कांप रहे थे । उसकी कमर में चाबियों का गुच्छा झूल रहा था । उसी में से एक चाबी निकालकर उसने ताला खोल दिया । 'आओ,' उसकी हंसी बड़ी मीठी थी । 'डरो नहीं, कुत्ते अब कहां हैं, जब थे तब का यह बोर्ड है ।'

'क्या बातें मार रही है, अन्दर ले आ,' मोटी स्त्री ने चीखकर कहा। अहल्या ने निकट आने पर देखा, वह मोटी नहीं थी, उसका आकस्मिक मुटापा केवल उसके पेट के इद-गिर्द लिपटा था, गर्भभार से दुहरी वह बदसूरत मोटी और बेहद चिड़चिड़ी थी । 'किससे मिलना है? बीस नम्बर में नई मिसेज़ डटा आई हैं, उनसे तो नहीं मिलना है ?' 'हां,' अहल्या उसके शरीर से आती दुर्गन्ध से सहमकर पीछे हट गई । प्याज़, लहसुन और पसीने की मिली-जुली दुर्गन्ध से उसका माथा चकरा गया । इन लोगों में कैसे रह पाती होंगी मल्लिका मौसी? उनके दिल्ली का सजीला फ्लैट क्या हुआ? 'ममी,' वह फिर बुढ़िया के कान के पास जाकर चीखी, 'इसे नई मेम साहब के कमरे में ले जाओ, फिर वह 'हे भगवान्, है भगवान्' कह कभी अपनी कमर और कभी पेट में मुक्के चलाने लगी। अहल्या घबड़ाकर सीढ़ियां चढ़ गई ।

बुढ़िया अपना सिर और हाथ हिलाते उसे छोटे-छोटे कई गन्दे सीलन भरे कमरों से ले जाकर तिमंज़िली छत पर बने एक छोटे कमरे की ओर इशारा कर बोली : 'यहीं रहती हैं, अभी-अभी बाज़ार से लौटी हैं, पर्दा खोलकर देखो ।' बुढ़िया ने स्वयं पर्दा खोलकर झांका और फिर उसकी ओर देखकर बोली : 'नहीं हैं, अभी-अभी तो यहीं थीं, तुम बैठो, मैं छत पर जाकर देखती हूं, अक्सर वहां टहलती रहती हैं ।'

अहल्या भीतर नहीं गई । कमरे के बाहर ही बैठने के लिए मुंडेर रूमाल निकालकर साफ कर रही थी कि नि:शब्द पदध्वनि करती मल्लिका उसके पास खड़ी हो गई । चौंककर अहल्या ने दृष्टि उठाई, बुढ़िया उसे पहुंचाकर अपनी लंगड़ी टांगें खींचती सीढ़ियां उतर रही थी ।

'आओ, अच्छा मत आओ–यहीं बैठो तो ठीक रहेगा, वहां तो बैठने के लिए एक कुर्सी भी नहीं है और मेरे बिस्तर पर कैसे बैठोगी ?' कह बीभत्स हंसी हंसने लगीं । मल्लिका को देख एक क्षण के लिए अहल्या उस एकान्त अंधेरी छत पर बैठी ठक्-ठक् कांपने लगी।

'सोचा, तुम यहीं हो, क्यों न मिल लूं ? जेकी से तुम्हारा पता ले लिया था ।'

अहल्या ने कोई प्रश्न नहीं पूछा, कोई कैफियत नहीं मांगी । स्वयं मल्लिका ही बोलने लगी, अजीब भारी आवाज़ हो गई थी उसकी, जैसे नज़ले से गला बैठ गया हो। 'आवाज़ बदल गई है न मेरी,खुकू ?' वह फिर अपनी बीभत्स हंसी हंसने लगी।

फिर कुछ देर चुप होकर वह अहल्या के किसी प्रश्न की प्रतीक्षा करने लगी, पर अहल्या एकटक अपने पैर के अंगूठे को देख रही थी।

'दिल्ली में मुझे देखा था न? तेरा चेहरा मैं रात-भर नहीं भूल पाई थी । मनुष्य विवश होकर ही पाप करता है, स्वेच्छा से नहीं, खुकू। उस पाप की सज़ा भी यथेष्ट रूप से पा चुकी हूं–देख मेरा चेहरा ?' अहल्या ने सहमकर आंखें उठाई, क्या था चेहरे में कुछ नहीं । वैसा तो था ही । वही गाल, जिनसे वह गाल लगाकर परियों की कहानियां सुनती थी–वही आंखें थीं, जो उसके बोर्डिंग जाने के दिन वियोग के अश्रुओं से छलछला उठती थीं; वही विदेशी सेंट से महकती छाती थी, जिसमें माथा छिपाकर उसने एक बार भी अपनी जन्मदायिनी जननी का स्मरण नहीं किया था।

'कुछ नहीं, देख रही है न? हा...हा...हा ।' वह फिर हंसी, 'अभी कुछ नहीं है पर देख मेरी पलकें धीरे-धीरे झड़ रही हैं, नाक की हड्डी अब क्या वैसी नुकीली रह गई है, दिल्ली में ही इस राजरोग को मैंने पकड़ लिया था, गले में छोटी-छोटी फुसियां हुई । भागती डॉक्टर को दिखाने गई थी। उसने कहा-आश्चर्य है ऐसी सम्भ्रान्त महिला को ऐसी बीमारी ! कहने में भी लज्जा होती है–और मैंने मन ही मन कहा था–सम्भ्रान्त ना तोमार माथा । (सम्भ्रान्त या तुम्हारा सर !) दस इंजेक्शन में ही मेरे घिनौने रोग को जड़ से उखाड़ने का आश्वासन भी दिया था उसने। फिर अचानक एक दिन मेरी जांघ में एक लाल चकत्ता निकल आया, उसे दिखाने फिर पहुंची । एक हाथ भी सुन्न हो गया था। डॉक्टर ने पहले दिन कुछ नहीं बताया, दूसरे दिन घर ही पर फोन किया–अब इस रोग का इलाज़ चिता पर ही होगा खुकू-सुना कच्ची उम्र में यह रोग और जल्दी पकड़ता है, तुझे देखकर आंखें ठण्डी कर लीं–तेरे

पापा... !' वह आगे कुछ नहीं कह सकी। दोनों हाथों से मुंह ढांपकर सिसकने लगी : 'तू चली जा, खुकू, इस भयानक रोग के संसर्ग से भाग जा, इसी से मैं यहां भाग आई हूं। दो-चार दिन में पुरी या बनारस चली जाऊंगी ।' वह अचानक रुलाई के गह्वर में अभिभूत होकर मूक बैठी रही, फिर उसने अपने को संभाल लिया । 'तू सोच रही होगी, मैं यहां कैसे आ गई । जेकी की ननिहाल है यह, वह बूढ़ी उसकी नानी है और वह दूसरी उसकी मामी है

। यहां सुना कोई रिटायर्ड चीफ जस्टिस हैं, कोढ़ की होमियोपैथी की दवा देते हैं, सुनकर चली आई हूं–जेकी की नानी को भी यही रोग था, उन्हीं की दवा से ठीक हुआ । पर अब मुझे कोई उम्मीद नहीं है, आज उनके पास गई थी। कह रहे हैं भीतर ही भीतर रोग बहुत फैल गया है । यह देख... ।' कहकर उसने कुछ पीछे हटकर अपने पैर की अंगुलियां चप्पल से निकालकर आगे बढ़ा दीं । 'ईश्वर के न्यायालय में झूठी गवाही नहीं चलती । भोग रही हूं, इसी से भोग रही हूं,' वह स्वयं बड़बड़ाने लगी।

कितना पाप बटोरा है, खुकू, आज तुझसे कहकर कितनी शान्ति मिल रही है, आज खूब गहरी नींद सोऊंगी । अपना नाम बदलकर मिसेज़ डटा रखा, तब ही से पाप की गठरी भारी बनने लगी-तू सोच रही होगी, मौसी ने किसी डटा से विवाह कर लिया यही न ?' वह ज़ोर से हंसी । अहल्या को अंधेरे में उसका चेहरा स्पष्ट-सा ही दिख रहा था। किसी से विवाह नहीं किया मैंने, कलकत्ते का मकान बेच दिया था उसी से नया फ्लैट दिल्ली में बनवाया था । जब बनाया था तब कोई पाप की भावना नहीं थी खुकू, सोचा था

काम करनेवाली लड़कियों के लिए छोटा-सा होस्टल खोलकर दिन काट लूंगी, पर...' एक लम्बी सांस खींचकर, वह फिर कुछ देर चुप रह गई । 'भाग्य का लिखा तो पूरा भोगना था, लड़कियां आकर रहने लगीं । पहले ही दिन से कुछ माथा ठनका । मुझे उन दिनों नित्य सन्ध्या को कुछ हरारत हो आती थी इसी से अपने कमरे ही में रहती थी, लड़कियां हंसती-बोलती तो मैं अपना द्वार बन्द कर लेटी रहती, नीचे क्या हो रहा है इसका ध्यान कभी नहीं रखा । एक दिन सब लड़कियां घूमने गई थीं । एक जवान फौजी अफसर धड़धड़ाता मेरे कमरे में चला आया, बोला, 'आज आपका होस्टल बन्द है क्यों? मुझे अपने एक अत्यन्त समृद्ध विदेशी मित्र के लिए इन्दु बनर्जी की आवश्यकता थी ।'

'मैं स्तब्ध होकर पहले तो उसे देखती रही, फिर मैंने उसे बिना मेरी अनुमति के कमरे में चले आने के लिए डांट दिया । वह जोर से हंसा : 'आप लोगों के कमरे में आने के लिए अनुमति की भी आवश्यकता होती है क्या? आप लोगों को तो हमारे कदम चूमकर हमें भीतर बुलाना होता है'–वही पृष्ट युवक मुझे मेरे पेशे का प्रथम पाठ पढ़ा गया । सोचा, क्यों न मैं यही पेशा अपना लूं? मैं प्रौढ़ा थी, किन्तु सुन्दरी रूपसियों को अपने छलनामय संरक्षण में रखकर समृद्ध बन सकती थी। जो लड़कियां अब तक मुझे ठग रही थीं उन्हें यदि मेरे होस्टल में रहना होगा तो मुझे कमीशन भी अनिवार्य रूप से मिलना चाहिए, नहीं तो मैं उन्हें ब्लैकमेल कर दूंगी । लड़कियां सब अच्छे घरों की थीं, धीरे-धीरे मेरा कारोबार जम गया । मुझे कुछ नहीं करना होता था–बिन्दादीन खाना-पीना देखता था, दो आया थीं, सब ठीक ही चल रहा था कि इस निगोड़े रोग ने धर पकड़ा । लड़कियों को पता लगा तो भड़क गईं । जेकी ने मुझे सहसा उबार लिया, फ्लैट बेचकर कुछ रुपया मिला, कुछ बैंक में पड़ा है, दिन कट ही जाएंगे। कल मन नहीं माना । सोचा, क्यों न खुकू को एक बार देख लूं। लगता है ओल्गा के बच्चा हो गया है-...' वह अचानक हड़बड़ाकर उठ बैठी । नवजात शिशु के क्रन्दन की ध्वनि से टूटा बंगला गूंज उठा । 'देखूं चल के ।' मल्लिका को चलने को उद्यत हुई देख अहल्या भी उठ गई, 'मैं भी चलूंगी अब, बहुत रात हो गई है।' वह जिस मल्लिका मौसी के

गले में दोनों बांहें डाले बिना कभी नहीं बिछुड़ती थी, उससे साड़ी बचाती सीढ़ियां उतरती गेट खोलकर सड़क पर चली आई । मल्लिका आकर गेट पर खड़ी हो गई थी। एक रंग-उतरी रेशमी साड़ी के आंचल को वह बड़ी घबराहट से अपनी कलाई पर कभी लपेट रही थी और कभी खोलकर अहल्या से कुछ कहना चाह रही थी।

'मैं अब चलती हूं, यहां से बहुत दूर है... ।' अहल्या ने एक बार भी उसे मौसी कहकर नहीं पुकारा । मल्लिका की आंखें डबडबा उठीं । भागकर अपनी खोई हुई थाती को हृदय से लगाने को वह व्याकुल हो उठी । अंधेरे में भी अपने पिता से उसकी आकृति कितनी मिल रही थी ।

'परसों तक मैं काशी चली जाऊंगी,' मल्लिका का स्वर कांप रहा था ।

'ईश्वर तुम्हें सुखी रखे खुकू,' दोनों हाथों में मुंह ढांपकर वे बिजली-सी तड़पकर, मुड़कर जल्दी-जल्दी भीतर चली गई ।

तीन-चार दिन तक अहल्या को मल्लिका की रोगजीर्ण भयावनी आकृति सहमाती रही । उसी ने उसकी माता का सर्वस्व हरण किया था। उसी ने उसके पिता के गृह को विलास का अड्डा बनाया था । आज अपने कलंकित जीवन को अपने कलुषित पेशे से और भी काला कर वह ऐसे भयावने रोग के चंगुल में फंस गई थी, फिर भी अहल्या उसे भुला नहीं पा रही थी। मल्लिका के साथ उसके बचपन की सुनहरी स्मृतियां बंधी थीं । उसकी जिस अंगुली को पकड़-पकड़कर अहल्या बाल्यकाल की अली-गलियां पार करती यौवन की देहरी पर खड़ी हुई थी, वही अंगुली अब पतझड़ के सूखे पत्ते-सी झड़ने को तत्पर थी । कई बार उसका जूठा पान खाने को वह बचपन में मचल उठती थी और बड़े स्नेह से आधा कुतरा पान वह उसे खिला देती थी । आज उस जूठन की स्मृति से उसका अंग-अंग सिहर रहा था । यदि अब उसे भी वही रोग हो गया तो? कहीं भी खुजली छूटती, तो वह टार्च जला-जलाकर अंगुलियों को देखने लगती। कभी छोटी-सी फुंसी उसकी नींद हराम कर देती। बार-बार शरीर की कोमल त्वचा को नोच-नोचकर वह देखती–कहीं अंग सुन्न तो नहीं पड़ रहा है। कभी आईना लेकर देर तक अपना चेहरा देखती रहती । मल्लिका के महारोग के भय ने उसे बुरी तरह सहमा दिया था ।

इधर कर्नल की चिट्ठियों पर चिट्ठियां आने लगी थीं : यदि वह स्वयं नहीं आई, तो अपने काम का हर्जा कर उसे लिवाने आना पड़ेगा । चीन के हमले से उसका बाज़ार मन्दा पड़ गया था । सिंगापुर का भी उसका कारोबार घाटे का धक्का पाकर बुरी तरह धीमा पड़ रहा था। सर्वेश्वर ने विवाह जेठ में रखने के लिए लिखा था, पर फिर भी कुछ तैयारियां तो करनी ही होंगी। वह पत्र पाते ही अविलम्ब चली आए । अहल्या असमंजस में पड़ गई । अपने विवाह का प्रसंग स्वयं उठाने में उसे संकोच हो रहा था, फिर कलकेत्ता जाने में अब उसे कोई उत्साह नहीं रह गया था । घर के नौकर-चाकर उसके आने से बहुत प्रसन्न नहीं होते थे। गृह में कर्नल की उपस्थिति नहीं के समान थी। घर लौटने पर वह कभी बेहद चिड़चिड़ा बन जाता था । दौलत, अमिता सब अपने घर-संसार में ही डूबी रहती थीं ।

नौकरी में कम से कम उसके ऊबने का प्रश्न तो नहीं उठता था–कभी वह लड़कियों को पढ़ाती, कभी उन्हें लेकर घुमाने चली जाती और कभी अपने कमरे में उनकी कापियां जांचती रहती। । सर्वेश्वर का एक और पत्र आ गया था । पिछले पत्र से दूसरा पत्र कुछ अधिक सरस बनाने की चेष्टा की गई थी, पर भाषा में भी पत्र लेखक का ओछा स्वभाव पानी में तेल-सा तैर उठा था :

'आशा है, मेरी भेजी अंगूठी तुम्हें पसन्द आई होगी । पन्ना, जैसा कि तुम्हें पता होगा, अपने मूल्य और रंग के लिए प्रसिद्ध है, तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि इस छोटे-से पत्थर के टुकडे के लिए मुझे सात सौ का मूल्य चुकाना पड़ा, किन्तु ईश्वरकृपा से मुझे इन पत्थरों का यथेष्ट ज्ञान है और गुणी से गुणी जौहरी को भी मैं मात दे सकता हूं। मैंने इसे परखकर ही खरीदा है, और पूरा विश्वास है कि एक बार तुम्हारी सुन्दर अंगुली पर चढ़ते ही यह तुम्हारे भाग्य के घोड़े की बागडोर संभाल लेगा । तुम्हारा अनिष्ट स्वयं ही कट जाएगा।' उसका अनिष्ट एक ही बात से दूर हो सकता था, यदि अंगूठी भेजनेवाला स्वयं ही उसके मार्ग से हट जाए। क्यों न उस अंगूठी को एक बार पहनकर ही देख ले ? मल्लिका मौसी का नीलम खो गया था और कितनी सारी विपत्तियां उन पर एक साथ आ पड़ी थीं । जिस दिन अंगूठी खोई, उसी दिन गुसलखाने में फिसलकर उनके पांव की हड्डी टूट गई थी; पापा को रक्तचाप का भयानक दौरा पड़ा था; उनके हाथ की घड़ी को चुराकर उनका नेपाली नौकर कहीं भाग गया था, क्या पता वही खोया नीलम अपने साथ उनके सुख को भी सदा के लिए हर ले गया हो !

रात को एकान्त में बक्स खोलकर अहल्या ने पार्सल निकाला । बड़े यत्न से की गई पैकिंग के ताने-बाने खोलकर उसने मखमली डिबिया निकालकर खोली । चौकोर पन्ना की दर्शनीय अंगूठी के साथ उसके मूल्य का टिकट भी जान-बूझकर ही रहने दिया गया था । भेजनेवाले का ओछापन रह-रहकर अहल्या को डंक मार रहा था, पर फिर भी आभूषण के प्रति उसका स्त्रीसुलभ प्रेम उस डंक के आघात को भूलकर रह-रहकर जाग्रत होता जा रहा था। उसने अंगूठी अपनी अंगुली में पहन ली और पैकिंग के काग़ज़ को बटोरकर कूड़े की टोकरी में डालकर लेट गई । लेटे ही लेटे वह सोच रही थी कि कल लड़कियां उसकी नई अंगूठी देखते ही प्रश्नों की झड़ी लगा देंगी। ऐसी बातों में उनके नन्हें दिमाग बड़े तेज़ थे । अचानक उसकी अंगुली में नई अंगूठी का आविर्भाव उन्हें कभी चुप नहीं रहने देगा । हुआ भी ऐसा ही, लड़कियों ने उसे घेर लिया : 'मिस, आपकी इंगेज़मेंट रिंग है न ! वाह-वाह, हमें मत बनाइए, आज तक आपने कभी अंगूठी नहीं पहनी, हमें सब पता है। ' अहल्या उनकी बातों का हंस-हंसकर खण्डन करती रही, किन्तु उसी दिन कर्नल उसे लेने आ गया । ज़िद्दी लड़की को खींचकर ले जाने के लिए उसे स्वयं आना पड़ा । अहल्या चाहती, तो पिता के शासन और आदेश की अवहेलना कर वहीं रुक सकती थी, किन्तु मरा हाथी अभी भी सवा लाख का था। कर्नल की कठोर मुद्रा और लाल-लाल आंखें देखकर उसे कुछ कहने का साहस न हुआ ।

‘तुम अपने पिता को कुछ दिन और जिलाना चाहती हो, तो उन्हें कभी क्रोध में न आने देना । क्रोध ही कभी उनका यमराज बनेगा,’ डॉक्टर ने उससे कहा था।

‘मेरी पुत्री का विवाह निश्चित हो गया है,' मदर के ऑफिस से कर्नल का कण्ठस्वर गैलरी तक गूंज गया : ‘अब उसे मैं अपने साथ ही ले जाऊंगा। ’

‘हमें बड़ी खुशी है कि पाण्डे...,’ मदर ने उसे दूसरे ही दिन जाने की अनुमति दे दी ।

तीस

'दिल्ली से मुझे कुछ खरीदारी भी करनी है । सोचता हूं, तुम्हें पहले कलकत्ता गौरमोहन के पास छोड़ दूंगा। '

'मैं अकेली जा सकती हूं, पापा । आप दिल्ली हो आइए,' अहल्या नम्रता से कर्नल के प्रत्येक कठोर आदेश के आघात को झेल रही थी। 'एक सेकेण्ड यहां कार रोकेंगे पापा? मुझे किसी से मिलना है।'

अहल्या उसी टूटे जंगलवाले मकान के पास कार खड़ी करवाकर उतर गई । सन्ध्या के आवरण में छिपा बंगला उतना भयावना नहीं लगा था । आज खंडहर से बंगले के अहाते में उसी टूटी कुर्सी पर जेकी की नानी अपने ठूंठ-से नाखूनों पर पालिश कर रही थी । अहल्या को टेढ़ी काकदृष्टि से देखकर वह उठकर गेट तक आ गई । बहुत दिनों बाद उसके बंगले में किसी की कार खड़ी हुई थी । 'आओ आओ, मिसेज़ डटा तो परसों ही चली गई । मैंने तो बहुत कहा, एक बार इलाज़ जमकर करा लो, पर मानी नहीं । यह बीमारी क्या सहज में पल्ला छोड़ती है ?'

'ठीक है, मुझे उन्हीं से मिलना था।'

अहल्या कार में बैठ गई। 'कार आई, इजैबेल, डिकी, ज्यॉर्जी कार आई, मोटर गाड़ी, जल्दी आओ !' एक सिर मुंडा, रंग-उड़ी नीली जीन की हाफपैण्ट पहने सात-आठ साल का एंग्लो-इण्डियन लड़का, अपनी बहन और भाई को चीख-चीखकर बुलाने लगा । देखते ही देखते, उस घिनौनी बस्ती के बिना बाप के आधे दर्जन बच्चों ने अहल्या की मोटर को घेर लिया । दो-तीन साहसी दुर्दान्त लड़के, कार की हेडलाइट पर बड़े स्नेह से हाथ फेरने लगे। एक उचककर मडगार्ड पर बैठ गया । इजैबेल अपनी बहती नाक को सुड़कती कार के कांच से सटाकर, कर्नल को घूरने लगी ।

'ऐसी गन्दी बस्ती में तुम्हें किससे मिलना था...ए छोकरी हट भाग,' कर्नल ने झल्लाकर कार स्टार्ट कर दी । हड़बड़ाकर मडगार्ड से दनदनाते एग्लो-इण्डियन लड़के ज़मीन पर टपकने लगे ।

'आखिर कौन हैं यह मिसेज़ डटा ?'

पर अहल्या मौन बैठी रही। पिता के प्रश्न का उसके पास कोई उत्तर नहीं था । कर्नल ने अहल्या के अकेली कलकत्ता जाने के प्रस्ताव का समर्थन न किया । स्पष्ट था कि वह अब उसे अकेली छोड़ने में विश्वास नहीं करता था। गौरमोहन बाबू की देखरेख में उसे छोड़कर वह दिल्ली चला गया ।

'उतने बड़े बंगले में तुम अकेली कैसे रहोगी? मैंने गौरमोहन से कह दिया था, तुम्हें उसके यहां तीन-चार दिन ही रहना होगा ।'

गौरमोहन काका के यहां अहल्या कई बार पहले भी रह चुकी थी । उनके विराट जमींदारी प्रासाद का एक-एक कमरा उसका जाना-पहचाना था। रसोईघर के दालान में बैठकर बीसियों नौकरानियां बड़ी-बड़ी रोहू मछलियां साफ करती कांव-कांव मचाये रहती थीं । एक ओर बहुत बड़ी-सी कड़ाही में केसर, इलायची-पड़ा दूध औटता रहता था। एक बहुत बड़ा हॉल गौरमोहन बरुआ का दीवानखाना और ऑफिस था। उसी में गावतकिया लगाकर गौरमोहन लाखों का वारा-न्यारा किया करते थे। मिनट-मिनट में उनकी मुंह-लगी दासी 'चोखेर बाली' (आंख की किरकिरी) पान के सजीले बीड़े रख जाती थी । पेंचदार गुड़गुड़ी में लखनऊ का अम्बरी तम्बाकू भर, पानी के बदले गुलाब जल की कश खींचकर गौरमोहन काका 'गुड़गुड़-गुड़गुड़' करते, तो अहल्या को बड़ा अच्छा लगता, पर अब उनकी ज़मींदारी के वैभव का सूर्य अस्तप्राय था । बड़े रसोईघर का चूल्हा तोड़-ताड़कर, पार्टिशन डाल, दो कमरे निकाल दिए गए थे । उसी में एक ओर किचन और बाथरूम बनाकर, फ्लैटनुमा रूप देकर उसे किराये पर उठा दिया था । पुराने नौकर, दरबान सब हटा दिए गए थे। दीवानखाने में एक बड़ी-सी बिलियर्ड टेबल, अब भी कोने में पड़ी थी, पर गौरमोहन बाबू के फिरंगी दोगले नाती-नातनियों ने उसका कपड़ा चीर-चारकर एकाकार कर दिया था। दुलाल उन दिनों पिता के पास ही कुछ दिन के लिए चला आया था और उसी व्यक्ति की उपस्थिति से दूर रहना चाहती थी, अहल्या । पिता से चाबी लेकर वह सीधे नन्दी ही पहुंच गई । नोनीबाला को चांदी का टी सेट चुराते कर्नल ने रंगे हाथों पकड़ लिया था, इसी से उसे उसके दरबान सहित छुट्टी दे दी गई थी । पुराने महाराज, बटलर और माली को छोड़कर बंगले में कोई भी नहीं था । एकान्त दुमंज़िले कमरे में पहुंचकर अहल्या को बड़ी शान्ति मिली । तीन-चार दिन बाद कर्नल लौट आया । उसके विवाह का आयोजन उसने बड़े आडम्बर-सहित आरम्भ कर दिया था ।

'थोड़े दिनों में सोना अप्राप्य हो जाएगा, इसी से कुछ गोल्ड बार खरीद लाया हूं,' सोने की कई लम्बी-लम्बी छड़ें उसने सूटकेस से निकालकर बिस्तर पर डाल दीं । यह स्टड का सेट मेरा एक मित्र हांगकांग से स्मगल कर लाया था, सोचा सर्वेश्वर डिप्लोमेट आदमी है, ऐसी चीज़ों की कदर करेगा। ' काली मखमली डिबिया से हीरे के बटन जुगनू-से चमकने लगे । 'वहीं का कुछ सिल्क और ज्यॉर्जेट भी मिल गया–खेमचन्दानी बड़े काम का आदमी है, उसकी लड़की हांगकांग, मलाया, सिंगापुर जाती रहती है, उसी से सामान मंगवाया करता है । यह ज्यॉर्जेट तुम अपने लिए रख लो, तुम्हारी ससुराल यह सब नहीं पसन्द करेगी। पहाड़ी औरतों की पसन्द को मैं पहचानता हूं,' व्यंग्य से अचानक कर्नल का स्वर तीखा हो गया, 'वे तो साड़ियां हाथ में लेकर उसका रेशम तौलेंगी, उनके लिए यहीं से रेशमी साड़ियां खरीद लेंगे ।' कई बैजनी-गुलाबी और धानी फूल-सी हल्की साड़ियां उसने उठाकर अहल्या की ओर डाल दीं, 'एक चीज़ और मिली है,' उसने अपनी आवाज़ एकदम अवरोह की सीढ़ियों पर उतार दी, 'कह रहा था चार हज़ार की खरीद है, नैनीताल में किसी रानी ने मिट्टी के मोल बेच दिए थे, खेमचन्दानी हाल ही में नैनीताल गया था, वहीं किसी क्लब में सुना ऐसा कामचलाऊ नीलाम होता रहता है, किसी तरह बेच नहीं रहा था, पर मेरा दोस्त है

जब मैंने कहा कि मेरी लड़की की शादी है तो कहने लगा, अच्छा ले लो, जैसी तुम्हारी लड़की, वैसी मेरी, चार हज़ार के बदले मैंने पांच हज़ार दे दिए, पर चीज़ भी तो ऐसी ही है ।' सूटकेस की एक चोर जेब से कर्नल ने एक और डिबिया निकालकर उसका बटन दबा दिया, हीरे के कर्णफूलों की अनुपम जोड़ी निकालकर उसने हथेली पर रख ली ।

'अभी बहुत-सा गहना तेरी मां का भी बैंक में पड़ा है, निकलवाकर देखना होगा, फर्नीचर के लिए मैंने खेतान फर्निशर्स को कहा था, पर सर्वेश्वर बड़ा स्पष्टवादी है, उसने मुझे लिखा है कि वह प्रायः ही एम्बेसी में रहेगा, वहां उसे इन सब चीज़ों की आवश्यकता नहीं रहेगी; कहता है आपको यदि शिष्टाचार बरतना ही है तो, स्टील का फर्नीचर ही दीजिएगा, सोच रहा हूं स्पेशल ऑर्डर देकर बनवा लूंगा। । कार, फ्रिज का प्रबन्ध सब गौरमोहन पर छोड़ दिया है । रहीं और छोटी-मोटी चीजें, मुझे पूरा विश्वास है कि तुम स्वयं सब देख लोगी ।'

कटक के किसी प्रसिद्ध सुनार की माहवारी मोटे वेतन पर कर्नल एक प्रकार से बुर्के में बन्द करके रखता था । रात-रात को वह पिछवाड़े के अंधेरे कमरे में सौ वॉट का बल्ब जलाकर, बेटी के विवाह के गहने गढ़ता था । गोल्ड कण्ट्रोल को छलने के लिए कर्नल के पास एक से एक बढ़कर साधन थे । पूरी कोठी की कलर स्कीम बदली जा रही थी। शान्ति निकेतन के एक किसी छात्र को बुलाकर पूरे बरामदे में टैराकोटा किया जा रहा था । हर छत को पीले, गुलाबी और आसमानी स्प्रेवर्क से रंग दिया गया था। जयपुर के कारीगर लॉन में शिव की एक भव्य मूर्ति के निर्माण-कार्य में व्यस्त थे। ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि निकट आ रही थी, कर्नल का उत्साह बढ़ता जा रहा था। कहां से शहनाईवादक आएंगे, कहां से सबसे बढ़िया आलमगीर शामियाना मंगवाया जा सकेगा—यही सोचने में उसका पूरा समय बीत गया था । अहल्या पिता के किसी कार्य में योगदान नहीं देती थी, कभी निमन्त्रण पत्र की विभिन्न डिज़ाइन ले कर्नल उससे पसन्द करवाने आता, कभी निमन्त्रण पत्र किन्हें भेजा जाएगा उनकी सूची बनवाने । अहल्या हां-हूं में उत्तर देकर फिर मौन बैठी रहती। कर्नल पुत्री की उदासीनता देखकर बुरी तरह झुंझला उठता : 'हद है, सिवाय हां-हूं के तुम्हें कुछ नहीं कहना है ? एक सर्वेश्वर है, पराया लड़का है, फिर भी हफ्ते में तीन-तीन चिट्ठियां लिखकर मुझे गाइड करता रहता है और एक अपनी औलाद है कि अभी से पराई हो गई ।'

विवाह के थोड़े-से दिन रह गए थे । जनवासे का प्रबन्ध कर्नल के गार्डन हाउस में प्रायः हो चुका था । बारातियों के लिए तीन प्रकार के भोजन का मेनू तैयार कर टाइप कर दिया गया था । एक लिस्ट कुमाऊं के शिखा-सूत्र का विशेष ध्यान रखनेवाले पाण्डे पन्त जोशियों के लिए थी : पूड़ी-कचौड़ी, रायता, चोखे आलू, अचार-मुरब्बा आदि ! दूसरे उनसे कुछ कम आचार-विचार के बारातियों के लिए और तीसरे प्रकार के भोजन की व्यवस्था थी एकदम साहबी बारातियों के लिए। तन्दूरी मुर्ग से लेकर चण्डूखाने की सुव्यवस्था अहमद को सौंपकर भी कर्नल निश्चिन्त नहीं हो सका । रंगीन आतिशबाजियों के लिए कलकत्ता सदा से प्रसिद्ध रहा है, पर कर्नल सब चीजें सर्वथा मौलिक चाहता था । ऐटम बम और रंगीन मेहताब में भी कुछ कलात्मक नवीन प्रयोग के आदेश देकर उसने तीन सौ की

आतिशबाज़ियां ही बनवा लीं । खेमचन्दानी ने अपने विदेशी आसव का स्मगल किया पूरा खज़ाना लाकर उसके चरणों में समर्पित कर दिया । बड़े-बड़े नक्काशीदार दो पलंगों को मखमली तोशक और रेशमी रज़ाइयों से लादकर उसने एक कमरे में सजा दिया ।

बड़ी कठिनता से वह रूठी सुभद्रा को मनाकर आने के लिए राज़ी कर पाया था । दद्दा स्वयं सुभद्रा को लेकर पन्द्रह को पहुंच रहे थे–तीनों भतीजे भी आ रहे थे । अहल्या के मामा-मामी को उसने केवल शिष्टाचार के नाते पत्र लिखकर न्यौता दिया था । उन सबके आने के पूर्व वह उन्हें अपने वैभव और सुरुचि का परिचय देने को व्याकुल हो उठा । उसकी प्रभुता का मद उसे रह-रहकर उकसा रहा था । कन्यादान के कमरे में नित्य बिजली के तेज़ बल्ब लटकाकर वह स्वयं मुग्ध होकर अपनी पुत्री के दहेज को देखता रहता । एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक असंख्य उपहार जगमगा उठते, फिर भी उसे तृप्ति नहीं थी । अहल्या बसन्ती और धरणीधर के पत्र की प्रतीक्षा में विह्वल हुई जा रही थी । बसन्ती नहीं आई तो वह क्या करेगी? अभी तक उसे यह नहीं लग रहा था कि उसके विवाह की तिथि सिर पर चढ़ी आ रही है। । दौलत की मां की मृत्यु हो गई थी, रेक्सी भी वहीं था । अमिता कृष्णनगर चली गई थी । अहल्या दिन पर दिन पीली पड़ती जा रही थी । एक अजाने भय से वह स्वयं सिहर उठती । उसे पूरी आशा थी कि ताई के साथ ही बसन्ती भी अवश्य चली आएगी, पर कार से ताई और ताऊ अकेले ही उतरे, तो वह उदास हो गई ।

बाहर आकर उसने ताऊ-ताई के पांव छुए । 'बसन्ती नहीं आई ताई?' 'कहां से आती बेटी,' वह कांखती, कराहती, टेढ़ी आंखों से कलकतियावाले देवर का वैभव देखकर दंग थी । 'चल भीतर, तब बताऊं । घर तो तुम्हारा महल है पूरा, क्यों री सब तुम्हारा ही है साड़ी को घुटनों तक उठाकर ताई थमककर खड़ी हो गई ।

'हां-हां बोज्यू, सब तुम्हारा है,' कर्नल ने हंसकर कहा, 'चलो, भीतर चलकर सुस्ता लो । फिर संभालो सब काम-काज । मुझसे तो कुछ नहीं होने का ।'

'और क्या लला, मज़ाक है बिटिया का बाप बनना और फिर तुम्हारे समधियानेवाले तो मेरे देखे हैं। बड़े सांहबी दिमागवाले हैं । सबका हाथ-मुंह धुलवाना पड़ेगा ।'

कर्नल के समधी को वे अभी क्षमा नहीं कर पाई थीं, 'आने तो दो ससुर को, देखो कैसी-कैसी गालियां गाती हूं !' भीतर जाकर सुभद्रा आंखें फाड़- फाड़कर अपना कमरा देखती रही । जैसे मोटे रेशम के पर्दे लटक रहे थे, वैसे रेशम का लहंगा तक वह बसन्ती को नहीं दे पाई थीं। जहां देखो वहीं झकाझक बिजली के लट्टू लटक रहे थे । चादर ऐसी सफेद और चिकनी थी कि अपने पहाड़ की बिवाई से फटे पैर रखने में भी सुभद्रा झिझक रही थी, और अहल्या को तो देखकर लग रहा था, छोकरी का रूप फटा पड़ रहा है ।

ठीक ही तो है, ऐसी कन्या को देखकर धूर्त शिरोमणि के लोभी मुख में पानी क्यों नहीं भरता ! ईर्ष्या से एक फुफकार-सी ज़हरीली सांस छोड़कर वह बिस्तर पर बैठ गई–देवर का वैभव देखकर उसके हाड़-मज्जा तक जल-भुनकर खाक हो गए ।

'ताई, आपके लिए पक्का खाना बनवा दूं ? हमारा महाराज तो खाली धुली-धोती पहनकर खाना बनाता है, बुला दूं ?' अहल्या ताई को किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसका विशेष ध्यान रख रही थी।

'अरी कुछ भी बनवा ले, बस दही में आटा माड़ने को कह देना, तेरे ताऊ ज़रा नमक-मिर्च मन्दा खाते हैं ।' अहल्या महाराज को रसद निकालकर दे आई, फिर ताई के पास आकर बैठ गई । वह उसे ताईरूप में कम मानती थी, बसन्ती की मां के रूप में अधिक ।

'ताई, बसन्ती क्यों नहीं आई, आपने कुछ बताया ही नहीं ?'

'अब क्या कहूं बिट्टो,' ताई की पहाड़-सी छातियां, सांसों के भूकम्प से डोल उठीं, 'राजू के मरने की ख़बर आई थी, सबने श्राद्ध तेरहवीं भी मना ली। आज कोई बीस दिन हुए, भैया के पास तार आया कि चीनियों ने जो कैदी छोड़े हैं उन्हीं में वह भी मिल गया है। भागते-भागते देहली गए। कहां-कहां दौड़-धूप की। पता लगा, पांच-दस दिन में पहुंच जाएगा। आ तो गया, भगवान् करे, अब उसके पैर में कांटा भी न गड़े, पर सुना बहुत बीमार रहा, हड्डी-हड्डी रह गया है । छाती में गोली लगी थी, उसी का एक-आध टुकड़ा कहीं रह गया है । कुछ दिन देहली रहा, फिर बसन्ती के दूल्हा ले गए लखनऊ; फिर उसने रट लगा दी कि दादी के पास जाऊंगा । अब वहीं है । बसन्ती-धरणीधर की चिट्ठी आई थी, अब पहले से बहुत अच्छा है, पर सुना अभी भी टुकड़ा निकला नहीं । मैंने तो भतेरा कहा वसुली से कि तू भी चल, मुझे भी सहारा हो जाएगा। पर छोरी मानी नहीं ।'

ताई के खान-पान और रहने की व्यवस्था का स्मरण अहल्या एकाएक भूल गई । जिस व्यक्ति की मृत्यु के समाचार को उसने कभी भी सत्य मानकर नहीं स्वीकार किया था, वह सचमुच लौट आया था । किन्तु उसके प्रत्यावर्तन का उसके लिए अब क्या महत्व था! एक बार भी उसने स्वप्न में उसके सामीप्य की कामना की होती, तो वह दहकते अंगारों में भी कूद सकती थी । एक बार भी उसे पाने के लिए बांहें फैलाई होतीं, तो वह स्वर्ग के सिंहासन से भी भागी आती, किन्तु वह क्यों उस व्यक्ति के लिए व्याकुल हो उठी थी। कौन लगता था वह उसका?

रात-भर वह अपने बिस्तर पर छटपटाती रही, वह क्यों लौट आया । जिसके लौटने की उसने मन ही मन न जाने कितनी मनौतियां मान डाली थीं, उसी के लौटने पर वह क्षुब्ध क्यों हो उठी थी।

ताई के आते ही विवाह की तिथि का सामीप्य और भी समीप लगने लगा। न जाने कितने पीढ़े और पटले उन्होंने पीले रंग से रंग डाले थे और न जाने कितनी धोतियां! अपनी ही उमंग में संस्कार-गीत गाती ताई कभी कुछ काम फैला लेतीं, कभी कुछ । अहल्या की मामी का ऑपरेशन हुआ था, इसी से वे नहीं आ पाई थीं, पर उसके सरल स्वभाव के मामा अपना पिछला समग्र बैर-भाव भुलाकर भानजी के लिए पूरा भात लेकर आ गए थे । अहल्या को देखकर उनकी आंखों में आंसू छलक आए, उनकी लाड़ली बहन नन्दी की पुत्री का स्नेह ही उन्हें कलकत्ते तक खींच लाया था । उसे देखकर अपनी तापसी बहन की स्मृति

उन्हें विह्वल कर गई । आज बहन होती तो क्या उनको सामान्य- से शिष्टाचार का अर्घ्य देकर ही टाल देती?

अहल्या अधिकतर अपने कमरे में बैठी रहती । चाबियों का गुच्छा उसने ताई को सौंप दिया था, और उस गुच्छे के ताई के कमर में लटकते ही ताई के कठोर स्वभाव में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था। अपना पूरा भण्डार जब लल्ला ने इतनी आत्मीयता से सौंप दिया, तो वे क्या पराई गाय को गोदान कर डालें । हलवाई रसद मांगता, तो वे तौल-तौल कर हर छटंकी का लेखा-जोखा रखतीं । कल ही तो इतनी चीनी ले गया था, क्या हुई? बालूशाहियों में कहीं इतना मोयन पड़ता है? बूंदी के लड्डू में बादाम पड़ते तो उसने कहीं नहीं देखे, फिर इतने बादाम का क्या होगा? क्या चक्की में पीसे जाएंगे? 'घर की मालकिन आज तक नहीं थीं, इसी से मेरे लल्ला को लूटते रहे हरामखोर, अब मैं देख लूंगी एक-एक को !' वह अपने पति से कहती और अपने कमरे में पड़ी-पड़ी अहल्या सुनती रहती। । जिस ताई को देखकर कभी उसके हाड़ जल उठते थे, वही ताई उसे अब न जाने क्यों बहुत भली लगने लगी थी! उसके सीने में सिर रखकर वह सबकुछ कहने को व्याकुल हो उठी । ताई की आग उगलती ज़बान ऐसी आग उगलती थी, जो दहकती थी, जलाती नहीं थी। जितनी ही शीघ्रता से उन आंखों में ईर्ष्या की लाली के डोरे तनते उतनी ही तीव्रता से वे वात्सल्य की स्निग्धता से तरल भी हो उठती थीं । ताई का स्वभाव स्वार्थी था, किन्तु उस स्वार्थ की सिद्धि के लिए वे जान-बूझकर कभी किसी का गला काटना नहीं जानती थीं । अहल्या को अकेली देखकर रात को सब काम निबटाकर ताई उसके कमरे में पहुंच गईं । अंधेरे कमरे में मुंह लपेटकर अहल्या औंधी पड़ी थी।

'ले मरी, यह भी कोई तरीका हैगा, होनेवाली दुल्हन खस, केसर, चन्दन का उबटन करे है, ये मरी ऐसे पड़ी है जैसे सांप सूंघ गया हो । क्यों री, क्या जी ठीक नहीं है, या मायके का मोह अभी से सता रहा है ?' बड़े प्यार से अहल्या का चेहरा उठाकर ताई ने अपनी ओर फिराया । अहल्या बुझी-बुझी-सी पड़ी थी।

इकतीस

ताई का स्पर्श पाते ही अहल्या हड़बड़ाकर उठ बैठी। 'बिट्टो,' बड़े लाड़ से ताई ने उसे अपनी गोदी में खींच लिया और उसके रूखे बालों में अंगुलियां फेरने लगीं ।

'एक बात पूछूं ?'

'क्या, ताई ?'

'देख, बिट्टो, जैसी मेरी वसुली ऐसी तू, सच बताना, इस शादी से क्या खुश नहीं है ?'

अहल्या झूठ नहीं बोल सकी, अपनी आंखों को पलंग की पाटी पर गड़ाए चुप रह गई ।

ताई को उनका मनचाहा उत्तर मिल गया। एक लम्बी सांस खींचकर उन्होंने बमगोला फिर फेंका ।

'हमारी वसुली के रिश्ते की बात इनसे चली थी, सुना लड़के को वसुली पसन्द भी थी, पर इन्हें रिश्ते से अधिक चिंता थी पोटली की। जानते थे कि क्या पिद्दी, क्या पिद्दी का झोल ! क्या हमारी हैसियत थी, क्या हम दे पाते? कई दिनों तक अला-फलां कहते हमको टहलाते रहे, और एक दिन टके-सा जवाब दे दिया । खैर, ईश्वर तुझे सुखी रखे । एक बेटी नहीं, तो दूसरी सही, पर तुझे देखकर तो मैं हैरान हूं–इतना दुख किस बात का ले लिया है तूने? शादी ठहरने पर तो लड़कियां फुरमती फिरती हैं ।'

'कुछ नहीं ताई,' अहल्या आंख उठाकर ताई की ओर देख नहीं पा रही थी ।

'वसुली की चिट्ठी आई है आज, अब तो राजू पहले से बहुत अच्छा है । कमरे में थोड़ा बहुत चल-फिर भी लेता है। अम्मां का अभी भी वही हाल है, सुना तेरी ही रट लगाए हैं कि मेरी बहू को बुला दो, बेटा तो आ गया, बहू भाग गई–न जाने कहां से उसे वह सनक लग गई ।'

एक गहरी सांस खींचकर सुभद्रा ने कुशल मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से अहल्या को बींध दिया। उसका चेहरा देखकर संशय के लिए कोई स्थान नहीं रहा । धरणीधर ठीक कह रहा था, उसकी अपनी लड़की तो बमभोले-भोलानाथ थी, पर दामाद था हीरे का टुकड़ा । कलकत्ते से लौटते ही, राजू का चीनियों की कैद में होने का समाचार आया, तो धरणीधर ने कहा था : 'अम्माजी, आप अभी भी हमारी सालीज्यू से राजू के रिश्ते की बात चलाइए । सर्वेश्वर जाय भाड़ में । एक ही बदनामी तो होगी कि लगा-लगाया रिश्ता तोड़ दिया । मैं आपको लिखकर देता हूं कि अगर हमारी सालीज्यू ने इस रिश्ते को नामंजूर किया, तो मैं अपनी मूंछें मुड़वा दूंगा !' वसुली छोकरी ने हंसी-मजाक में यह कहकर बात उड़ा दी थी : 'हाय राम, मूंछों में एक बाल नहीं, और मुड़वाएंगे क्या खाक-पत्थर । इतना अच्छा लड़का कक्का को मिला है और कैसी घर-फुक्का राय दे रहे हैं!'

ठीक कह रहा था धरणीधर, आखिर डॉक्टर आदमी है, दिन-रात चीर-फाड़कर आदमियों के दिल-फेफड़े देखता रहता है। राजू का नाम लेते ही छोकरी कैसी लाल पड़ रही थी, जैसे ब्याह की दुल्हन हो।

'अहल्या,' ताई ने अपना अमोघ अस्त्र चलाया : 'सच-सच बताना, बिट्टो–मैं तेरी मां से बढ़कर हूं–राजू से तेरा ब्याह कर दिया जाए, तो कैसा हो ?' अहल्या को जैसे बिजली का तार छू गया ।

'नहीं, ताई, कैसी बातें कर रही हो ?' वह प्रस्ताव मात्र से सिहर गई । निमन्त्रण पत्रों में सर्वेश्वर के साथ उसका नाम गूंथकर मुंशीजी न जाने कहां-कहां को भेज चुके थे । सर्वेश्वर को भेजी पन्ने की अंगूठी की सील-मुहर उसकी अंगुली पर कब की लग चुकी थी । तीसरे दिन उसकी बारात पार्टी कलकत्ता पहुंच रही थी। न जाने कितने ट्रंक काल आ चुके थे !' किस स्टेशन पर उन्हें सुबह की चाय मिलेगी, कहां पर राजा जलपान करेंगे, उनके विदेशी मित्रों के लिए क्या विशेष प्रबन्ध होगा—आदि-आदि ।

'अहल्या बेटी,' ताई अचानक उठ गई, 'मन का मेल न हो तो शादी-ब्याह ज़िन्दगी-भर का पाप है । अपनी मां को देख, आज अभागी होती तो क्या न चाहने पर भी तुझे जिस किसी के गले ढोल-सा बांध दिया जाता ! धरणीधर ने मुझसे कहा था : अम्मा, अहल्या को यहां भेज देना, फिर मैं निबट लूंगा । पर तू क्या मोम-कांच की गुड़िया है, जो जहां चाहे गोदी में उठाकर ले जाए! पर मैं तो कहती हूं, अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, तीन दिन में आदमी चाहने पर आजकल सात समुद्र पार भी उड़ सकता हे। देख बिट्टो !'

ताई ने अपनी भूधर-सी देह को अहल्या के पास सटा लिया : 'मेरे पास कुछ रुपये घरे हैं, तू कल चुपचाप चली जा । एक बार तेरे फेरे फिर

जाएंगे, फिर क्या डर ? बदनामी होगी यही न, होने दे । इस ऊंचे ब्राह्मणकुल में जाकर किसी बहू की आज तक बदनामी नहीं हुई। तू चली जा, मैं सब भुगत लूंगी।'

'नहीं, ताई, नहीं-नहीं, अहल्या के हृदय की दुर्बलता उसके अंग-अंग में व्याप्त हो गई ।

ताई लौह स्तम्भ-सी अडिग खड़ी रहीं।

'पगली लड़की, जब तू ही नहीं ताई, नहीं ताई, करती रहेगी, तो फिर किसे हिम्मत रहेगी ? तू सोचती होगी कि ताई को कुछ पता नहीं । अरी, ऐसी भोली नहीं है ताई, तू क्या सोचती है, मैं सर्वेश्वर के साथ तेरे फेरे देखने आई थी। पीढ़े रंगती थी, मिठाई बनवाती थी, और बार-बार मेरा मन यही कहता था : सुभद्दो, यह ब्याह नहीं होने का, जो काम हाथ में लूं उसी में दाई आंख फड़के, कभी मरी नाक छींकों से फटी पड़े...ले उठा, हाथ-मुंह धो और ले ये रुपये संभाल । अपने बाप की बेटी होगी तो कल इस घर में तुझे न देखूं ।' ताई ने दायें-बायें अहल्या के कान में अपना सिद्ध मन्त्र फूंक दिया ।

दूसरे दिन अहल्या चाय की मेज़ पर नहीं आई । 'क्या बात है अहल्या नहीं है आज ?' कर्नल ने कहा तो ताई बोलीं : 'सुबह कहीं घूमने चली गई, लल्ला, कह रही थी कि किसी

सहेली से मिलने जाना है ।' दिन-भर कर्नल शामियाना, बैण्ड और शहनाई की उलझनों में उलझा रहा । दिन डूबे घर लौटा तो सुभद्रा बरामदे में बैठी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

'क्या हो गया, बोज्यू, खैरियत तो है ?'

घबड़ाकर कर्नल ज़मीन पर ही बैठ गया ।

'यह देखो, तुमसे हमेशा कहती थी, लल्ला, लड़कियों को बहुत पढ़ाना ठीक नहीं, अब क्या मुंह दिखाओगे समधी को ?' कुर्सी पर बुत से बैठे पति की गोद से गुड़ी-मुड़ी एक चिट्ठी उठाकर सुभद्रा ने कर्नल की ओर फेंक दी ।

'धीरे-धीरे बोज्यू,' कर्नल नज़दीक आकर बोला, 'कुली सब तुम्हें ही देख रहे हैं ।'

'कब तक गू ढकोगे, लल्ला, छोकरी तो तुम्हारी मूंछें नीची कर गई,' सुभद्रा सुबकती जा रही थी।

अहल्या की ही चिट्ठी थी ।

'पापा मुझे क्षमा करें, मैं किसी भी तरह इस विवाह के लिए अपने चित्त को राज़ी नहीं कर पा रही हूं, मुझे ढूंढ़ने की कोई चेष्टा न करें–अहल्या !'

पहले कुछ देर तक कर्नल क्रोध से बौखला गया, कनपटियों पर उसका बढ़ता हुआ रक्तचाप अपने कड़े हथौड़े चलाने लगा। वह अब क्या करेगा–बारात चल पड़ी होगी। समधी को, सर्वेश्वर को वह क्या कहकर समझाएगा, अहल्या को कहां-कहां ढूंढ़े...वह बंगलौर भी भाग सकती थी, अपनी मां के पास एक बार हो आई थी, क्या पता वहीं चली गई हो? 'जैसे भी हो पहले बारात रोकनी होगी बोज्यू,' वह ट्रंक कॉल करने गया। फोन किया तो सर्वेश्वर ही मिला ।

'बड़े मौके से आपका फोन आया, आपने थोड़ी देर में किया होता, तो हम चल पड़ते । कहिए क्या आज्ञा है । बस हम चल ही रहे हैं,' उत्साह और आनन्द फोन की स्वरलहरों में स्पष्ट गूंज रहा था।

'यही कह रहा था कि अगर हो सके, तो अभी न चलो–इस ट्रेन से नहीं, कर्नल का हाथ बुरी तरह कांप रहा था ।

'कहते क्या हैं, रिज़र्वेशन हो चुका है, मेरे सारे विदेशी मित्र, बाबूजी सब यहीं पर खड़े मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं–क्यों, इस ट्रेन से आने में आपको कैसी आपत्ति है ?' भावी जामाता का उग्र स्वर फोन पर और भी उग्र लग रहा था ।

'किसी भी ट्रेन से मुझे कोई आपत्ति नहीं थी, पर अहल्या एक चिट्ठी लिखकर सहसा कहीं चली गई। मुझे नहीं, उसे इस विवाह में आपत्ति है। एक बार जाने पर वह सहज में नहीं लौटेगी, मैं उसे जानता हूं।'

लग रहा था कर्नल फोन पर ही जोर से रो पड़ेगा।

पुत्र के हाथ से इसी बीच पिता ने रिसीवर छीन लिया । 'क्या बात है, पाण्डेजी ?' उनकी अदृश्य तीखी मूंछें सहसा फोन के आले से निकलकर कर्नल को छेद गईं ।

कर्नल एक बार फिर सकपका गया । 'मेरी लड़की आज सुबह से नहीं लौटी । कहीं घूमने गई थी, एक चिट्ठी छोड़ गई है कि वह विवाह नहीं करेगी ।'

'अच्छा !' शिरोमणि का स्वर घायल सर्प-सा फुफकार उठा । 'कुएं, बावड़ी, तालाब सबमें कांटा डलवा दिया? न हो तो अपनी बंगालिन रखैल से पूछिए, क्या पता उसी ने अपने आंचल में छिपा लिया हो ।' रिसीवर पटककर कर्नल धड़धड़ाता अपने कमरे में चला गया । भड़ाक से द्वार भिड़ाकर उसने बोतल निकाल ली । आज पीकर ही वह अपने को खत्म कर लेगा । पिता की मृत्यु का समाचार पाकर जब छोकरी लौटेगी, तो चिता की भस्म भी नहीं पाएगी! पर बुलाने से ही क्या मौत आ जाती है ?'

हवा की तरह पूरे बंगले में यह समाचार फैल गया कि कर्नल की सुन्दरी पुत्री बारात आने के दो दिन पहले किसी के साथ भाग गई है । कोई कहता था, किसी मुसलमान के साथ पाकिस्तान चली गई, कोई कहता, दिन-रात फिरंगियों के साथ घूमती थी, उन्हीं में से एक के साथ विलायत भाग गई । कोई कुछ कहता, कोई कुछ । कर्नल ने घर से भाग गई पुत्री को ढूंढ़ने का कोई प्रयत्न नहीं किया । भाई और भाभी, भतीजे और उनकी पत्नियां बोरा-बिस्तर बांधकर जाने की तैयारियां करने लगे, तो उसने आग्रहपूर्वक उन्हें रोकने का कोई उत्साह नहीं दिखाया।

शामियाना उखाड़ दिया गया । हलवाइयों की बड़ी-बड़ी कड़ाही ट्रक में भर-भरकर भेज दी गयीं । उजाड़ दिखते नन्दी के विराट अहाते में धूल उड़ने लगी । लग रहा था किसी सर्कस कम्पनी का दल, अपने खेमे-तम्बू उखाड़कर अभी-अभी गया है । कुछ हवा में उड़ती रंगीन झंडियां ही अपूर्ण महोत्सव की खिल्ली-सी उड़ाती उड़ रही थीं । गौरमोहन बाबू खबर पाते ही भागते उपस्थित हुए थे । मित्र की उन्होंने भर्त्सना भी की थी : 'पढ़ी-लिखी लड़की से एक बार पहले ही पूछ लेते तो क्या बदनामी होती ! जो भी हो, है तो अपनी ही पुत्री; पता तो लगाना ही होगा । आजकल की लड़कियों का क्या ठिकाना ? क्या पता कहीं कूद-फांद ही गई हो ? एक बार पुलिस को भी खबर देना ठीक होगा ।' पर कर्नल ने मित्र की एक बात का भी उत्तर न दिया । अहल्या उनके लिए मर चुकी थी, यदि उसे विवाह नहीं करना था, तो पानी की भांति रुपया बहाते पिता को रोका क्यों नहीं ? एकदम ही वह किसका सहारा पाकर भड़क गई? जहां तक उन्हें ज्ञात था, अहल्या की किसी छिछोरे युवक से घनिष्ठता नहीं थी ।

सर्वेश्वर के विषय में उनके पास एक गुमनाम चिट्ठी अवश्य आई थी कि सर्वेश्वर एक बार किसी एंग्लो-इण्डियन एयर होस्टेस के चक्कर में पड़ गया था, और गहरी रकम देकर उसके पिता ने उस लड़की से उसका पीछा छुड़वाया था, आदि, आदि । पत्र के साथ उस सुन्दरी एयर होस्टेस का एक चित्र भी संलग्न था, पर उस पत्र के अहल्या के हाथ में पड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता था । स्वयं अपने हाथों से पत्र के टुकड़े-टुकड़े कर कर्नल ने आग में जला दिया था । हाल ही में उस एयर होस्टेस की किसी हवाई-दुर्घटना में मृत्यु का समाचार पढ़ वह और भी निश्चिन्त हो गया था । क्या पता उसी गुमनाम व्यक्ति ने एक पत्र अहल्या के

नाम भी भेज दिया हो ! जो भी हो, वह अहल्या को क्षमा करने के पक्ष में नहीं था । मकान को बेच-बाचकर वह गौरमोहन का कर्ज़ अदा कर देगा और मलाया की ओर चल देगा।

अहल्या न भागी होती, तो आज का दिन कितने उत्साह का होता । वह मन ही मन सोच रहा था : गोधूलिबेला में ही शहनाई की गूंज से नन्दी के ओर-छोर गूंज रहे होते– शहनाई-वादक ने पीलू की करुण स्वरलहरी कर्नल

को बजाकर भी सुनाई थी । पूरे बंगले में नीली बत्तियों की झकझक फैली

होती ! सेहरा और केसरिया पाग संभालता राजकुंवर-सा सर्वेश्वर कार से उतरता... ।

खिड़की से, द्वार पर बंधा एक तोरण अभी भी झूम रहा था, उसे उतारना शायद मुंशीजी के कारिन्दे भूल गए। लाल रेशमी कपड़े में लिपटे, गोटे किनारीदार नारियल पर चिपकी हरी-लाल पन्नियां रह-रहकर फरफरा रही थीं । कलात्मक गेट पर लिपटी जंगली लताएं और हरी-हरी पत्तियां मुरझाने लगी थीं । एक मोटा-सा मंझले कद का व्यक्ति, अपनी विराट तोंद को खुजलाता मुंशीजी को अपना हिसाब समझा रहा था। मुंशी ने कर्नल को खिड़की पर देख लिया था, इसी से अपने नमक-हलाल होने का चीख-चीखकर विज्ञापन-सा कर रहा था : 'हद है, बोस बाबू, बिटिया की शादी हुई होती, तो मैं साहब से आपके इनाम की बात कहता, पर जब शादी ही नहीं हुई, तो आप ही बताइए किस मुंह से कहूं।' गुस्से में भरभराकर कर्नल बाहर निकल आया : 'क्या बात है, दे क्यों नहीं देते इनका इनाम? मुंशीजी, जिसको जो कुछ देना है सबकुछ बेबाककर इन्हें रफा-दफा कीजिए। मैं जा रहा हूं और मेरे लौटने तक यहां इनमें से एक भी न रहे। '

गैरेज से स्वयं ही कार निकालकर कर्नल दनदनाता बाहर निकल गया । उसके जाते ही बोस बाबू फिर रंग में आ गए : 'क्या बात है, इन बड़े आदमियों का भी गुस्सा नाक की नोक पर रहता है। लड़की भाग गई है, तो हम गरीब आदमियों पर ही बरस पड़े । असल में, मुंशीजी, आजकल की छोकरियां अंग्रेज़ी सिनेमा देखती हैं, बस, वही इन्हें ले डूबता है । मेरी दुकान मेट्रो के पास ही है, रोज़ देखता था, कर्नल साहब की बिटिया चली आ रही है । कभी साथ में कोई गोरा साहब है। कभी कोई और, पर एक बात है मुंशीजी, 'जो मज़ा अंग्रेज़ी फिल्म देखने में है वह हिन्दी, बंगला में नहीं... !' बोस बाबू आरामकुर्सी खींचकर बड़े आराम से लेट गए ।

'क्या बॉडी होती है, इन अंग्रेज़ मेमों की । एक पिक्चर हमने भी देखी, एलिज़ाबेथ टेलर थी, मुंशीजी । उसमें, अब क्या बताएं तुम्हें-कमर थी कि मुट्ठी से भर लो।

'सच ?' सत्तर वर्ष के मुंशीजी की आंखों में होली का अबीर-गुलाल छलक आया ।

'अब के ससुर हम भी देखेंगे,' मुंशीजी ने पान की डिबिया निकाली । नोनीबाला के जाने के बाद मुंशीजी के प्रेम का सागर सूख गया । 'लो प्यारे, पान खाओ, मघई खाता हूं बस एक यही शौक है ।' मुंशीजी ने बड़ी अदा से चुटकी भर ज़र्दा मुंह में भरा और पीक गुलगुलाने लगे ।

'ऐसा तो मत कहो, मुंशीजी, शौक तो तुम्हें और भी थे,' किसी तरह ननी को फिर बुलाओ मुंशीजी, जब से गई बंगला सूना हो गया है–बोस बाबू के मिष्टान्न से ही मुंशीजी की

कृष्णकली रससिंचित होकर पुष्ट बनी थी ।

'अब क्या आएंगी,' मुंशीजी ने एक लम्बी सांस खींचकर दोनों हाथ सिर के पीछे बांध लिए और शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखकर कहने लगे, 'सुना उसी दरबान से शादीवादी करनेवाली है, छपरा जिला में उसकी कुछ बीघा ज़मीन थी, उसी का बड़ा गुमान था ससुर को, देखो भगवान् ने चाहा तो उससे भी आला ननीबाला आएगी ।' पर दूसरी नोनी लाने का स्वप्न अधूरा ही रहा । दूसरे दिन कर्नल से मिलने गौरमोहन बाबू आए, तो वह मलाया जा चुका था ।

बत्तीस

तीसरे दिन की यात्रा ने अहल्या की सारी शक्ति निचोड़ दी थी। पहाड़ के लम्बे, विचित्र घुमावदार मोड़ों से उसका माथा चकराने लगा था । बस ने उसे बसन्ती के ननिहाल के गांव की सीमा पर उतार दिया, तो वह कुछ देर तक दुविधा में ही खड़ी रही। जिस दु:साहस से वह घर से भागकर चली आई थी, वह धीरे-धीरे कपूर की सुगन्ध की भांति उड़ता जा रहा था । जी में आ रहा था कि लौट जाए । बसन्ती क्या कहेगी-जीजाजी और स्वयं राजू। विवाह के दिन पिता की प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर भागनेवाली झक्की लड़की, जिसे दिखा-दिखाकर लोग कहेंगे : 'यही है, कर्नल साहब की पुत्री, विवाह के दिन घर से भाग गई थी। समाज से, आत्मीय स्वजनों से दूर भाग जाने की इच्छा तीव्रतर होते ही उसकी आखों के आगे नन्दी का तापसी चेहरा तैर गया । अभी तक इतनी सीधी-सी बात उसके दिमाग में क्यों नहीं आई? रात-भर वह नुक्कड़ की चाय की दुकान पर सो रहेगी और पी फटते ही चल पड़ेगी। एक बार आश्रम में पहुंचने पर फिर उसे कोई चिंता नहीं रहेगी। जहां के पावन वातावरण में उसकी मां के दग्ध हृदय को शान्ति मिली थी, वहीं वह भी अपना मुंह छिपा लेगी | तेज़ी से कदम बढ़ाती वह पहाड़ों की परिक्रमा-सी करती चली जा रही थी।

'ओ हो सालीज्यू, मान गए हम तुम्हारी चाल को । घण्टे भर से हम बस स्टैण्ड पर इन्तज़ार करते रहे, पर हो तो आखिर ब्याह की दुल्हन । लगता है घूंघट निकालकर हमारी आंखों में धूल झोंक गईं।'

धरणीधर ने न जाने कहां से कूदकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिए । उसके कन्धे से झूलती दोनाली बन्दूक कूदने से अभी भी हिल रही थी।

अहल्या कुछ बोल नहीं पा रही थी, अपनी बड़ी-बड़ी आंखें धरणीधर के उत्फुल्ल चेहरे पर टिकाए, अवाक् खड़ी थी।

'क्यों, क्या पहचान नहीं रही हो सालीज्यू ?'

'आपको कैसे पता था कि मैं आज आ रही हूं?'

अहल्या ने ऐसे लहजे में पूछा, जैसे वह प्रश्न धरणीधर से नहीं, स्वयं अपने से ही पूछ रही हो ।

'हमारी सासजी ने तार कर दिया था । अच्छा चलो अब, बातें फिर होंगी । बसन्ती को मैंने कुछ भी नहीं बतलाया, शिकार का बहाना बनाकर ही निकल आया या ।'

'नहीं जीजाजी, मैं वहां नहीं जाऊंगी। आपके पैरों पड़ती हूं, मुझे आश्रम जाने दीजिए ।'

अहल्या ने गिड़गिड़ाकर हाथ छुड़ाने की चेष्टा की। 'वाह जी वाह,' धरणीधर ने अपनी मज़बूत पकड़ की हथकड़ियों में अहल्या को कस लिया ।

'आश्रम जाओगी, खूब कही! विवाह का लग्न नौ बजे का है, आठ बज गए हैं । अभी तुम्हें घर पहुंचाकर कुबड़े पाण्डे को लेने जाना है ।'

अहल्या उसकी पहेली समझ नहीं पा रही थी, पर गहरे जल में बहते तिनके की भांति वह बहती जा रही थी। बसन्ती की ननिहाल के द्वार पर पहुंचते ही धरणीधर ने हांक लगाई, 'बसन्ती, द्वार खोलो! बहादुर को पिछले महीने बाघ ले गया, इसी से फिलहाल बसन्ती ही चौकीदारी कर रही है । मिट्टी का तेल भी आजकल इस गांव में अप्राप्य है, शायद टार्च ढूंढ़ रही होगी ।' धरणीधर अभी भी अहल्या का हाथ पकड़कर खड़ा था।

पति का कण्ठस्वर सुनकर, बसन्ती भागती आ गई : 'कहिए कुछ शिकार मिला ? आज तो कुछ सब्ज़ी भी नहीं है।'

वह पति की ओट में खड़ी अहल्या को पहले देख नहीं पाई ।

'अरे भई, बड़ा तगड़ा शिकार है, बड़ी कठिनाई से निशाना लगा, वह तो अचूक निशाना है मेरा, इसी से चूका नहीं।'

'हाय, सच ? देखूं,' कहकर मुखरा बसन्ती पति के पास सरक आई और टार्च जलाते ही सहमकर एक क्षण खड़ी रही, दूसरे ही पल वह अहल्या से लिपट गई ।

'तू कैसे आ गई, बता,' वह कभी पति को झकझोर रही थी, कभी अविश्वास से बार-बार टार्च डालकर अहल्या को देखती उसका हाथ हिला- हिलाकर पूछ रही थी । 'और तेरा तो आज ब्याह था, अहल्या,' अचानक वह सपने से जगी हो, ऐसे अचकचाकर पूछ बैठी ।

'ब्याह तो आज ही है, चलो तो भीतर, पहले कुछ सूखी घास-फूस जलाकर उजाला करो, अंधेरे में अपनी बहन का स्वागत कैसे करोगी ?'

बसन्ती भागकर एक बड़ा-सा लैम्प ले आई, 'आज बद्री कक्का से दो बोतल ले आई थी, चलिए, आमा कई बार आपको पूछ चुकी है ।'

हर कदम के साथ अहल्या का धड़कता हृदय उछलकर मुंह को आ रहा था । जंगली प्रिमरोज़ की खुशबू से आमा का विचित्र कक्ष मह-मह महक रहा था । रात की रानी का एक गुच्छा चांदी के लोटे में डुबाकर आमा सूंघती, हिल-हिलकर कुछ पाठ-सा कर रही थी ।

'देखो आमा, तुम्हारी बहू को पकड़ ही लाया ।' धरणीधर ने अहल्या को उनके पास धम्म से बिठा दिया ।

आमा ने लोटा नीचे धर दिया । बड़े अविश्वास से अहल्या को देखा, 'ठीक तो कह रहा है, बहू ही तो है । क्यों री क्या बीमार पति की भी तुझे चिंता नहीं थी, ऐसी निठल्ली बहू तो मैंने कोई नहीं देखी । मायका किसको प्यारा नहीं होता ! मुझे क्या नेपाल की याद नहीं आती? मेरा रामरो नेपाल, रामरो नेपाल (मेरा सुन्दर नेपाल),' कहती वे फिर हिल-हिलकर विचित्र भाषा में अहल्या को फटकारने लगीं।

'ओहतुम्हारी 'लिंग्विस्ट' आमा फिर मूड में आ गई, राजू कहां है बसन्ती ?'

'ऊपर छज्जे पर कुछ पढ़ रहे थे, बुला लाऊं,' बसन्ती उठ गई।

'नहीं, तुम ज़रा मेरे साथ बाहर चलो ।' भोली पत्नी को ऐसी बातें कम समझ में आती थीं, अपने नये षड्यन्त्र में उसे बसन्ती के ही सहयोग की विशेष आवश्यकता थी।

देखो, मैं कुबड़े पाण्डे को पीठ पर लेकर आता हूं, इतनी रात को घोड़ा मिलेगा नहीं, तुम अभी राजू से कुछ मत कहना । इसी लगन में अहल्या को बांधना होगा ।'

'हाय राम, कैसे बांधना होगा ? क्या कह रहे हैं आप? बसन्ती कुछ भी नहीं समझी। अपने मूर्खतापूर्ण प्रश्न से उसने पति को खिझा दिया ।

'अमा, यार, बोर हो तुम', झुंझलाकर वह बाहर चला गया । थोड़ी देर में ही पंगु कुबड़े पाण्डे को पीठ पर लादकर लौट आया । उसकी गठरी नीचे रखकर उन्हें अहल्या के पास ही उतारकर पसीना पोंछने लगा ।

'यार पाण्डेजी, खूब प्रेम से खिलाया है यजमानों ने तुम्हें । दो मन से कम तो क्या होंगे गुरु । लो अब चटपट निबटा दो रसम। यह मेरी साली है और साले को अभी लाता हूं–दोनों का ब्याह बस चुटकियों में कर दो' ।

'राम, राम ! ऐसा अघरम का काम गजाधर पाण्डे नहीं करता । कहता है साली और साले का ब्याह ! क्यों हंसी-खेल है? न पूजा की सामग्री, न कन्यापक्ष का पुरोहित, न वेदी, न हवन-सामग्री और फिर भाई-बहन का ब्याह कराने गजाधर पाण्डे ही रह गया था छोकरे ?

पण्डितजी का कूबड़ क्रोध की तरंगों से उठ-उठकर गिर रहा था ।

'पण्डितजी, चरण छूता हूं,' धरणीधर ने गिड़गिड़ाकर दोनों हाथ जोड़कर सचमुच उनके पैर पकड़ लिए : 'दक्षिणा डबल दूंगा, यह लीजिए,' कहकर उसने सौ-सौ के दो नोट पण्डितजी को पकड़ा दिए। इतनी मोटी रकम की फीस पण्डितजी के बाप-दादों को भी नहीं मिली थी । 'साली है पत्नी के चाचा की लड़की, और साला है, पत्नी के मामा का पुत्र, इसी से दोनों में आपसी कोई रिश्ता नहीं है। यह लीजिए वर राजा स्वयं ही पधार गए हैं।'

हो-हल्ला सुनकर राजू हाथ की पुस्तक लिए ही नीचे उतर आया था, और आश्चर्य से कुबड़े पाण्डे और धरणीधर का विचित्र वार्तालाप सुन रहा था । बसन्ती दोनों आंखें फाड़े पति का तर्कपूर्ण प्रस्ताव बड़े ध्यान से सुनती अहल्या को ढूंढ़ने लगी । पर अहल्या न जाने कब उठकर भीतर चली गई थी ।

'आओ-आओ, बैठो,' खींचकर राजू को आमा के पास बैठा धरणीधर दोनों हाथ जोड़कर कुबड़े पाण्डे के पास बैठ गया । 'हां आज्ञा दीजिए पण्डितजी, क्या-क्या ले आऊं? फूल ? अक्षत? रोली ? बस शार्टकट कीजिए पण्डितजी, दान-दक्षिणा की कोई चिंता मत कीजिएगा । जाओ जी कन्या को ले आओ,' बड़े प्रभुत्वपूर्ण स्वर में उसने बसन्ती को आदेश दिया ।

'क्या बात है आखिर ?' राजू का प्रश्न अनसुना कर धरणीधर उठ गया, बसन्ती अहल्या के पास जाने का साहस नहीं बटोर पाई थी । हाथ बांधे सिर झुकाए वह खड़ी ही रही। ।

'क्यों, नहीं लाई ?' अच्छा, मैं जाता हूं' कहकर वह अहल्या को बाहर खींच लाया ।

'हां, करिए श्रीगणेश पण्डितजी !'

'कन्यादान कौन करेगा ?' पण्डितजी ने विचित्र विवाह के लिए अपने तर्क-वितर्कों की पोटली समेटकर जेब में धर ली थी ।

'ओह, इसका तो ध्यान ही नहीं रहा, चलिए हम करेंगे कन्यादान ।' पालथी मारकर वह सचमुच ही गम्भीर बनकर अहल्या के पास खिसक आया ।

पति के नये प्रहसन में बसन्ती को बड़ा आनन्द आ रहा था । 'हाय राम, देखिए तो इन्हें, उसने आमा को ठसकाया और आमा जैसे इसी के लिए रुकी थीं ।

'क्या मज़ाक हो रहा है यह जवैज्यू। सात फेरे तो हो चुके थे इसके, अब, क्या चौदह फेरे होंगे? पागल हो गए हो क्या ?'

पण्डितजी ने बड़े सुरीले स्वर में शास्त्रोच्चार आरम्भ कर दिया था । आमा की बात सुनकर रुक गए : 'क्यों, क्या सचमुच इनकी शादी हो चुकी है ? क्या मुझे बनाने यहां आया है छोकरे ?' उनकी सफेद मूंछें क्रोध से सतर हो गई ।

'आहा, पाण्डेजी, आप भी लगे हैं इनकी बातों में । आमा को आप जानते नहीं क्या ?' धीरे से वह कान के पास आकर फुसफुसाया ।

'अफीम की पिनक में हैं गुरु । तुम चलाओ धड़ाधड़ स्पीड। '

'क्या कह रहे हो, मैं पूछती हूं,' आमा खड़ी हो गई। 'मैं यह मज़ाक नहीं होने दूंगी !'

'आहा, आमा,' धरणीधर ने आमा को पकड़कर बिठा दिया ।

'देखो दुश्मन की गोली से बचकर घर लौटा है राजू। दूसरा जन्म हुआ है। ऐसे में सब कर्म फिर मनाए जाते हैं। पहले जन्म-दिवस मनाया, फिर जनेऊ हुआ, अब फिर उसी बहू से ब्याह हो रहा है, और एक बात है आमा,' वह बड़ी नरम आवाज़ में शब्दों को चबा-चबाकर कहने लगा, 'बुरा मत मानना, पर तुम्हारी बहू भगोड़ी है । कहीं फिर न भाग जाए, इसी से चौदह फेरे फिरवा दिए। खूब बढ़िया मन्त्र पढ़कर कड़ी गांठ बांधना गुरु । अब के न भागे । शादी के दिन भाग जाने की कुटेव है इसमें, हां !'

'हो, हो, हो, चौदह फेरे । क्या बात कही है जवैज्यू ! रुको पण्डित, जा री, वसुली, भागकर मेरा जामदानी दुपट्टा ले आ, झूमर ले आ, रुपयों की माला, सबकुछ ले आ, शादी-ब्याह क्या ऐसी धोती में होता है ?'

राजू के हाथ में दबी किताब के पन्ने फटे जा रहे थे, उसके पैर का अंगूठा ही एक बार अहल्या को दिख गया, और वह गिर-गिर पड़ी थी । बहुत दिनों से बन्द बक्स में जंग लगे ताले खोलकर बसन्ती आमा का लाल बनारसी दुपट्टा ले आई, अहल्या को अपने हाथों से गहनों से सजाकर आमा ने लाल दुपट्टे का घूंघट खींच दिया ।

'बत्ती जलाओ न सब, झाड़-फानूस जला दो ।'

'आज तो ईश्वर ने ही बत्ती जला दी है, मालकिन लो,' कहकर मद्धा ने सब खिड़कियां खोल दीं । पूर्णिमा की थाल-भर चांदनी पूरे कमरे में फैल गई, शुभ्र ललाट पर लटके झूमर के मोती चांदनी में चमक उठे । पाण्डेजी के संस्कृत के श्लोकों की आवृत्ति के बीच आमा

एक बार फिर ठठाकर हंस पड़ीं : 'क्या बात कह गए जवैज्यू । चौदह फेरे लगने पर बहू नहीं भागेगी...हा, हा, हा, हा !'

आमा का राशीभूत अट्टहास संस्कृत के मधुर विवाहमन्त्रों के बीच रह-रहकर गूंजने लगा : 'चौदह फेरे, हा-हा-हा, चौदह फेरे।'

●●●